ISSN No : 2583-3855

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष : 2 मूल्य : 150/- अंक : 8 एवं 9 संयुक्तांक अक्टूबर-मार्च 2023

सलाहकार मंडल

सलाहकार संपादक
डॉ. प्रेम जनमेजय
डॉ. एस.एस.मुद्गिल
डॉ. सुशील कुमार त्रिवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. मनोरमा

कार्यकारी संपादक
कामिनी

मुख्य संपादक
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशक एवं स्वामी
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशकीय/संपादकीय कार्यालय : 'अनुस्वार', सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)
मुद्रण कार्यालय : बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
वितरण कार्यालय : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

© **स्वत्वाधिकार** : मुख्य संपादक : डॉ. संजीव कुमार

आवरण चित्र : शुभ्रामणि
आवरण एवं पुस्तक सज्जा : विनय माथुर

मूल्य : सामान्य प्रति : 150 रुपये
वार्षिक मूल्य : 1200 रुपये
द्विवार्षिक मूल्य : 2200 रुपये
आजीवन सदस्यता : 6000 रुपये

भुगतान के लिए :
IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191
Paymtm No : 9893561826

नोट : भुगतान करने के उपरान्त रसीद के साथ अपना पता और फोन नं. हमें व्हाट्अप करें। इस नं. 9873561826/9810066431 पर व्हाट्अप करें।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

डॉ. संजीव कुमार, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा स्वयं के स्वामित्व में प्रकाशित बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा-110032, से मुद्रित।

संपादक : डॉ. संजीव कुमार

अनुक्रम

मुख्य संपादक की ओर से		5
आवरण कथा	शुभ्रामणि	
कलाक्षेत्रे		
रामो विग्रहवान् धर्मः	रचना राण	7
चिंतनधारा		
मेरे घर आना जिंदगी	संतोष श्रीवास्तव	11
संतोष श्रीवास्तव के पाठक	पूर्णिमा ढिल्लन	19
दुख की परिभाषा बदली है संतोष ने	स्व. आलोक भट्टाचार्य	20
अमलतास तुम फूले क्यों		22
शुद्ध सात्विक बोध की लेखिका	गिरिश पंकज	28
जंग अभी जारी है तुमसे मिलकर	हीरालाल नागर	31
करवट बदलती मुंबई : आमची मुंबई	रूपेंद्र राज तिवारी	34
लौट आओ दीपशिखा	सुषमा मुनीन्द्र	37
टेम्स की सरगम	पुष्पा भारती	39
संतोष श्रीवास्तव की कहानियों में मूल्यबोध		
आसमानी आँखों का मौसम	जया केतकी शर्मा	42
ख्वाब न जाने कितने लिबास बदलते हैं	सरस दरबारी	45
मालवगढ़ की मालविका	विनीता राहुरीकर	46
संवेदनीयता को नुकीलापन देती लघुकथाएँ मुस्कुराती चोट	बी.एल.आच्छा	48
सुखमय मृत्यु अथवा यूथेनेसिया	पूजा अनिल	52
डॉ. संजीव कुमार, कानून के गलियारों से साहित्य के		
आंगन तक एक जाना-पहचाना नाम	प्रभात गोस्वामी	54
'कोणार्क' : रागात्मक अभिव्यंजना का अश्म शिल्प	डॉ. पद्मा पाटिल	55
साहित्य की राजनीति और हमारे जीवंत साहित्यकार	सिद्धेश्वर	60
पेशेवर पढ़ाई अब हिंदी में	संतोष बंसल	62
उस खरखरी आवाज़ की स्निग्धता	प्रबोध कुमार गोविल	65
जिन्हें अनदेखा कर दिया गया : आचार्य जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'	डॉ. सुशील त्रिवेदी	70
तर्क के योद्धा : दिखावा भरपूर यथार्थ से दूर	राजेन्द्र मोहन शर्मा	74
संवाद		
खुद को खँगालना लेखन की पहली शर्त		
डॉ. सत्यवीर सिंह की संतोष श्रीवास्तव से बातचीत		77
कथा-कहानी		
अंतर	राजा सिंह	85
एक पैसे की कीमत	डॉ. रमाकांत शर्मा	90

नई सरहद का अनुभव	अनिता कपूर	95
कुदरत	हरिप्रकाश राठी	98
केवल पत्र नहीं है यह	अनिता रश्मि	101
नौकरानी	हरिहर झा	104
सोनागाछी का महाप्रसाद	अनुवाद : दिनेश कुमार माली	106
मिर्ची के रंग		
तिकड़म की कला और तिकड़मी जी	रंगनाथ दुबे	113
खुद छटपटा रहे हैं, सड़क के गड्ढे	प्रभाशंकर उपाध्याय	115
पांडेय जी नया साल और एजेंडा	लालित्य ललित	117
27 मरे 10 घायल	प्रो. राजेश कुमार	121
मॉस्को में दिवाली	स्मृति कुमार	123
दर्द मैनेज करने की कला	अख्तर अली	127
छोटी-छोटी बूँदें		
सौतेलापन	सुनील गज्जानी	130
दिस इज अमेरिका	अनिता कपूर	129
अंधड़	यशोधरा भटनागर	131
अनमोल रतन	कोमल वाधवानी	131
स्वास्थ्य साहित्य		
तनाव और गीता का सम्बन्ध	डॉ. एस.एस.मुद्गिल	132
विधि साहित्य		
मानव अधिकार और भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम	सन्तोष खन्ना	135
कविता/ग़ज़ल		140
आशीष दशोत्तर, जगदीश चन्द चौहान, कल्याणमय आनंद, हरिहर झा, आशा निलय भदौरिया, रामस्वरूप दीक्षित, नितिन उपाध्ये, केशव दिव्य, सुभाष नीरव, डॉ. संजीव कुमार, ममता त्यागी		
साहित्य समाचार-1 : काव्य विधा सभी विधाओं में श्रेष्ठ : डॉ. संजीव कुमार रिपोर्ट : कौसर भुट्टो		150
साहित्य समाचार-2 : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' साहित्य भूषण पुरस्कार डॉ. संजीव कुमार को		152
साहित्य समाचार-3 : डॉ. संजीव कुमार को हरिवंश राय बच्चन सम्मान		153
साहित्य समाचार-4 : व्यंग्य यात्रा धर्मवीर भारती स्मृति सम्मान		154
पुस्तक समीक्षा-1 : अजब शैली की ग़ज़ब कहानियाँ : समीक्षक : जगदीश शर्मा		156
पुस्तक समीक्षा-2 : दर्द का जीवंत दस्तावेज वर्चुअल रैली : समीक्षक : विनोद शर्मा 'सागर'		159
पुस्तक समीक्षा-3 : स्त्री-विमर्श की पौराणिक गाथा 'भानुमती' समीक्षक : मेधा झा		161
सलाहकार संपादक की ओर से अंततः : प्रेम जनमेजय		165

मुख्य संपादक की ओर से

अनुस्वार का यह आठवाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और ये एक गतिशील रूप में निरंतर चलता रहता है। अनुस्वार विश्व में हो रही गतिविधियों और गतिशीलता को सूक्ष्म दृष्टि से अभिलेखित करती रहती हैं और महत्वपूर्ण सूचनाओं को साहित्यिक एवं गैर साहित्यिक उपदानों के माध्यम से हम आप तक पहुँचाते हैं। अक्तूबर-दिसम्बर की त्रैमासिकी में न केवल राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी परिवर्तन, परिशकरण एवं परिवर्धन हमारे समक्ष आते रहते हैं और हम उनसे अपने सरोकारों को निस्तारित करते रहते हैं।

अनुस्वार की अवधारणा में हम आपके समक्ष यह स्पष्ट कर चुके हैं कि हम आपकी रूचि की सामग्री तो प्रस्तुत करते ही हैं, साथ-ही-हम शोध हेतु सामग्री भी आपके उपयोग के लिए आप तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं।

इसी संदर्भ में अनुस्वार के कुछ अंक किसी विशिष्ट व्यक्तित्व के बारे में विश्लेषात्मक सामग्री भी अनुस्वार के पाठकों को प्रस्तुत करते रहते हैं। पिछले अंकों में हम डॉ. लालित्य ललित एवं डॉ. प्रताप सहगल जैसे व्यक्तित्वों पर सामग्री प्रस्तुत कर चुके हैं, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ अनुस्वार का हर अंक विशेषांक नहीं हो सकता।

किंतु हम निष्पक्ष भाव से अपने सुधि पाठकों के समक्ष विशिष्ट साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रस्तुत करते रहे हैं। अनुस्वार का यह अंक एक महिला साहित्यकार संतोष श्रीवास्तव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालता है। हमारा विचार है कि जहाँ वरिष्ठ साहित्यकारों के बारे में लिखा जाता है वहीं अन्य साहित्यकारों के लिए भी यह किया जाना उतना ही सार्थक होगा, जितना अन्य का।

संतोष श्रीवास्तव एक बहुमुखी साहित्यकार हैं, इसलिए अनुस्वार में उनकी चर्चा समीचीन प्रतीत होती है। 'अंतरराष्ट्रीय विश्व मैत्री मंच' की संस्थापक एवं अध्यक्ष रूप में उन्होने साहित्य की लगभग हर विधा पर काम किया है। और सफलतापूर्वक किया है। उनका मैत्री मंच न केवल भारत के प्रमुख शहरों में अपितु महत्वपूर्ण अन्य देशों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है।

साहित्य के विकास एवं समृद्धि के लिए लोगों को एकजुट करना और साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन करना एक प्रशंसनीय कार्य है। संतोष श्रीवास्तव ने राजस्थान विश्वविद्यालय से पीएचडी की मानवोदय उपाधि प्राप्त की है। उनका साहित्यिक योगदान कहानी, उपन्यास, कविता, स्त्री-विमर्श, संस्मरण आदि विधाओं में है। और उनकी कहानियों लघुकथाओं और उपन्यासों के अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुके हैं। उनकी पुस्तकों पर अनेक विश्वविद्यालयों में शोध किए गए हैं और वह अब तक चार अंतरराष्ट्रीय एवं 20 राष्ट्रीय पुरस्कारों से अलंकृत की जा चुकी हैं। बहरहाल उनके व्यक्तित्व विश्लेषण की प्रक्रिया में 15 से अधिक साहित्यकारों के आलेख व टिप्पणियाँ प्राप्त हुई, जिन्हें अनुस्वार के इस अंक में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सामान्य स्तम्भों के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई और आपके लिए संकलित सामग्री यथावत प्रस्तुत की जा रही है। अनुस्वार के साहित्यिक परिसर में अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों संबंधित समाचार प्राप्त हुए, उन्हें भी उचित स्थान दिया गया है। उल्लेखनीय है कि आपके मुख्य संपादक को इस अवधि में अनेक पुरस्कारों से अलंकृत किया गया है। जिनमें हरिवंशराय बच्चन पुस्तक पुरस्कार, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला पुरस्कार, महाकवि वाल्मीकि सम्मान, विकल्प

सूर्यमल मिशन सम्मान आदि। संबंधित सूचनाएँ समाचार खंड में विस्तार से दी गई हैं। आपके मुख्य संपादक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर 5 पत्रिकाओं के विशेषांक अबतक प्रकाशित किए जा चुके हैं–

अनवरत, टू मीडिया, मरु नवकिरण, आलोक पर्व एवं छत्तीसगढ़ मित्र संबंधित संपादन टीम को मेरा अभिवादन एवं आभार।

सूचित करते हुए हर्ष है कि बीपीए फाउंडेशन, महिला सशक्तिकरण एवं बाल विकास के कार्य में संलग्न है। उसके साहित्यिक मंच द्वारा अनुदित पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सहयोग दिया जाता है। फलस्वरूप उसका प्रकाशन इंडिया नेटबुक्स द्वारा किया जाता है। वर्ष 2022 में यह अनुदान 'श्री किशोर दिवसे' को उनकी पुस्तक 'सेतुबंध' के लिए दिया गया है। अनुस्वार साहित्यकारों को प्रेरणा देने हेतु विभिन्न पुरस्कारों एवं सम्मानों द्वारा विभिन्न विधाओं में इंडिया नेटबुक्स, बीपीए फाउंडेशन एवं संचालक परिवार द्वारा दिया जाता है। 2023 में पुरस्कार देने हेतु आवश्यक सूचना निर्शत कर दी गई है। इन पुरस्कारों में शिखर पुरस्कार, वेदव्यास सम्मान एवं बागेश्वरी सम्मान प्रमुख हैं इसके अतिरिक्त विद्याप्रवीणता पुरस्कारों में अंतरराष्ट्रीय व्यंग्यकारों का संकलन प्रस्तुत किया था। प्रवासी भारतीयों की कविताओं का संकलन 'पंछी मेरे देश के' का संपादन एवं प्रस्तुति किया गया। राही संस्थान द्वारा नामित साहित्यकारों की रचनाओं की विद्यावार प्रस्तुति का कार्य सम्पन्न हुआ। जिसमें 5 पुस्तकें संधिक के पटल पर, छाया-प्रतिच्छाया, चटपटे शरारे फिर से, शब्द-शब्द पर नज़र; अनुस्वार मंच द्वारा एक लघुकथा प्रतियोगिता की उद्घोषणा भी की गई थी। जिसकी पुरस्कृत रचनाएँ पिछले अंक में प्रकाशित की गई है। उसी शृंखला में कविता प्रतियोगिता भी घोषित कर दी गई। जिसकी अंतिम तिथि बढ़ाकर 28 फरवरी कर दी गई है। भारत के लोक-साहित्य और विश्व साहित्य की प्रयोजनाओं पर कार्य निरंतर जारी है। शीघ्र लगभग 10 पुस्तकें विभिन्न क्षेत्रों की लोककथाओं के संकलन के रूप में प्रस्तुत की जाएंगी। चुनिंदा कवियों की चयनित काव्य रचनाओं पर आधारित 'काव्य सप्तक' शृंखला पर काम प्रारम्भ हो गया और पहला सेट 7 कवियों की रचनाओं का 'कवि के मन से' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। ऐसी ही शृंखला 'कथा सप्तक' के रूप में भी प्रारंभ की गई है, जिसका पहला सप्तक मार्च में आने की संभावना है। अनुस्वार की परियोजनाओं को इंडिया नेटबुक्स और बीपीए फाउंडेशन द्वारा जो सहयोग प्रदान किया जा रहा है। उसके लिए हम उनका आभार प्रकट करते हैं।

हमारे अतिथि संपादक श्री प्रेम जनमेजय के मार्गदर्शन के लिए भी हम धन्यवाद और आभार प्रकट करते हैं। इन्हीं शब्दों के साथ अनुस्वार का यह अंक साहित्य मनीषियों और पाठकों को समर्पित करते हैं।

आवरण-कथा

आवरण-कथा

हिन्दू धर्म में यह मान्यता है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में तीन देव हमारे संसार की सृष्टि, विकास एवं संहार के सोपानों के स्वामी हैं और इन तीनों की उत्पत्ति रूद्र से हुई।

इस चित्र में तीन श्वेत रेखाएँ तीन देवों का और अरूण बिन्दु रूद्र का प्रतीक है।

परिवेश में पांच रंगों की छटा ब्रह्माण्ड में पंचतत्वों की उपस्थिति का संकेत करती हैं।

शुभ्रामणि : एक परिचय

शुभ्रामणि एक अमूर्त कलाकार हैं। उनकी प्रेरणा किसी विचार, प्रकृति, वस्तु, भावना या किसी उद्देश्य में छिपी होती है। रंगों और आकारों के माध्यम से उसे कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करना उसे एक ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो कई बार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती है। अमूर्त कला एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार को रंगों के सहारे नए-नए आयाम, नए-नए चित्र बनाने का अवसर मिलता है और हर बार उसकी कला एक अनोखापन लेकर उभरती है। ऐसा ही कुछ नया करने का एहसास और प्रयास शुभ्रामणि की कला का आधार है। एक सलाहकार कम्पनी में काम करते हुए एक कुशल गृहिणी के साथ-साथ अपने खाली समय का सदुपयोग वह अपनी कलात्मक एवं काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा करती हैं। वह जहाँ एक कलाकार हैं, वहीं एक कवयित्री भी।

कलाक्षेत्र

रामो विग्रहवान् धर्मः

सीया राममय जब जग जानी। करउं प्रणाम जोरि जुग पानी।

गोस्वामी तुलसीदासजी के उपर्युक्त पद संसार को यह सन्देश देती है कि पूरे संसार सीता-राम का ही स्वरूप है, अर्थात सब में भगवान का वास है। अतः हाथ जोड़कर सबमें समाए सियाराम को प्रणाम करना चाहिए। ईश्वर को संसार के कण-कण में अनुभव करना, सचमुच कितनी उदात्त कल्पना है यह! वास्तव में इसे कल्पना कहना उचित नहीं होगा क्योंकि अपने देश में ऐसे अनेक संत भक्त हुए हैं जिन्होंने ईश्वर की अनुभूति की है और वे स्वयं ईश्वरमय हो गए।

भगवान श्रीराम के बारे में भला कौन वर्णन कर सकता है?

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है—"रामो विग्रहवान् धर्मः।"

राम धर्म के मूर्त स्वरूप हैं।

रचना राणा
संस्थापक
मेघवर्ण आर्ट गैलरी

रचना राणा : एक परिचय

रचना राणा एक कलाकार हैं जो उत्तर प्रदेश के रामपुर के छोटे से गाँव से ताल्लुक रखती हैं। उत्तर प्रदेश का रामपुर शहर वैसे तो छुरी, प्रसिद्ध चाकू एवं नवाबो के राजशाही के लिए विख्यात है। ऐसे में साहित्य एवं कला की धुरी बनना थोड़ा मुश्किल तो प्रतीत होता है लेकिन इसी मिट्टी से अपनी मूल शिक्षा लेकर रचना कला में अभूतपूर्व ऊर्जा, स्पष्ट सन्देश, एवं मानवीय संदेशो को कैनवास पर दर्शाती है। उन्होंने राजस्थान के बनस्थली विद्यापीठ से दृश्य कला में एम.फिल पूरा किया। दृश्य कला के प्रति उनका झुकाव और रंगों के प्रति आकर्षण उनकी शिक्षा के साथ-साथ शुरू और गहरा होता गया, जहाँ उन्होंने भारतीय आधुनिक कला से जुड़े ज्ञान को अवशोषित किया। अपनी शिक्षिका सुश्री किरन सरना मैम, इला यादव मैम व पुष्पा दुल्लर मैम के मार्गदर्शन और शिक्षण ने रंगों और कैनवास की इस खूबसूरत दुनिया में उत्प्रेरक का काम किया।

इसके बाद उन्होंने अपनी कला को परिष्कृत किया जो रंगों, रेखाओं और सौंदर्य के बीच विभिन्न चरणों के माध्यम से उभरी। कला के प्रति उनका प्रेम और गहरा हुआ जब उन्होंने रामायण और मर्यादा पुरुषोत्तम राम की जीवन यात्रा को पढ़ना और समझना शुरू किया। वर्तमान में वह भगवान राम की शृंखला पर काम कर रही हैं जिसमें विभिन्न चित्रों के साथ उनकी यात्रा और आदर्शों को सामने लाया गया है।

वर्ष 2019 में वह दिल्ली चली गईं और २०२१ में मेघवर्ण आर्ट गैलरी की स्थापना की। उनका दृढ़ विश्वास है कि जैसा कि हम “आर्ट ऑफ लिविंग” की सराहना करते हैं और आनंद लेते हैं, वैसे ही हमें “आर्ट फॉर लिविंग” को स्वीकार करना, आनंद लेना और समझना चाहिए।

विशिष्ट व्यक्तित्व

संतोष श्रीवास्तव

एक जानी मानी कथाकार और विश्व मैत्री मंच की संस्थापक हैं। उन्होंने अपने जीवन में अनेकों संकट झेले हैं लेकिन फिर भी वो मौसम की मार झेलते हुए अपनी राह पर चलती आई हैं। जिन परिस्थितियों में उनकी रचनाधर्मिता जारी रही उप परिस्थितियों में सामान्य जन कोई कार्य करने में असमर्थ रहता है। संतोष श्रीवास्तव की जिजीविषा को देखते हुए उनके व्यक्तित्व की पड़ताल करने का प्रयास किया है अनुस्वार केइस अंक में।

मेरे घर आना जिंदगी

संतोष श्रीवास्तव

हेमंत सदा के लिए चला गया। असीम में समा गया। मात्र 22 साल मेरा साथ देकर और मैं हिमखंड सी जम गई। अपनी वेदना, पीड़ा, शोक, अवसाद, असफल जिंदगी को लेकर प्रश्न, ईश्वर के प्रति आहत विश्वास और श्रद्धा को किसी के साथ बांट लेने को तड़प उठी। चाहती हूँ मेरे अंदर का हिमखंड पिघले। उसे किसी के एहसासों की गर्मी की जरूरत है, पर इस वीराने में मेरी निगाहें भटककर लौट आती हैं। कहीं कोई भी तो नहीं। आंसू बहाकर गम गलत करना मेरी फितरत नहीं। मैं अलग ही किस्म की हूँ। मुझे आम जिंदगी रास नहीं आती, फिर चाहे खास उबड़-खाबड़, पथरीली, काँटोंभरी क्यों न हो। मैं उस पर अब चल लेती हूँ। न तलवों के छाले सहलाती न कांटों को खींचती...राह की यह खासियत शुरू हुई थी मेरे शहर जबलपुर से जहां मेरे बाबूजी मंडला से जिला मजिस्ट्रेट के पद से सेवा निवृत्त हो एडवोकेट थे और ताउम्र वकालत करते रहे। अम्मा कांग्रेस में थीं और समाज सेवा उनका शौक था। सुभद्रा कुमारी चौहान से उनकी प्रगाढ़ मित्रता थी। आजादी के बाद चौहान परिवार से अम्मा-बाबूजी के ताल्लुक घरेलू हो गए। उनके मंझले बेटे विजय चौहान लेखक थे, जो अमेरिकन लड़की से शादी कर अमेरिका में जा बसे थे। उनकी बड़ी बेटी सुधा अमृतराय से ब्याही थी। हम अमृतराय को जीजा कहते। द्वारिका प्रसाद मिश्र, नर्मदा प्रसाद खरे, रामानुज लाल श्रीवास्तव, मायाराम सुरजन और हमारा परिवार जबलपुर में विभिन्न राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक कार्यों में सदा सक्रिय रहा।

अम्मा खादी पहनतीं। उनके तन पर एक भी ज़ेवर न होता। कांच की चूड़ियां, बिछुए और सिंदूर ही उनका सिंगार थे। न कभी अम्मा-बाबूजी का कोई बैंक खाता रहा, न जमीन जायदाद से मोह। माछीवाड़ा में बाबा की हवेली के तलघर में भरी सोने की ईंटें, चमड़े की थैलियों में गिन-गिन कर भरे चांदी के सिक्के और सोने की मोहरें उनके लिए धूल समान थे।

जब मैं 16 साल की थी, मेरी हमउम्र लड़कियां इश्क के चर्चे करतीं, सिल्क, शिफॉन, किमखाब, गरारे, शरारे में डूबी रहतीं। मेहंदी रचातीं, फिल्मी गाने गुनगुनातीं, दुल्हन बनने के ख्वाब देखती, तकियों के गिलाफ पर बेल बूटे काढ़तीं। मैं कभी अपने को इस सब में नहीं पाती। मेरे अंदर एक ख़ौलता दरिया था जिसका उबाल मुझे चैन न लेने देता। दिन में आंखों के सामने कोर्स की किताबें होती। रात को 2 बजे तक कागज-कलम थामे दुनिया जहान को टटोलने की कोशिश शब्दें के जरिए करती। शब्द बड़े बेकाबू थे। कब अपनी मर्जी के अर्थ गढ़ लेते, पता ही नहीं चलता। मैं उन अर्थों में ऐसी डूबती कि किनारा मिलना दुश्वार हो जाता, पर मेरी अपनी जिद्द! हार क्यों मानूं? हारना शब्द तो मेरे शब्दकोश में है ही नहीं। ये कच्ची उम्र के दिन जरूर थे, पर इन्हीं दिनों ने मेरे अंदर झूठी मान्यताओं, थोथी परंपराओं, अंधविश्वासों के खिलाफ खड़े होने की जिद्द पैदा की। इन्हीं दिनों ने मुझे यह सिखाया कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि तुम उस सब कुछ का विरोध करो जो हो रहा है, जो होता आया है, पर उसका विरोध अवश्य करो जो सहजता में अवरोध पैदा कर रहा है। हां, मैं उस कुछ के खिलाफ खड़ी हुई और इस खड़े होने की जद्दोजहद में उस उम्र का मेरा मोहक बसंत पंखुड़ी-पंखुड़ी बिखरकर मेरी आंखों की तलैया में बह गया। मेरे मन की खदबदाहट में साकार हुई मेरी लिखी पहली कहानी 17 साल की उम्र में जबलपुर से निकलने वाली लघु पत्रिका 'कृति परिचय' में छपी। हफ्तेभर बाद इलाहाबाद से अमृतराय जी ने लिखा 'तुम लिखती हो इसमें आश्चर्य नहीं, पर इतना असरदार!! आश्चर्य, तुमसे और भी प्रौढ़ लेखन की उम्मीद है। "अमेरिका से विजय

चौहान ने लिखा—मेरी छोटी-सी बहन आज मेरे कंधों से ऊपर जा रही है। इन प्रोत्साहन भरे खतों ने अगर मेरी कलम मजबूत की है तो श्रेय इन्हीं को जाता है। उन दिनों लेखन के अलावा नृत्य, सितार और चित्रकला की ओर भी मेरा रुझान हुआ। मैं राधा के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थी। और राधा-कृष्ण में मैं गहरे उतरना चाहती थी। जब मैं कॉलेज में दाखिल हुई तो मैंने कत्थक नृत्य की शिक्षा बाकायदा लेनी शुरु कर दी। मेरे नृत्य गुरु नरसप्पा जी हाथ में बेंत लिए रहते। तबला बजता रहता और हमारे दिलों में उनका बेंत सरसराता। जरा सी चूक कि सटाक...मजाल है जो पैर बहके, सुर बिगड़े, ताल बिगड़े। इस कठोर अनुशासन में सीखे नृत्य का नतीजा था द्वारिका प्रसाद मिश्र रचित कृष्णायन की नृत्य नाटिका का कॉलेज के वार्षिकोत्सव में प्रस्तुतीकरण और उसमें राधा की मेरी प्रमुख भूमिका। फिर कई नृत्य कार्यक्रम मैंने मंचित किये जिनमें प्रशंसकों की भीड़ जुटाने वाला सबसे उल्लेखनीय कार्यक्रम था जयदेव के गीत गोविंद की नृत्य-नाटिका, जिसमें राधा की भूमिका निभाते हुए मैं मानो कृष्ण के निबिड प्रेम में पड़ गई। अब तो बात फैल गई जाने सब कोई इधर नृत्य का नशा साथ ही सितार का विधिवत अभ्यास और फिर चित्रकारी का नशा। कॉलेज से घर लौट कर कभी सुस्ताया नहीं। खाली समय तो कभी रहा नहीं मेरे पास पर हां समय से मेरे दोस्ताना ताल्लुक अवश्य रहे। वह मेरे हिसाब से काल खंडों में बंट लेता था। मेरे बड़े भाई विजय वर्मा रेखाचित्र और पोर्ट्रेड बनाने में उस्ताद थे, तो प्रमिला वॉटर कलर में प्रकृति की रंगीनिया उकेरती। मैं कोलाज बनाती। तब राजधानी भोपाल संस्कृति-कला का संगम था। बेहद इच्छा रही कि भोपाल में हमारे बनाए चित्रों की एकल प्रदर्शनी हो। विजय भाई नवभारत प्रेस में समाचार संपादक थे, पत्रकार थे और मैं उनसे पत्रकारिता का क ख ग सीख रही थी। भोपाल के अखबारों में विजय वर्मा के बनाए चित्रों की एकल प्रदर्शनी की घोषणा हो चुकी थी। उनसे मेरी भला क्या प्रतिस्पर्धा वह तो मेरे प्रेरणा पुरुष थे। वह देर रात प्रेस से घर लौटते और ब्रश और रंगों में डूब जाते। मैंने इतना डूबकर कला का सृजन करने वाला चित्रकार पहली बार देखा। न खाने की

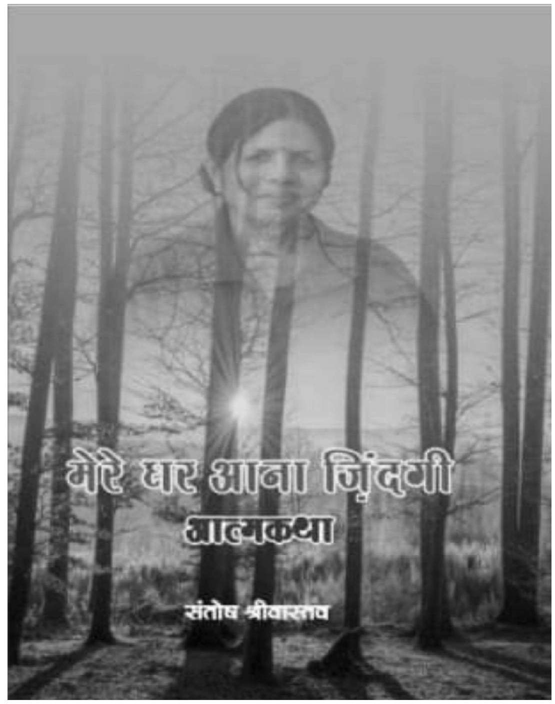

सुध, न सोने की। भाई के हाथ ब्रश बन गए और आंखें चित्रों की किताब। भोपाल में यह प्रदर्शनी पूरे सप्ताह चली और इसके एक-एक चित्र का ऊंचे दामों में बिकना इसकी सफलता का वह परचम है, जिसके आगे मैं नतमस्तक थी। मेरे और प्रमिला के बनाए चित्रों की प्रदर्शनी अगली सर्दियों के दिसंबर मास में जबलपुर में ही हुई।

उमसभरी शामें थीं। गर्मियों में एम.ए. का रिजल्ट निकलना था और विजय भाई ज्यां पाल सात्र के नाटक 'मैन विदाउट शैडोज' के मंचन की तैयारी में जुटे थे। जिसमें उन्हें सौरवियर का किरदार निभाना था और मैं अपने जीवन की निभाई अहम भूमिका के नतीजे के इंतजार में थी। हां मैं अपने ददिहाल में पहली लड़की थी जिसने एम.ए. किया था। वह भी फर्स्ट डिवीजन में और उसके तुरंत बाद उसी कॉलेज में (एम एच कॉलेज ऑफ़ होम साइंस एंड आर्ट्स वुमंस कॉलेज जबलपुर) में मैं लेक्चरर भी हो गई थी। जहां से मैंने एम.ए. किया था। तो मैं बात कर रही थी एम.ए. का नतीजा निकलने की। उस दिन विजय भाई के नाटक

का पहला शो मंचित हुआ था। विजय भाई की तपस्या का ऐतिहासिक क्षण था। उनका संवाद मंच पर उभर रहा था—

"हम लोग तो कब के मर चुके हैं। हमारा होना न होना अब कोई मायने नहीं रखता। मेरी जिंदगी एक लंबी सी गलती है। हमने जिंदगी को मायने देने की कोशिश की। नाकामयाब रहे, इसीलिए हम मर रहे हैं।"

और शहीद स्मारक हॉल में छाया सन्नाटा विजय भाई की थरथराती आवाज, चेहरे पर तैरती खौफ की पुरकशिश परछाइयां और मौत की सजा... रॉबर्टसन कॉलेज की स्तब्ध छात्रा की सिसकी आज भी मुझे रोमांचित करती है। और रोमांचित करता है वह पल जब एम.ए. के नतीजे के फलस्वरूप विजय भाई मुझे कंधों पर उठाये सारे आंगन में नाचते फिरे थे कि देखो मेरी नन्हीं सी बहन एम.ए. पास हो गई।

बाबू जी और विजय भाई मार्क्सवादी थे। मैं इस वाद को समझने के प्रयास में मार्क्स, लेनिन, इंगल्स, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन को पढ़ रही थी और चकित थी। बाबू जी के दर्शन शास्त्र और मार्क्सवाद की किताबों के लेखन पर। कार्ल मार्क्स को लेकर उनके मन में कुछ विवाद भी रहे, पर वे यह कहने से नहीं चूकते थे कि जीवन की सबसे सही व्याख्या मार्क्स ही की है। वे कर्मकांड के सख्त विरोधी थे। वे मतवाद को, संप्रदाय को उथली मानसिकता मानते थे। उनके इन विचारों को मैंने हूबहू इन किताबों में पाया। मेरे अंदर इस वाद ने आग भड़का दी। यह आग वह मशाल बन सकती थी जो बहुतों को राह दिखाए। पर मैं कंफ्यूज्ड थी क्या करूं, किस राह जाऊँ? नृत्य, चित्रकारी, नौकरी या लेखन पत्रकारिता। कुछ तो निर्णय लेना होगा। इस तरह तो मैं अपने अंदर की आग के साथ न्याय नहीं कर पाऊंगी। आखिर लपटों को समेटकर उजाले की शक्ल देनी है। न कि विध्वंस की। सो लेखन और पत्रकारिता मूर्त हुई और बहुत कुछ पीछे छूट गया।

70 के दशक में कहानी को लेकर जो आंदोलन चला था, उसमें जबलपुर का लेखक वर्ग ख़ास सक्रिय रहा। परसाई जी ने अपने व्यंग्य के जरिए इस लेखन को उकसाया। मेरे कॉलेज से घर लौटने के रास्ते में ही उनका घर था। मैं अकसर वहां चली जाती। वे मेरी कहानियां सुनकर कहते, ''अब वक्त आ गया है सिलसिलेवार छपने का'' मैंने बाकायदा विभिन्न पत्रिकाओं में कहानियां भेजनी शुरू कर दीं। मेरी कहानियां 'खेद है' कि स्लिप सहित लौट आती। मैं फिर भेजती यह भेजने लौटने का चक्कर मुझमें लिखने और छपने की जिद पैदा करता गया। फिर जब छपने का सिलसिला शुरू हुआ तो धर्मयुग, सारिका, ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कहानी, नई कहानियां, आजकल, माया, माधुरी, मनोरमा और ढेरों लघु पत्रिकाओं में भी छपी। लघु पत्रिकाओं में छपने का मंत्र विजय भाई ने मुझे दिया कि—'अगर पाठकों तक पहुंचना है, तो लघु पत्रिकाओं में छपो।' और मेरा पाठक वर्ग खड़ा होता गया। आश्चर्य होता था एक कहानी छपती और 80-80 पत्र प्रशंसकों के आते। वे पत्र मेरी धरोहर बनते गए। मेरी कहानियां चर्चित होने लगी। विशेषांकों के लिए, संकलनों के लिए मेरी कहानियाँ आमंत्रित की जाती। परिचर्चाओं में मुझे प्रमुखता मिलती। मनोहर श्याम जोशी, अवधनारायण मुद्गल 'कमलेश्वर जी मेरे दोस्त बन गए। कमलेश्वर जी औरतों को लेकर भले ही विवादों में रहे, पर मुझे वे अपनी बेटी मानते थे। समांतर कहानी आंदोलन के दौरान सारिका में मेरी कहानियों को छापकर उन्होंने मुझे जो प्रेरणा दी, वह मैं कभी नहीं भूल पाऊंगी।

हम सब साहित्यकारों पत्रकारों का अड्डा था कॉफी हाउस। मैं उसे कॉफी हाउस न कहकर बौद्धिक हाउस कहती थी। हम सब यहां एकत्रित होकर हर विषय पर जमकर बहस करते थे। कभी ललित सुरजन भाई कभी परसाई दादा, मलय भाई, ज्ञानरंजन, विजय भाई। मेरे लेखो, कहानियों के ये ही प्रेरणा स्रोत रहे। जब कभी कोई साहित्यकार जबलपुर आता तो एक बैठक कॉफी हाउस में जरूर होती या फिर रोटरी क्लब वाले बैठक आयोजित करते। उन दिनों आज जैसी धूमधाम, टीमटाम, सहभोज से श्रोताओं को जुटाने का फैशन न था। हम किसी फूल के महकने पर भँवरे सा मंडराते खुद ही पहुंच जाते। न कोई छोटा, न बड़ा। सबको बराबरी से बोलने का मौका दिया जाता। हरिवंशराय बच्चन जब आए तो उनके काव्य-संग्रह 'हलाहल' पर विचार गोष्ठी रखी गई। न जाने क्यों उन्हें

देखकर मुझे अजीब-सी आत्मीयता का बोध हुआ। मैंने उन के करीब जाकर सिर झुका कर नमन किया। मेरा माथा उनके सीने से छू रहा था। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा। मैंने कहा—

"आपके सौम्य व्यक्तित्व को देख कर तो नहीं लगता कि आपने 'हलाहल' लिखा होगा।"

उन्होंने ठहाका लगाते हुए कहा—

''रस विष को गहरे पच जाने दो
तब तो होगा जीवन धन्य तुम्हारा।''

और 'हलाहल' की एक प्रति मुझे भेंट की। मैं आज भी स्वीकार करती हूँ कि विष को पचाने की जो सीख मुझे बच्चन जी ने दी थी वही मुझे ठहराए है इस हलाहलभरे जीवन में।

इसी बीच ब्लड कैंसर से अमृतराय के छोटे बेटे 18 वर्षीय मिथुन की मृत्यु हो गई। मिथुन से मैं गहरे जुड़ी थी। मुझे पता था अब वह कुछ ही दिनों का मेहमान है और यह पता होना मौत की आहट को कैसे शरीर के हर कतरे से सुनना है, मैंने महसूस किया था। मैं इस दुख में भी वट वृक्ष से खड़े अमृतराय और सुधा जीजी से लिपटकर जब रोई थी, तब मैं अनागत से अनजान थी कि एक दिन ऐसा भी आएगा जब मैं भी इस कातर शौक से गुज़रूँगी। मिथुन और हेमंत की मृत्यु में बस इतना अंतर होगा कि मिथुन की ओर मौत आहिस्ता आहिस्ता बढ़ी... हेमंत को झपट कर उठा ले गई।

उन्हीं दिनों इमरजेंसी के दौरान हम सबकी जान सांसत में थी कि कहीं पकड़े न जाएं। जबलपुर के जनवादी आंदोलन से जुड़े कई लेखक, पत्रकार, सलाखों के पीछे कर दिए गए। कई भूमिगत हो गए। धर्मवीर भारती ने मौका देख पहल के विरुद्ध मुहिम चलाई थी। दस अंकों में कुछ मीडियाकर्मी से उसके विरुद्ध लिखवाया था। राजनीति घेराबंदी की थी। ज्ञानरंजन, विजय भाई और अन्य लेखकों को गिरफ्तार करवाने वालों से संपर्क साधा था। वे श्रेष्ठ संपादक (अपने सहकर्मियों के लिए तानाशाह) और बहुत अच्छे लेखक, कवि थे। पर वे पर पीड़क होंगे यह मैंने जाना न था। (तब रेत की मछली पढ़ी नहीं थी) चूँकि बाबू जी एडवोकेट थे। तो उन्होंने एहतियात बरती और हमारे पास जितनी भी संदेहास्पद किताबें थीं उन्होंने आंगन में रखकर होली जला दी। रात 3 बजे विजय भाई उत्तेजित मन लिए घर लौटे। आंगन का नजारा देख उनका धैर्य जवाब दे गया। हम अवाक और मौन उन किताबों को राख का ढेर होते देखते रहे और वह राख हमारे आंसुओं से भीगती रही। खबर थी कि उसी रात विजय भाई के दोस्त कलकत्ते में 'रविवार' के संपादक एस पी, यानी सुरेंद्र प्रताप द्वारा संपादित संजय गांधी और इंदिरा गांधी वाले रविवार के अंकों को भी जलाया गया था। एस पी चाहते थे कि विजय भाई कलकत्ता आकर 'रविवार' संभाल लें, पर मैंने उन्हें सलाह दी कि मध्य प्रदेश हिंदी भाषी प्रदेश होने के कारण यहां पत्रकारिता की जड़ें गहराई तक है। हम चाय के दौरान या लिखते-लिखते सुस्ताने के दौरान इसी विषय पर चर्चा छेड़ देते। मैं चाहती थी तमाम हिंदी के अखबारों अमर उजाला, देश बंधु, दैनिक भास्कर, पंजाब केसरी, स्वतंत्र भारत में पत्रकारिता करूँ और अपनी कलम की तीखी धार से एक नई भाषा शैली को ईजाद करूं। 'देशबंधु' में ललित सुरजन थे; वे गंभीर चिंतक और स्वतंत्र पत्रकारिता के हामी थे। मेरे कई लेखों को उन्होंने देशबंधु तक पहुंचाया। मेरे लिखे लेखों में औरत को लेकर कई सवाल मंडराते। क्यों परिवार की मान मर्यादा शिष्टता की सीमा रेखा लड़कियों को ही दिखाई जाती है लड़कों को नहीं।

क्यों पिता, भाई, पति और बेटे की सुरक्षा के घेरे में वह जिंदगी गुजारे? क्यों सारे व्रत-उपवास नियम-धर्म औरतों के ज़िम्मे? क्यों पति और पुत्र के कल्याण के लिए ही सारे व्रत पूजा अनुष्ठान क्यों नहीं औरतों के लिए यह सब? यह करो? यह मत करो, ऐसे उठो, ऐसे बैठो की संहिताएं बस लड़कियों के ज़िम्मे? मुझे इस सबसे चिढ़ थी। मेरे अंदर इसके विरोध में गुबार भरता गया था और मैंने ठान लिया था कि मौका पाते ही मैं इस सब के खिलाफ अपनी कलम थामूंगी। उन दिनों मैं हर छोटे-बड़े लेखक को पढ़ रही थी। अहिंदी भाषी और विदेशी लेखकों को भी। मैं कई के लेखन के पक्ष में थी। कई के विरोध में। मैंने एक बड़ा-सा रजिस्टर बना लिया था जिसमें मैं हर पढ़ी हुई किताब की समीक्षा

करती थी। मुझे लगता था कहीं मैं आलोचक न बन जाऊं। जो मैं बनना नहीं चाहती थी। मेरी दृष्टि में आलोचक मात्र दूसरों के लिखे को उधेड़ता, बिखेरता है। मुझे इस प्रवृत्ति से परहेज था। उन किताबों को पढ़कर कई बार मैं रोई थी। मुझे लगा अगर मैं समाज से जुड़ना चाहती हूँ तो मुझे अपनी वेदना से बाहर आना होगा। तब मैंने औरों से जुड़ना सीखा। मैंने पाया इस जुड़ाव का मजा ही कुछ और है। सुख ही कुछ और है। यह जुड़ाव जब रचना बनकर उभरता है तो कभी दस्तक दे कर, कभी दबे पाँव, कभी जान समझ कर, तो कभी अनजाने ही, कभी एक ही पल में, तो कभी महीनों-महीनों, तो मैं चमत्कृत हो जाती हूँ। वह पल मैं किसी से बाँट नहीं पाती।

और फिर हुआ यूं कि एस पी कलकत्ते से मुंबई धर्मयुग में बतौर पत्रकार आ गए और अपनी योग्यता के लिए उचित प्लेटफॉर्म की तलाश में पहले विजय भाई और फिर कुछ महीनों बाद मैं भी मुंबई आ गई। मुझे एक नई जमीन की तलाश थी, जहां मैं अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को सामाजिक संदर्भ देकर सहयोग, साहचर्य और सहकारिता की वैकल्पिक नारी संस्कृति को लिख सकूं। नारी विषयक वैचारिक अवरोधों के खिलाफ हल्ला बोल सकूं।

स्टेशन पर एस पी के साथ विजय भाई मुझे लेने आए।

"ये विजय दो महीनों से चप्पलें घिसता रहा तुम्हारे लिए मकान तलाशने में। तब जाकर अंधेरी में वन रूम किचन का फ्लैट किराए पर ले पाया।"

मेरी आंखें छलक आई थीं और मैंने पलकें झुका लीं थी। वह वक्त था मुंबई में प्रगतिशील आंदोलन इप्टा और ट्रेड यूनियन आंदोलनो का। कई नामी गिरामी लेखक फिल्मी गीत और संवाद लिखने को विभिन्न प्रदेशों से जुड़ आए थे। यहां 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ग्रुप अपने चरम पर था। जहां से निकलने वाली पत्रिकाओं से मुंबई की एक अलग पहचान बनती थी। पृथ्वी थिएटर, तेजपाल थिएटर में खेले गए तुगलक, हयवदन, सखाराम बाईंडर जैसे नाटक शो-पे-शो किए जा रहे थे। मुझे इस सबके बीच अपनी जगह बनानी थी। धर्मवीर भारती जी मुझे खूब छाप रहे थे। इसी दौरान मुझे उज्जैन का कालिदास सम्मान भी मिल चुका था। एस. पी. समझाते "अब इतना कुछ तो पा रही हो फिर क्यों पत्रकारिता के पीछे पड़ी हो। पत्रकारिता की राहें बड़ी कठिन है।"

मैं जबलपुर से कॉलेज की लेक्चररशिप छोड़ कर यहां इसलिए नहीं आई हूँ सुरेंद्र भाई कि पत्रकारिता छोड़ दूं बल्कि मैंने तो पत्रकारिता में ग्रेजुएट भी कर लिया है।

उन्होंने मुझे गले से लगा लिया कहा—

"तुम्हे उस दूर पर्वत तक पहुंचना है जहां पत्रकारिता नूर बिखरा पड़ा है। उस नूर से आंखें चौंधिया मत लेना। उसे सहना।"

मैं नवभारत टाइम से बदस्तूर लिखने लगी। डेस्क वर्क मैं करना नहीं चाहती थी सो फ्रीलांस ही किया। बहुत कुछ किया... आर टी वी सी में कई कमर्शियल प्रोग्राम लिखे जो रेडियो टीवी पर प्रसारित होते थे। लिंटास जॉइन किया। जहां कई जिंगल लिखे भी कंपोज भी किए। विज्ञापन की दुनिया से जुड़ना पैसों की वजह से हुआ। मन खिन्न रहता था। यह तो मेरा मार्ग नहीं है। फिर विजय भाई का एक्सीडेंट हुआ। उनके घुटने की हड्डी चूर-चूर हो गई। नानावटी अस्पताल में अस्थाई प्लास्टर तो चढ़ा दिया गया पर ऑपरेशन करके चांदी की नी कैप लगवाना अनिवार्य हो गया। इतने रुपये कहां से आते? एस पी अपनी बेबसी पर लाचार थे।

"यार विजय तुम बिना नी कैप के चलोगे कैसे? चांदी का नी कैप कहां से जुटाएं? हजारों का खर्चा है।"

फिर लंबा ऑपरेशन हुआ। नी कैप के टुकड़े निकाले गए। विजय भाई बिना नी कैप के हो गए। एस पी उदास थे। मैं रो रही थी।

अरे रोती क्यों है हम बिना नी कैप के ही चलने की आदत डाल लेंगे। क्यों एस.पी. विजय भाई ने जितनी वीरता से ये बात कही उतनी ही हार मैंने और एस पी ने महसूस की। दिल्ली में इप्टा द्वारा खेले गए नाटक 'आखरी शमा' को अभिनीत कर और आर टी वी सी जॉइन कर रमेश श्रीवास्तव अभी मुंबई में सेटल होने की कोशिश में ही थे कि मेरी भाभी की इच्छा से (रमेश उनके मायके की तरफ के रिश्तेदार थे) साहित्यिक तबके ने मेरा घेराव कर उनसे मेरी शादी कर दी।

रमेश बेहतरीन कलाकार थे। गायन, वादन, अभिनय, संवाद और ग़ज़ल गीत लिखने में पारंगत थे। भारती जी ने मेरी शादी और वर्मा की जगह श्रीवास्तव होने की खबर 'धर्मयुग' में छापी। एस पी बरस पड़े—

"यह क्या किया। तुमने अपनी ही पहचान खुरच खुरच कर मिटा डाली।"

मेरे पास जवाब न था। हां भूल तो हुई थी मुझसे। अब मैं इस बदलाव को पुराने सिरे से जोड़े रखने की जद्दोजहद में कमर कसकर जुट गई। मैंने अपनी पहचान फिर से बनाई। भारती जी ने धर्मयुग में मुझसे लगातार 2 वर्षों तक अंतरंग कॉलम लिखवाया। 'नवभारत टाइम्स' में विश्वनाथ जी ने मानुषी कॉलम भी तीन वर्षों तक लिखवाया मुझसे। दैनिक संझा 'लोकस्वामी' में मैं दो वर्षों तक साहित्य का पन्ना संपादित करती रही। ललित पहवा जब 'मेरी सहेली' पत्रिका लांच कर रहे थे, तो संपादक के पद का ऑफर लेकर खुद मेरे घर आए थे। पर 'मेरी सहेली' का कलेवर मेरे मिजाज के खिलाफ था। सो हो न सका मुझसे। मुंबई के साहित्यिक माहौल से जुड़कर दोस्तों का दायरा बढ़ता गया। पर यहां कॉफ़ी हाउस न था, जहां बौद्धिक शामें हम गुजार पाते। चित्रा मुद्गल के घर खूब जुड़ाव महसूस होता था। वे मेरी अंतरंग दोस्त थीं। वही कई लेखक इकट्ठे होते अवध नारायण मुद्गल सारिका के संपादक थे।

वे मेरी तपस्या के दिन थे। मेरा बेटा हेमंत पैदा हो चुका था और मैं बेहद खुशगवार अनुभवों से गुजर रही थी। मेरी जचकी उज्जैन में हुई थी। जहां अम्मा-बाबूजी जबलपुर छोड़कर जा बसे थे। हेमंत के पैदा होते ही मैंने सारी कायनात को अपनी मुट्ठी में पाया और मैं जो हेमंत को पालते हुए स्वतंत्र पत्रकारिता और लेखन में रमी रहती थी सो शादी के तीन वर्षों बाद ही रमेश को लेकर मेरे भ्रम टूटने शुरू हो गए। एक कलाकार ऐसे स्वभाव, आदतों और व्यवहार का होगा, मैंने सोचा न था। वे भी परपीड़क निकले। शायद इसी का नतीजा था कि वह जीवनभर आदमियों के सैलाब में बिल्कुल तनहा रहे। मैं इतनी शॉक्ड थी कि धीरे-धीरे अपना स्वास्थ्य खोने लगी। गहरे अवसाद का शिकार हो गई मैं। मेरी दोनों ओवरीज़ में सिस्ट पड़ गई और लगातार रक्तस्राव से मैं बेहोश हो हो जाती। डॉ ने कैंसर की संभावना जताई। लिहाज़ा मैं लंबे-लंबे थका देने वाले टेस्ट्स से गुजरने लगी, फिर लंबा ऑपरेशन हुआ। मेरा शरीर निरंतर छीजने लगा। टाँके रड़कते रहते। ढेरों दवाइयाँ, इंजेक्शन, दर्द, पीड़ा, उफ! मेरा मन बुझ गया। लेखनी थम गई और मुझे लगा मैं जिंदगी से हार गई हूँ। भेंट चढ़ गई हूँ अनचाहे वैवाहिक जीवन की। सब कुछ इतना जानलेवा होगा सोचा न था। कतरा-कतरा दर्द...बाहर का भी भीतर का भी कलेजे को बींधता रहा। मैं मर रही थी। मैं मरती रही। लगातार चार सालों तक मैंने अपने अंदर का वनवास सहा। और एक दिन अचानक मेरे सामने था मेरा कहानी-संग्रह "बहके बसन्त तुम" मेरी लेखिका बहन प्रमिला वर्मा मुस्कुराती खड़ी थी। जैसे कह रही हो कि "तुम्हारी जैसी जुझारू लड़की हार मान गई!!! उठो तुम्हें हेमंत के लिए जीना है। तुम्हें साहित्य के लिए जीना है।"

मैं अपने पहले कहानी संग्रह को देख रो पड़ी। ये आँसू उन खुरदुरी घटनाओं को मिटाने के लिए थे जो मेरे जीवन की रुकावटें थीं और मैं उठ खड़ी हुई।

मेरी पहली उठान हेमंत के लिए थी। रमेश से इस वादे और समझौते के साथ कि वह मेरे बेटे के पालन-पोषण में न तो अपनी कमाई खर्च करेंगे, न बाप की मुहर लगने देंगे। मेरा उनका सामाजिक रिश्ता बरकरार रहेगा, पर पति-पत्नी का नहीं। मैंने बी.एड. किया और बिरला पब्लिक स्कूल में अध्यापन करने लगी। मैंने हेमंत को लायकवर इंसान बनाने में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया। आज मैं इस बात को गर्व से कह सकती हूँ कि मैं हेमंत की मां भी थी पिता भी।

मेरी दूसरी उठान मेरे लेखन के लिए थी। उन दिनों मुंबई से 'शिक' नामक पत्रिका निकलती थी। जिसके संपादक रवींद्र श्रीवास्तव थे। उन्होंने शिक में मेरा लघु उपन्यास 'टुकड़ा-टुकड़ा जिंदगी' के साथ धारावाहिक छापा फिर वे 'दिल्ली साप्ताहिक हिंदुस्तान' में चले गए। उन्होंने मुझे 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का मुंबई में ब्यूरो चीफ बना दिया। मैं दिल्ली के दैनिक 'वीर अर्जुन' की भी ब्यूरो चीफ थी। पर जब भी लगता है कि जिंदगी ढर्रे पर आ गई है कोई-

न-कोई हादसा हो जाता है। विजय भाई नहीं रहे। 48 वर्ष की अल्प किंतु अविस्मरणीय ज़िन्दगी जीकर वे चले गए हृदय गति रुक जाने के कारण।

बाबू जी के बाद यह दूसरा झटका था। मैंने खुद को अनाथ पाया। ईश्वर के अन्याय पर मैं थर्रा उठी थीं। संभलने में महीनों लगे। विजय भाई के बाद आगरा (दयालबाग) में बिल्कुल एकाकी जीवन गुजार रही अम्मा को मैंने संभाला। उनके खर्चों, जरूरतों में मैंने कभी कोई कमी नहीं आने दी। वे बचपन से ही मुझे अपना बेटा कहती थीं। उनकी इच्छा थी कि मैं ही उन्हें मुखाग्नि दूं और मैं ही उनकी अस्थियां गंगा में प्रवाहित करूं। उनका अस्थि-कलश लेकर जब मैं बनारस के मणिकर्णिका घाट में कमर-कमर तक पानी में खड़ी थी, तो मेरे सब्र का बांध टूट गया था...'अम्मा तुम न कहती थीं कि मैं तुम्हारी बेटी नहीं बेटा हूँ। आज मैंने अपना अंतिम कर्तव्य पूरा किया।'

बनारस की वह सुबह गवाह है मेरे आंसुओं की और मेरे संकल्प की।

इस बीच कितना कुछ घटित हो गया। विजय चौहान, अमृतराय, परसाई जी, एसपी नहीं रहे। समाचार चैनल 'आजतक' में एस पी का वाक्य मिलते हैं कल, देखते रहिये आज तक अभी भी कानों में गूँजता है। सब एक-एक कर छूटते चले गए। और चला गया मेरा हेमंत भी। अपनी मां को इस दुनिया में अकेला छोड़कर... है कोई शब्द इस पीड़ा के लिए? मैं तो अपनी नियति में रेखाएँ ग्रहों को लिखा कर ही नहीं लाई थी। दूसरों का शाप जो ढोना था मुझे।

कुछ शुभचिंतकों के बहकावे में आकर मैंने मुंबई से बोरिया बिस्तर बांधने की योजना बनाई और मार्च 2006 में मीरा रोड का अपना फ्लैट बेच कर लगभग बिस्तर भोग रहे रमेश को लेकर लखनऊ उनके पैतृक निवास पर पहुंची। लेकिन उनके नाम के घर को उनके ही भाई-बहनों ने हड़प लिया था और रमेश के साथ एक अजनबी की तरह पेश आ कर हमें बाहर का रास्ता दिखा दिया था। गलती रमेश की थी। अपनी करतूतों के कारण सबसे पहले से ही वे बिगाड़ मोल ले चुके थे। मैं अपने प्रयास में असफल रही। उम्मीद की हर किरण अंधकार में खो चुकी थी और मेरे कंधों पर रमेश की बीमार लकवाग्रस्त जिंदगी का बोझ था जिसे मैं ढोना नहीं चाहती थी। मुझे मुंबई वापस लौटना पड़ा। अपने जानलेवा एकाकीपन में खुद को रोपना पड़ा। मेरे साथ ही ऐसा क्यों हुआ? क्यों मुझे प्यार करने वाले मेरे बाबूजी, विजय भाई और हेमंत असमय दुनिया से चले गए? क्यों मैंने रमेश के साथ अनचाहे अजनबीयत भरे जीवन की बेड़ियों में स्वयं को जकड़े रखा और क्यों दुनियादारी के तमाम तकाजों के बावजूद भी एक नकारात्मक संबंध के बोझ को अपनी अंतरात्मा के कंधों से उतार नहीं पा रही थी। लगता था जैसे जिंदगी दो शून्यों के बीच झूलता एक पुल है और मैं उस पर दम साधे चल रही थी कि अब टूटा... अब टूटा...क्या मेरे भीतर ही बचना था यह सब...।

अब रमेश नहीं है मैंने अपनी जिंदगी के कीमती वर्ष उनकी कुंठा में होम कर दिए। अपने अवसाद और घोर उदासी के पलों में जब मेरी कलम ठहर जाती है, पाकिस्तान से आई शायरा के शब्द कानों में गूंजते हैं जो उसने उर्दू मरकज़ के मुशायरे में मेरी ग़ज़ल सुन कर कहे थे कि "आप पाकिस्तान में क्यों नहीं हुई" और गूंजते हैं गोवा की केंद्रीय कारागार आग्वाद जेल में हेरोइन रखने के जुर्म में 8 वर्ष की सजा झेल रहे कैदी सुधीर शर्मा के शब्द जो उसने मुझे पत्र में लिखे थे—"आप नारी चेतना ही नहीं, बल्कि इंसानी चेतना की संपूर्ण लेखिका हैं, बेहद दृष्टि संपन्न और धारदार है कलम आपकी।" तो सरहदों और जेल के सींखचों के अंदर पहुंचे लेखन के कारण धन्य हो जाती हूँ और धन्य हो जाती हूँ बल्गारिया से आई शोध छात्रा डोरा को आदिवासी इलाकों में ले जाए जाने और सहायता करने के लिए मुझे जो महाराष्ट्र सरकार ने कोऑर्डिनेटर नियुक्त किया था। अंडमान निकोबार, उड़ीसा और भारत के अंचल में रहने वाली अन्य सभी आदिवासी औरतों पर मेरे विशेष कार्यों के लिए महाराष्ट्र के तत्कालीन गवर्नर और बाद में केंद्रीय विदेश मंत्री एसएम कृष्णा के हाथों राजभवन में लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया गया। मेरी पुस्तक "मुझे जन्म दो माँ" (स्त्री विमर्श) के लिए मुझे राजस्थान की डीम्ड यूनिवर्सिटी से पीएच.डी की मानद उपाधि प्रदान करना मेरे 8 वर्षों के गहन शोध का फल है, जो मैंने इस

पुस्तक को लिखने में लगाए।

मैंने अपने खौफनाक एकांत को रचनात्मक चैनल में डालकर मथ डाला है। आखिर जीवन और दर्शन ने हमें यही सकारात्मक रवैया दिया है। हमारे चलने-फिरने, हँसी-खुशी, काम-धाम के नीचे पता नहीं कितने खंडहर छिपे होते हैं क्या हम टटोल पाते हैं उन्हें?

मेरे सरोकार मेरी प्रतिबद्धता जन और जीवन के प्रति है। मैं मानती हूँ कि लेखन एक ऐसा सफर है जहां अतीत और भविष्य दोनों मेरे हमसफ़र हैं। मैं तमाम वैज्ञानिक प्रगति, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, छिछली राजनीति, दृश्य, श्रव्य मीडिया, इंटरनेट पर साहित्य की चुनौतियों के सामने जिरह बख्तर बांधकर खड़ी हूँ और जीवन में विश्वास बरकरार रखती हूँ। इसी विश्वास के बल पर 1998 से विजय वर्मा कथा सम्मान और 2001 से अब तक हेमंत स्मृति कविता सम्मान के सफल आयोजन के पश्चात् अब इसे अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने की मुहिम में जुटी हूँ। एक बार मुंबई से उखड़कर पुनः मुंबई में आ बसना मात्र मेरी संकल्प-शक्ति ही थी, हालांकि घर अब किराए का है, लेकिन शानदार नौकरी की संतुष्टि भी है। इस महानगर में अकेले रहना अपने आप में एक चुनौती है, लेकिन मैं खुद के बुने अभेद्य कवच को धारण किए हूँ, जिसमें किसी का भी प्रवेश वर्जित है। अब मैं हूँ और अछोर फैली मेरी तन्हाई और मैं इस तन्हाई को एंजॉय करती हूँ, क्योंकि जानती हूँ यही जीवन की सच्चाई है। चाहती हूँ हेमंत की यादों को और-और जीऊँ। अपनी अतृप्ति को तृप्ति में बदल डालूँ। भले ही मुझे कदम दो दुनियाओं में एक साथ रखने पड़ रहे हैं। एक यथार्थ की दुनिया, दूसरी सपनों और कल्पनाओं की दुनिया।

जामे हर जर्रा है सरशारे तमन्ना मुझसे,
किसका दिल हूँ कि दो आलम से लगाया है मुझे।

कविता

चिरन्तर

गीतू

नित निरन्तर रच रही
भीतर मनन सी बस रही
सृजन की कोंपल नई
वृक्ष पर फिर सज रही

से सतत संघर्ष गहरा
धरा में ज्यों ठहरा हुआ
निस्सृत श्वासों से झरता
आलाप ये गूँजा हुआ

चेतना प्रखर आलोक की
पल पल उद्दीपित जोत सी
विषम चुनौतियों को झेलती
लेखनी सूरज के ओज सी

तुम ही मेधा तुम ही शक्ति
तुम ही चिरन्तर ढाल हो
ममतामई तुम प्रेरणा की
एक जीती हुई मिसाल हो

संतोष श्रीवास्तव के पाठक

पूर्णिमा ढिल्लन

यह संतोष जी के अपनत्व और स्नेह का जादू ही है जो सबको उनकी ओर आकर्षित कर उनके प्रेम पाश से बांध लेता है।

साहित्य की अविरल धाराओं से निकलने वाला संगीत उनके जीवन की अनमोल धरोहर है और यही ईश्वर द्वारा दिया गया बेशकीमती तोहफा है, इस तोहफे ने उनके जीवन को बहुत खूबसूरत बना दिया है। इस खूबसूरत तोहफे से उनका जीवन सजा रहे! यही ईश्वर से प्रार्थना है। हिंदी साहित्य की मल्लिका साहित्य के चिराकाश में सदा विचरण करती रहे। उनकी लेखनी से साहित्य की ऐसी धाराओं का प्रवाह हो जो ऐसे स्तंभ स्थापित कर सके कि आने वाली पीढ़ियों के लिए अमूल्य धरोहर बन जाए। बस यही ईश्वर से प्रार्थना है। कलम उनका सहारा बन उनको ताकत देती रहे, शब्दों के बेशकीमती मोतियों से सदा माला पिरोती रहे।

कभी न टूटें लेखन की ये लड़ियां इन्हीं मालाओं के सम्मान से उनका व्यक्तित्व दमकता रहे।

प्रमिला वर्मा (प्रसिद्ध लेखिका) सोलापुर महाराष्ट्र

शनैः-शनैः उन्नति और सफलताओं की ओर अग्रसर होते हुए आज उन्होंने साहित्य जगत में जो मुकाम हासिल किया है, वह निश्चय ही सराहनीय है। मुझे याद है जब धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कहानी, सारिका, नई कहानियां तथा और भी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में संतोष दी की कहा नियाँ लगातार छपती रहती थीं, और सुदूर बर्फीले स्थलों में तैनात सैनिकों के लिए, जहाँ 'बिनाका गीतमाला' अपना कार्यक्रम पेश करता था। वहीं संतोष दी की कहानियों के अनेक प्रशंसक थे। जो यदा-कदा किसी के हाथ या स्वयं कोई सौगात उन्हें भेजते थे। जिनमें शहद, अनानास एखजूरए अखरोट आदि होते थे। स्नेह प्रगट करने के, सैनिकों के इस तरीके की सराहना सभी करते थे। सीमा पर तैनात सैनिकों की वे बहन थीं। ऐसा पाठक वर्ग शायद ही किसी को प्राप्त होगा।

फिर कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों को प्राप्त करना उनकी लेखकीय प्रतिभा का ही परिणाम है। वे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय ख्यात लेखिका हैं।' जिसकी जिंदगी में इतना बड़ा हादसा हुआ कि एकमात्र संतान हेमंत ने छोटी-सी आयु में संसार को अलविदा कह दिया हो और फिर उसकी माँ दृढ़ संकल्प से खड़ी होकर सिर्फ और सिर्फ साहित्य को समर्पित हो गई हों। उन्होंने अपने दर्द को अपनी ताकत बनाया। वे युवा लेखकों की प्रेरणा हैं। यह भी एक उदाहरण है हम सब के लिए।

उनके लेखन को उनकी ऊर्जा और नित नई सफलताओं को मेरी अनेक शुभकामनाएँ।

दुख की परिभाषा बदली है संतोष ने

स्व. आलोक भट्टाचार्य

उनका नाम भर संतोष है। बाकी बात यह है कि अपनी लिखी रचना से वे कभी संतुष्ट नहीं होतीं और इसीलिए वे अपनी रचनाओं की सबसे बड़ी आलोचक भी हैं। आप पाएंगे कि उनमें एक तड़प है। एक अबूझ छटपटाहट है। वह हमेशा कुछ न कुछ नया सोच रही हैं। नई योजनाएं, नए कार्यक्रम बना रही हैं। उनमें बहुत उत्साह है। आप उनसे मिलें, वह आपको बताएंगी कि उन्होंने क्या-क्या किया है। क्या कर रही हैं और क्या करने वाली हैं। उनके यह सभी काम साहित्य से जुड़े होते हैं। वह अपने घर पार्टी कर रही हैं, तो स्थानीय या मुंबई के बाहर से आए साहित्यकारों के साथ। पिकनिक जा रही हैं तो साहित्यकारों के साथ।

कई लोगों को लगता है, लग ही सकता है कि यह संतोष की अतिरिक्त गतिविधियां हैं। एक्स्ट्रा करिकुलर यानी साहित्येतर, साहित्य से बाहर की दौड़-भाग लेकिन ऐसा है नहीं। दरअसल वे इन्हीं गतिविधियों में से अपनी रचनात्मकता की आग को धधका, रखने का ईंधन जुटा लेती हैं। उनके इस कार्य का एक अहम हिस्सा है दूरदराज के लेखकों से संपर्क बनाए रखना; जिनके साथ उनकी मुलाकात विभिन्न साहित्यिक सम्मेलनों या विश्वविद्यालय के सेमिनारों में होती रहती है। इन्हें वे अपनी बिरादरी भी कहती हैं। ऐसा करके अपने परिवेश को साहित्य मंडित बनाए रखती हैं और इस तरह खुद को ऑक्सीफाइड कर लेती हैं। संतोष उदार होती हैं, स्नेहिल होती हैं, मददगार या फिर नए लेखकों को प्रमोट करने की दरियादिली उनका अंतिम ध्येय अंततः साहित्य होता है।

अच्छे साहित्य को धर पकड़ने के लिए सांसारिक लापरवाही या व्यवहारिक क्रूरता आपको देखनी है, तो बाबा नागार्जुन में देखें, राजकमल चौधरी में देखें। फर्क यह है कि संतोष में लापरवाही सिरे से गायब है। वे सजग हैं। व्यवहार में क्रूर नहीं, अति कोमल हैं।

संतोष के खून में साहित्य है। उनके डीएनए में साहित्य है। उनके पिता दर्शन शास्त्र की किताबें लिखते थे, माँ गीत लिखती थीं। उनके भाई विजय वर्मा साहित्य की बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। छोटी बहन डॉ. प्रमिला वर्मा भी हिंदी की स्थापित कथाकार हैं। संतोष का एकमात्र बेटा हेमंत मात्र 23 साल की उम्र में, जिसकी अकाल मृत्यु एक दारुण, हृदय विदारक दुर्घटना में हो गई, वह भी कविताएं लिखता था। बाद में हेमंत की कविताओं का संग्रह छपा "मेरे रहते"

मेरा संतोष से परिचय उनके पहले कथा-संग्रह 'बहके बसन्त तुम' के लोकार्पण के अवसर पर 'नूतन सवेरा' के ऑफिस में हुआ और तब से हम घनिष्ठ मित्र हैं। अब तो और भी अधिक, जब उनके बड़े भाई विजय वर्मा और पुत्र हेमंत की स्मृति में स्थापित 'हेमंत फाउंडेशन' से मैं भी जुड़ गया हूँ। संतोष ने बहुत जल्दी-जल्दी दो बड़े दुख झेले। पहले जवान-होनहार बेटे हेमंत की अकाल मृत्यु और फिर कुछ ही समय बाद कैंसर से पति की मृत्यु। कोई भी महिला टूट ही जाती। संतोष भी टूटती अगर उनके पास साहित्य की शक्ति न होती।

प्रसिद्ध बांग्ला साहित्यकार प्रमथ चौधरी ने कहा है साहित्य भले ही रोटी-रोजगार नहीं दे पाता है, आत्महत्या से तो बचाता है। संतोष भी बच गईं। वे आत्महत्या तो नहीं करतीं, लेकिन शोक से भरी तन्हाई में घुल-घुल कर जीते रहने को भी तो जीवन नहीं ही कहा जा सकता।

उससे उबरकर फिर से जीवंत हो पाने का अवसर उन्हें निश्चित रूप से साहित्य ने ही दिया। संतोष पहले भी खूब सक्रिय थीं लेकिन शोकस्तब्ध एकाकीपन की उस उदास अंधकारभरी खाई की मृत्यु शीतल जकड़ से स्वयं को मुक्त करने के लिए संतोष ने अपनी साहित्यिक सक्रियता को खूब बढ़ा लिया। स्थिर बुद्धि के अचंचल लोगों को संतोष की सक्रियता अतिरेकी जरूर लग सकती है, लेकिन मुझे लगता है, संतोष ने ठीक ही किया। दुखों की परिभाषा बदल

कर संतोष ने दुख को कोसों दूर झटक दिया। लिखना तो कलम मात्र के वश की बात नहीं कि जब चाहा कलम चलाने लगे। यह तो कलम घिसना हुआ कि दुख आन पड़ा और लिखने बैठ गए, ऐसा होता नहीं। दुख पचने को समय लेता है। उसका रूपांतरण समय साध्य है। झटपट कुछ नहीं होता। जब तक लिखना आता या उर्दू लहजे में कहूँ तो उतरता या अपने पंडित विद्यानिवास मिश्र जी के अंदाज में अवतरित होता। तब तक क्या संतोष बैठी रहतीं इंतजार करतीं संतोष ने तय किया लिखना तो होगा ही। जब होगा तब होगा। अभी यह बहुत ज्यादा जरूरी है कि उनका टूटा मन कहीं तो थोड़ा जुड़े। सो वे साहित्यिक गतिविधियों में डूबती चली गईं। शुरू हो गया लेखकों के जन्मदिवस, शताब्दी दिवस, स्मृति दिवस, कहानी-पाठ, कवि-गोष्ठी, पुस्तक लोकार्पण, विजय वर्मा कथा सम्मान, हेमंत स्मृति कविता सम्मान, साहित्य सम्मेलनों में प्रतिभागिता। रायपुर, जगदलपुर, भोपाल, पटना, रांची, इंदौर, लखनऊ, गोवा, सूरत, वडोदरा, हल्द्वानी, देहरादून, अमृतसर, डलहौजी, दिल्ली, कोलकाता और शुरू हो गया कहानी-उपन्यास के साथ गजल, कविता लेखन, स्तंभ लेखन भी। आज मुंबई में संतोष श्रीवास्तव साहित्य की एक जीती-जागती प्रतिष्ठित प्रतिमा हैं और भारत की चर्चित महत्वपूर्ण हस्ताक्षर।

लेकिन इस सबके बावजूद दुख तो दुख ही होता है। अकेलापन, अकाट्य, अभेद्य। वरना हँसती मुस्कुराती संतोष की कलम से यह शब्द न रिसते—

"प्रातः 12:00 या 1:00 बजे तक लिखती हूँ, पर कोई कहने वाला नहीं कि अब सो जाओ।"

उन्हीं का एक शेर—

अब रात बीतती है चलो घर की राह लें
पर वहां भी मेरे सिवा मिलेगा कौन?

शायद संतोष इस बात को आत्मा की गहराई से अनुभव करती हैं कि सिर्फ और सिर्फ लिखने और गहरे सच्चे लिखने के अलावा बाकी सभी कुछ मात्र आवरण ही है। थोथा तामझाम। अनुभव कर पाती हैं, तभी तो सब कुछ के बावजूद, सब कुछ के बाद संतोष कलम की शरण गहती हैं। लेखन का ही हाथ थामती हैं। संतोष जानती हैं कि दुख विराट है। दुख में से ही सांस रोककर, खींचतान कर थोड़ा-सा सुख निकाला जा सकता है। दुख की विशाल मूर्ति के यहां-वहां कोने-कोने से कुरेद-कुरेद कर थोड़ी-सी ऐसी मिट्टी निकाली जा सकती है कि एक छोटी सी मूर्ति गढ़ी जा सके। संतोष दुखों की एक विराट मूर्ति हैं। खुद अपने को कुरेद-कुरेद कर वह सुख के छोटे-छोटे गुड्डे-गुड़िया गढ़ती जाती हैं। दो-एक अपने लिए बाकी दुनिया-जहान के लिए। यही संतोष की रचना प्रक्रिया है।

बहुत कम लोगों को पता होगा कि संतोष श्रीवास्तव चित्रकार भी हैं। चित्रकला की उनकी जानकारी की एक झलक उनके आगामी उपन्यास "लौट आओ दीपशिखा" में पाठक देख सकेंगे। उपन्यास शायद किताबवाले पब्लिकेशन से आ रहा है। संतोष नृत्य कला प्रवीण भी हैं। अच्छी वक्ता भी हैं। रही संतोष के साहित्य की बात तो वहां जीवन अपनी तमाम विशेषताओं और आकस्मिकताओं के साथ मौजूद है। वहां रूमान अगर अपनी पूरी शिद्दत के साथ उपस्थित है, तो सामाजिक सरोकार के खलबलाते, उबलते, बेचैन करते तमाम सवालात भी। टेम्स की सरगम में रूमान अपने उच्चतम ताप और समस्त तार्किकता के साथ यदि मौजूद है, तो 'माधवगढ़ की मालविका' में सती प्रथा के खिलाफ, मुझे जन्म दो माँ में कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ और नहीं अब और नहीं में सांप्रदायिकता के खिलाफ संतोष ने आवाज उठाई है। संतोष के पास जीवन की अद्भुत जटिलताओं को समझने की सहृदयता है। समाज की आर्थिक, राजनीतिक, खासकर भारत जैसे विशिष्ट समाज की जातीय और सांप्रदायिक समस्याओं को समझने की दृष्टि है। साथ ही रूमान की अबूझ बचपनाभरी, नासमझी को भी लाड़ भरी शह देने का ममतापूर्ण माद्दा है। और इन सबको मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति देने के लिए प्रवाहमयी, प्रांजल, खूबसूरत भाषा भी है उनके पास।

संतोष अत्यंत परिश्रमी, समय की पाबंद, स्वाभिमानी व साहसी हैं। गलत चीजों पर कभी समझौता नहीं करतीं। अड़ जाने में तनिक भी नहीं डरतीं। स्पष्टवक्ता हैं लेकिन मृदुभाषी भी। स्नेह से लबालब उनका हृदय है। सारे संसार की पीड़ा धारे, खुद की पीड़ा भूले, अप्रतिम संतोष लिखती रहें। हिंदी साहित्य समृद्ध होता रहे।

अमलतास तुम फूले क्यों

'महिला सुझाव मंच' संस्था का उद्घाटन शकुन सहाय के हाथों होना था। अभी मैं अपनी सीट पर बैठी ही थी कि कुणाल का फोन आ गया। रिसीव करने के लिए मैं हॉल से बाहर निकल आई।

"क्यों बता देती हो कनु पापा को सब कुछ? तुम्हारा फ़ोन आते ही वे कितने डिस्टर्ब हो गये। ज़िद्द करने लगे "कनु का फोन था अभी टी.वी. ऑन करो और मुझे तकियों के सहारे बैठा दो। शकुन के प्रोग्राम की लाइव टेलीकास्टिंग है।"

मेरे अंदर भी कुछ टूट गया शायद गोविन्द सहाय को लेकर या शायद कुणाल के प्रति मेरे मन में जड़ें जमा रहे एहसास को लेकर...

"सॉरी कुणाल...मेरा इरादा उन्हें चोट पहुँचाने का न था मैंने सोचा था अगर उन्हें पल भर की ख़ुशी मिल सकती है तो क्यों न पहल करूँ।"

"हाँ कनु...मैं भी यही सोचता हूँ...और वे खुश भी हुए थे मम्मी को देखकर, उनकी आवाज़ सुनकर...बाद में उनके आँसू निःशब्द बहते रहे।"

कुणाल की आवाज़ भी भीग गई थी...मेरा मन भी। गोविंद सहाय ने खुद को पूरा ख़र्च कर डाला था शकुन के लिए, इसीलिए बार-बार टूटे हैं वे, ढहे हैं वे। मैं लॉन में लगे अमलतास के छतनारे दरख़्त के नीचे रखी पत्थर की बैंच पर बैठ गई। हॉल में माइक पर संचालक की आवाज़ यहाँ तक आ रही थी, शकुन सहाय, यानी हम सबकी ताई आ चुकी हैं। आप सभी जानते हैं गाँव, क़स्बों, बीहड़ों की ख़ाक छानकर शकुन सहाय ने महिलाओं को जागरूक किया है और इस अभियान में अपने विद्रोही तेवरों की वजह से वे हम सबकी चहेती हो गई हैं। आज...डूब गई है आवाज़ लॉन पर फैले सूखे पत्ते हवा में करवट लेने को बेचैन थे कैसे होंगे गोविंद सहाय! अपने हाथों से सरकती ज़िन्दगी के सिरे को रेशा-रेशा होते खुली आँखों देख रहे होंगे। काले गहरे समुद्र पर हलके पीले बादलों की तरह उन अँधकारभरे दिनों की यादें थम गई होंगी उनकी आँखों में। ज़िन्दगी यूँ हुई बसर तनहा। काफिला साथ और सफ़र तनहा।

क्या गुनाह था उनका! यही कि इंजीनियरी की पढ़ाई ख़त्म कर वे शकुन को दिल दे बैठे थे। उन्होंने टूट कर चाहा शकुन को, तमाम विरोधों के बावजूद उन्होंने मंदिर में जाकर शकुन की माँग में सिन्दूर भर दिया था। चिन्गारी भड़ककर शोले उगलने लगी। गोविंद जहाँ पेइंग गेस्ट थे उस फ्लैट के सामने की गली में चाय की दुकान पर पड़ी बैंच पर शकुन के दोनों भाई छुरे की नोक गड़ाकर बैठ गए कि फ़्लैट से बाहर आते ही काट डालेंगे दोनों को..."उसकी ये मज़ाल कि सामंतों की इज्ज़त दाँव पर लगा दे। भाईयों की आँखें शोले सी लग रही थीं, लेकिन न फ्लैट का दरवाज़ा खुला, न मेज पर से चाकू हटा...यार दोस्तों के समझाने पर वे दोनों घर जाने के लिए मुड़े ही थे कि गोविंद शकुन को साईकिल पर बैठा कर वाकोला में शेखर की चॉल में ले आये। वैसे भी गोविंद समेत चार लड़के बतौर पेइंग गेस्टरूम शेयर कर रहे थे। वहाँ शकुन को लेकर रहना नामुमकिन था। "तू दो महीने आराम से चॉल में रह यार...तब तक कहीं बंदोबस्त हो ही जाएगा। मैं बनारस से दो महीने बाद लौटूँगा।" शेखर का फोन था बनारस से।

उस रात चॉल के फर्श पर अख़बार बिछाकर जब दोनों लेटे तो गोविंद की आँखें छलक आईं थीं। सामंती घराने की शान-शौकत छोड़कर शकुन इस हाल में उनके साथ! वो जो अब उनकी शरीके हयात है, वो जो तमाम रुसवाइयों के बावजूद उनके साथ है, भींच लिया गोविंद ने शकुन को अपने सीने में।

"इस वक्त सिर्फ प्यार है मेरे पास तुम्हें देने को।"

"और प्यार है तो हौसला है मेरे पास...तुम साथ हो *गोविंद...तो फिर क्या ग़म कि सूरज रोशनी नदे...हम जुगनुओं...की रोशनी में अपनी तकदीर खुद लिखेंगे.. क्या*

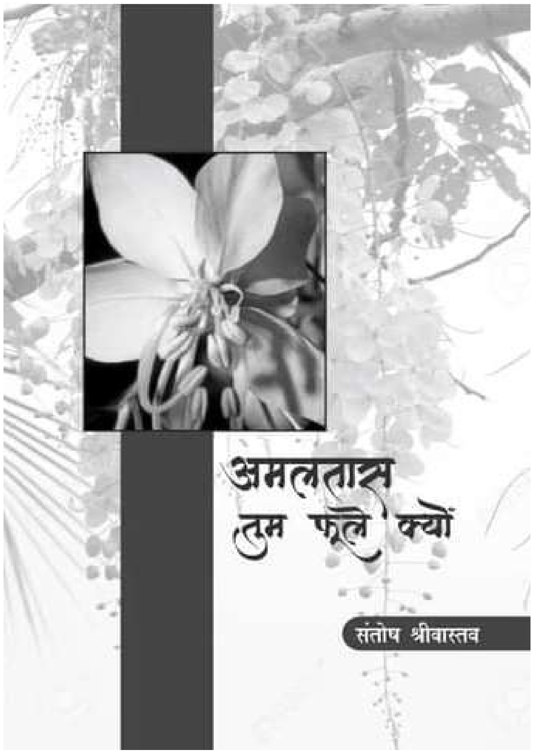

तुम भी सुन रहे हो?"

"क्या?"

"प्यार के अदम्य साहस की हुंकार...मैं सुन रही हूँ, मैंने अपने जीवन में इसे पहली बार सुना है।" गोविंद चॉल की पीली मरियल-सी रोशनी में लाख दिलासाओं के बावजूद देख पा रहे हैं अपने प्यार की बुनियाद पर रखा ज़िन्दगी का पेचीदा महल। एक ताजमहल जो शीशे से बना था और पत्थरों की दीवार से सट कर खड़ा था। उन्होंने अपनी हथेलियाँ फैलाईं, हथेलियों पर पसीने की चिपचिपाहट भीतर तक महसूस की वे कमज़ोर क्यों हो रहे हैं?

चॉल में जैसे अजूबा आ गया हो, पास ही कुकुरमुत्तों सी फैली झोंपड़पट्टी के बच्चे झाँक-झाँक कर शकुन को देख रहे थे। शकुन बाहर निकल आईं। "पढ़ते हो" बच्चों का झुंड खी-खी कर हँस पड़ा। धीरे-धीरे बच्चे उनकी देहरी से कोठरी में अंदर आने लगे शकुन उन्हें पढ़ाने लगीं माँओं के झगड़े फ़साद निपटाने लगीं। शकुन को बहुत मज़ा आता इन कामों में...सब कुछ बहुत दिलचस्प लगता। वे अपने होने का अर्थ जानती हैं...अगर सार्थक जीवन जीना है तो सार्थकता के सुर पहचानने होंगे...उन अनसुनी आवाज़ों को सुनना होगा जो संसार के शोर में दब जाती हैं। नवम्बर के गुलाबी जाड़ों में शेखर अपनी पत्नी उषा को लेकर लौटा एक ही कमरे की खोली...किराए का घर मिलना सबसे बड़ी फ़जीहत। संकोच में डूब गये गोविंद और शकुन। शेखर बाज़ार से मटन ले आया...साथ में दारू की बोतल..."भाभी, आज आपके हाथ से बना मटन खाना है...यार गोविंद मुझे तो इस छोटी सी कुठरिया में चार लोगों के समाने से ज्यादा फिकर तेरी हो रही है। भाभी तो बन गई है सोशल वर्कर. ..अब तेरा क्या होगा?"

गोविंद ने दोनों हाथ ऊपर किये "वही होगा जो मंज़ूरे खुदा होगा।"

वह एक रात हँसी-ठहाकों में बीती, तो फिर हर रात गुज़रनी आसान हो गई। शादी के बाद शकुन का ही घर नहीं छूटा था, गोविंद का भी छूट गया था। माँ-बाप ने ऐलान कर दिया था..."जिसने ज़िन्दगी के इतने बड़े फैसले में हमें दरकिनार कर दिया, हम उसे अपनी ज़िन्दगी से दरकिनार करते हैं।"

सूर्यास्त के बाद सुरमई अँधेरा समँदर को अपनी गिरफ़्त में ले रहा था। वे दोनों किनारे पर बिछी रेत पर टहल रहे थे। पैरों के नीचे रेत में जीवन की धड़कन थी। शकुन देख रही थी...गोविंद के चेहरे की संजीदगी...कहना चाहती थी...भूल जाओ सब कुछ को गोविंद...केवल प्यार को जियो, उस मधुर छुअन को जो हम दोनों के क्लांत जीवन में अमृत बन बरसी है...आओ जितना भर सकते हैं भर लें अपनी अंजलि में इस अमृत बारिश को...जाना चाहा था गोविंद ने अँधेरी एम आई डी सी के हॉस्पिटल क्वार्टर्स में..."पागल हो गया है क्या कितनी दूर पड़ेगा तेरा ऑफ़िस।"

"तो।"

"तो क्या लोन के लिए एप्लाई कर और बढ़िया-सा फ़्लैट ख़रीद ले।"

उषा और शकुन ने भी शेखर की हाँ में हाँ मिलाई। गोविंद ने शकुन की वो अनकही आवाज़ सुनी। ज़िन्दगी को

सही अर्थों में जीने की आवाज़...शरीर को ढोना नहीं है मृत्यु पर्यंत, जीना है...जीना है ज़िन्दग़ी को प्यार करते हुए... गोविंद का मन उमड़ा और बह चला शकुन की ओर...शकुन जो अब उसकी आराधना भी है, आराध्य भी, जीवन भी है। निमित्त भी।

चारों तरफ़ धुआँधार बारिश थी। तेज़ हवाएँ बारिश की फ़ुहार को हर तरफ़ उड़ाएं लिए फिर रही थीं, और नदी में पानी के तेज़ रेले की आवाज़ नदी के जोश का एहसास दिला रही थी। श्रावण मास की यह कैसी कठिन रात थी! दोने में दीप जलाएँ माँ हथेली की ओट किए प्रतीक्षारत थी...कब हवाएँ थमें कब दीप नदी में प्रवाहित हो...यह दीप गोविंद के अफ़सर होने का...बँगले, गाड़ी...क्या क्या, उफ़ आँखें मूँदें हैं माँ "गृहप्रवेश का मुहूर्त गुड़ी पाड़वा का निकल रहा है।" शकुन ने पंडित जी के फोन को कट करते हुए कहा...गोविंद शून्य में ताक रहे थे..."कहाँ हो हुज़ूरऽऽऽ?"

गोविंद ने पलक झपकाईं...जब से लोन लेकर फ़्लैट ख़रीदा है बहुत डिस्टर्ब हैं गोविंद...माँ का सपना सच हो रहा है और माँ नहीं हैं पास में...कैसे, क्या करें कि माँ साथ हों वो देख रहे हैं शकुन का उत्साह...नये घर के लिए किस रंग के परदे होंगे...सोफ़े की गद्दियाँ, कुशन, चादरें...शो केस. ..गृहप्रवेश के दिन का भोज...शेखर और उषा भी जुटे हैं.. ."पार्टी में क़रीबी दोस्त ही आएँगे और भाभी आप मेहंदी लगाएँगी उस दिन और महाराष्ट्रियन नथ पहनेंगी।"

शकुन हँसने लगी, "नथ...क्यों भई।"

"आपको अभी तक पता क्यों नहीं चला कि गोविंद को वैसी मोती वाली नथ बहुत पसंद है।"

"हम क्या जानें...गले, नाक, कान सूने ही अच्छे लगते हैं गोविंद को।"

"अब तुम्हें गहनों की क्या ज़रूरत, तुम तो वैसे ही गज़ब ढाती हो।"

"क़सम से...इस बात पे आप हलके से सिर हिलातीं और नथनी का मोती हाले रे...आई मीन हिलता तो क्या गज़ब ढाता।"

उषा चाय बना लाई थी, गोविंद भी अब सहज थे।

कुणाल के जन्म के बाद शकुन को मायके में प्रवेश मिल गया। मौसम जैसे गमक उठा हो हर फूल के खिलने की ख़बर लेकर हवाएँ शकुन के घर के खिड़की-दरवाज़ों पर दस्तक देने लगीं। गोविंद ने माँ को बतलाना चाहा...माँ, तुम दादी बन गई हो। फोन पिताजी ने उठाया...पापा, आप बाबा...लेकिन उधर से फोन कट गया गोविंद का आहत मन टीस उठा वे बुझने लगे। चरम तक बुझ गये। वे बुक्का फाड़कर रोना चाहते थे पर ज़िन्दग़ी के तक़ाज़ों ने उन्हें रोने न दिया। वे बुझे ज़रूर पर अपने अंदर समाई आग की राख को उन्होंने गरम रखा। यह बात दीगर है कि बाहर न धुआँ था न लपट।

होलिकाष्टक लगते ही शकुन ढेर सारे पकवान बनाकर डिब्बों में भरकर गोविंद के साथ पहुँच गई गोविंद के पैतृक निवास। गोविंद की गोद में दस महीने का कुणाल था।

"किसलिए आए हो? कोई क़सर बाकी रह गई क्या।"

"हम कसूरवार हैं...हमें क्षमा कर दीजिए पिताजी।" शकुन उनके चरणों पर गिर पड़ी। उन्होंने पैर पीछे खींच लिए कुणाल की किलकारियाँ सुन माँ का दिल पिघल गया। वैसे भी औरत का दिल मोम का होता है, ज़रा सी आँच दिखाओ पिघलने लगता है।

दिन भर की मान-मनोबल से पिताजी भी नरम पड़े। मान तो रहे हैं दोनों अपनी ग़लती..."बच्चों से ग़लती हो ही जाती है। उन्हें तो अपना बड़प्पन रखना चाहिए।"

नहीं...सब कुछ सामान्य नहीं हुआ है। पिताजी की ख़ामोशी चीख़ रही है...माँ का पिघलना सुलगते रहने का सफर तय कर रहा है। गोविंद ने महसूस किया है उस पल के हज़ारवें हिस्से को जो साक्षी है कि माँ-पिताजी के मन में चुभा काँटा और गहरे धँसा है। वे उस पल के नन्हें टुकड़े को जी कड़ा करके नँगी आँखों से पूरा का पूरा देख रहे हैं। फिर उसी पल से शकुन का चेहरा झाँका है...वे हाथ ऊपर कर ईश्वर से दुआ माँगते हैं...अपने प्यार के लिए दुआ जो उम्रभर का साथ निभा ले।

रंग से सराबोर शकुन हाथ में गुझिया और भाँग का गिलास लिए सामने है—"लो मेरे भोलेनाथ।"

"तुम ले रही हो क्या भाँग..."

"पी रही हूँ...जिज्जी ने क़सम दी थी...इसलिए।"

गोविंद ने देखा गोबर लिपे आँगन में जगह-जगह रंग-गुलाल बिखरा है...भौजी इशारा कर रही हैं "आओ न देवर जी..."

पिताजी ने शाम को कुछ चुनिंदा लोगों को दावत दे डाली। होली मिलन की भी और नई बहू के आगमन की भी। सारी रस्मों की अदायगी बाक़ायदा हो रही है। शकुन से खीर का कलछुल छुआया गया है...नई बहू के हाथ की पहली रसोई। नई बहू जो अब माँ है कुणाल की...गोविंद के अंदर का पिता मुस्कुराए या रोए?

केतकी के जन्म के बाद शकुन का मन मुश्किल से घर में लग रहा है। जैसे-तैसे कुछ साल निकले, शकुन सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेने के लिए बेताब थी। एक तो उसका रुआबदार व्यक्तित्व और फिर शब्दों में इतना अपनापन कि सामने वाले को लगे जैसे वह उसके लिए ही इस दुनिया में आई है। वह जो भी काम हाथ में लेती उस पर स्वीकृति की मोहर लग जाती। अब उसने अपना अलग एन. जी. ओ. स्थापित कर लिया था, जिसके सचिव पद के लिए चुने गये शहर के प्रतिष्ठित व्यापारी नरेन्द्र चौहान के सम्मान में शकुन ने एक पार्टी रखी। पार्टी में मुम्बई की कुछ नामी हस्तियाँ शामिल हुईं। दूसरे दिन अखबारों में इसकी ख़बर छापी गई। शकुन की संस्था अब चर्चा का विषय थी। शकुन और नरेन्द्र की नज़दीकियाँ भी अब चर्चा का विषय थीं। शुरुआती दौर में गोविंद पर इन चर्चाओं का कोई असर नहीं हुआ पर हालात चुगली कर रहे थे। अब की बार मानसून बाहर नहीं बरसा गोविंद के अंदर बरसा...पूरे अरब सागर की शक्ल में...और लहरें उनका दम घोंटने पे आमादा थीं। कहाँ जाएँ वे? जहाँ भी जाएँगे ये मॉनसून और लहरें तो साथ जाएंगी ही...तब।

लेकिन शकुन के लिए मानसून रोमांटिक था। भीगी ठंडी हवाएँ उसके बालों से अठखेलियाँ कर रही थीं। भीगे बालों से पानी की बूँदें चू रही थीं। चेहरा बिना बिंदी-काजल के धुला-धुला-सा जैसे बारिश की रिमझिम में भीगा गुलाब

"अरे नरेन्द्र, अचानक!" दरवाज़ा खोलते ही खिल पड़ी थी शकुन।

"माशाअल्लाह!"

"क्या?"

"नहीं, कुछ नहीं...इधर से गुज़र रहा था तो सोचा" शकुन दो गिलासों में कोल्ड ड्रिंक ले आई..."अगर आप कहते कि आज मिलने का मन था हमसे तो अच्छा लगता।" नरेन्द्र की आँखों में शकुन का अक्स था। शकुन जैसी शख्सियत को लेकर वह बहुत उलझ जाता था...आज शायद सुलझाव का दिन था। ख़ामोशी तारी थी। हवा चलती तो परदे पे टँगी नन्हीं-नन्हीं घंटियाँ रुनझुना जाती। कोल्ड ड्रिंक ख़त्म कर नरेन्द्र संस्था से जुड़ी बातें करता रहा। कुणाल तो रात नौ बजे कोचिंग से लौटता है लेकिन केतकी और गोविंद के लौटने का समय हो गया था। शकुन अनमनी हो उठी।

"देखो, सुबह से हथेली खुजा रही है। अब मुहावरा बदलना पड़ेगा। पैसे नहीं प्रिय मिलता है हथेली खुजाने से...लो चूम लो ज़रा।"

और नरेन्द्र ने बड़ी बेबाकी से हथेली शकुन के होंठों पर रख दी। शकुन के होंठ काँपे थे, लेकिन हथेली का दबाव भारी था। एक नागवार लम्हा गोविंद के घर में दाख़िल हो चुका था और सब कुछ लड़खड़ा उठा था।

बड़े बोझिल थे वे चार साल। शकुन और नरेन्द्र के रिश्तों की खलबलाहट ने गोविंद का दिल चाक़ कर दिया था। वे खुद को खँगालने लगे। कहाँ चूक हो गई शकुन को समझने में ये कैसे हुआ? क्यों हुआ? वे भीतर-ही-भीतर छीजने लगे। उनके मन में रोपे प्यार के हरे भरे दरख्त की जड़ों को दीमक आहिस्ता-आहिस्ता खोखला करने लगी। पहलेफूल जले गोविंद की रिपोर्ट में डायबिटीज़ कदम बढ़ा चुकी थी। फिर डालियाँ गिरीं...हाई ब्लडप्रेशर, बेड कोलेस्ट्रॉल हाई लेवल पर और पिछले कुछ दिनों से डिप्रेशन भी...पूरा दरख़्त धराशायी हो चुका था। वे खुली आँखों देख रहे थे अपनी बरबादी का मंज़र वे मरना चाहते थे। उन्होंने सारी रिपोर्ट्स छुपा लीं। लेकिन कुणाल की नज़रों से कुछ छिपा न था। वह गोविंद का मानो प्रतिबिम्ब ही था। स्वभाव से संजीदा और ज़िन्दगी की हर धड़कन पहचानने वाला। वह गोविंद को डॉक्टर के पास ले गया। ढेरों दवाइयाँ, परहेज...ताक़ीद—"किसी भी तरह के तनाव, अप्रिय वातावरण से दूर रखें इन्हें...अभी शुरुआत है। गंभीर रूप लेते देर नहीं

लगेगी।"

घर लौटते ही वे बिस्तर पर ढह गये। अन्दर-ही-अन्दर कितना कुछ ढह गया था! रात को शकुन लौटी...

"क्या हुआ? गोविंद।"

गोविंद ने शकुन की ओर देखा, हल्के-से मुस्कुराए, तीर चलाकर पूछती हो क्या हुआ? घायल परिंदें को कम-से-कम पंख फड़फड़ा लेने की आज़ादी तो दो।"

"मम्मी, पापा बीमार हैं।" कुणाल ने औपचारिक-सी सूचना दी। गोविंद ने डीटेल्स बताने को मना किया था। शकुन ने टेबिल पर रखी दवाइयाँ, प्रेस्क्रिप्शन देखा, "इतना कुछ हो गया गोविंद और मुझे बताया तक नहीं।"

"क्या फ़र्क़ पड़ता अगर बता देता।" कहना चाहा गोविंद ने...कहना चाहा कि बहुत नाजुक होता है मोहब्बत का रिश्ता, इसमें बेवफ़ाई को वफ़ा साबित करने के लिए किसी भी तर्क की गुंजाइश नहीं...पर गोविंद को तो लब सीने थे सो सी लिए गोविंद की ख़ामोशी ने कुणाल को भीतर तक झँझोड़ डाला वह तुरन्त चला गया वहाँ से।

उस साल एक साथ तीन घटनाएँ घटीं बहुत कोशिशों के बाद गोविंद को बैंगलोर तबादले की रज़ामंदी मिल गई। केतकी दो दिनों से घर से ग़ायब थी, यह कहकर कि वह सहेलियों के साथ गोवा घूमने जा रही है, लेकिन गोवा पहुँचकर उसने माइकल से कोर्ट मैरिज कर ली और एक संक्षिप्त-सी सूचना शकुन को दे दी। अब अहसास हुआ है इस तरह की करतूतों का माँ-बाप पर क्या असर होता है। ऐसा ही कचोटा होगा माँ पिताजी का दिल...ऐसे ही रातों की नींद दिन का चैन खो चुके होंगे वे...ऐसे ही रुसवाई की वजह से ज़माने को मुँह दिखाने लायक नहीं रहे होंगे वे जब उन्होंने गोविंद की शादी की सूचना सुनी होगी। तड़प उठे थे गोविंद...देर तक रोते रहे थे और तभी ख़बर आई माँ सीरियस हैं। तो क्या माँ भी साथ छोड़ रही हैं, जिन्होंने अपने खून, माँस, पूरी ऊर्जा से उन्हें जन्म दिया...उसके पहले तो कहीं न थे वे...माँ के स्नेह, तप और समर्पण की गमी पा वे नन्ही कोंपल बन फूटे थे और आँखें मिचमिचा कर देखा था...इतने बड़े विश्व में केवल माँ कोलेकिन वे उन आवाज़ों का क्या करें? वे आवाज़ें जो उनका पीछा नहीं छोड़ रही हैं. ..वे आवाज़ों के गुंजलक में गिरफ़्त हैं...क्यों कराया तबादला बैंगलूर का? बसा बसाया घर अपनी ज़िद्द में उजाड़ रहे हो? नहीं बाँध पाए न शकुन का मन खुद से...अब ये पलायन? नहीं फर्ज़ अदा कर पाए केतकी के प्रति अपना...क्यूँ भटकी वह? एक विजातीय से शादी करने को क्यों मजबूर हुई वो. ..हाँ, उसने देखा होगा। शकुन का भटकाव...उसने देखा होगा उनकी निरुपायता...क्या करें वे? कैसे इन आवाज़ों से पीछा छुड़ाएँ? कैसे निराकार हो जाएँ...माँ...हाँ माँ ही हैं जो उन्हें बचा सकती हैं। वे गुण और सूत्र के रूप में तब्दील होकर उनके गर्भ में बैठ जाएँ...वहाँ तो कुछ भी सुनाई नहीं देगा न! माँ का गर्भ होगा और वे गर्भ की दीवारों में कितनी शांति पाएँगे...उनमें है कूबत कि वे अपने धड़कते दिल को थाम लें, ताकि उनकी धड़कनें उनके हिसाब से धड़कें और वक्त उन धड़कनों के हिसाब से आगे बढ़े।

"पापा, टिकट कन्फ़र्म हो गई हैं।" सिरहाने कुणाल था। कुणाल ठीक उस पॉइंट पे उनके सामने आ जाता है जब दर्द हद से गुज़र जाता है। कुणाल की हथेली पे उनके लिए दवा और पानी का गिलास है।

"एक बात कहूँ पापा...केतकी को माफ़ कर दीजिए उसका चुनाव अच्छा है। माइकल डिज़र्व करता है केतकी के लिए...करोड़पति, खुद का बिज़नेस...बेहद शिष्ट-शालीन"

उनकी आँखें मुँदने लगी हैं। अपनी प्राणों से प्यारी बेटी को वे क्यों नहीं करेंगे क्षमा...ज़रूर करेंगे क्षमा...पहले उन्हें महसूस तो करने दो, पोर-पोर टूटने तो दो, क़तरा क़तरा बिखरने तो दो...जैसे माँ बिखरी हैं उनके लिए...जैसे पिताजी टूटे हैं उनके लिए।

पल, दिन, सप्ताह...बीत गया; मानो ज़िन्दग़ी का पुरसुकून हिस्सा...छूट गया सब कुछ...ऋषिकेश हरिद्वार में माँ की अस्थियाँ विसर्जित कर उन्होंने खुद को भी विसर्जित कर दिया। लौटे एक महाशून्य बनकर...अब उस शून्य में कुछ भी समाता न था।

और इन्हीं दिनों में मुम्बई आई पत्रकारिता के क्षेत्र में खुद को आज़माने। वे मेरे संघर्ष के दिन थे। एक स्थानीय पत्रिका की कवर स्टोरी तैयार करने का ज़िम्मा सम्पादक ने मुझे सौंपा था। पूरा अंक मशहूर समाज सेविका शकुन

सहाय पर केन्द्रित था। शकुन के घर रोज़ ही जाना पड़ता। वे एक-एक बात बारीकी से बतातीं, पूरा सहयोग देतीं। गोविंद सहाय बैंगलोर जा चुके थे...कुणाल घर बेचने के लिए एड़ी-चोटी एक किए था, ताकि बैंगलोर जाकर पूरी तरह बस सकें। उसकी जॉब भी वहीं लग गयी थीं। मैं कुणाल के संग अकसर थियेटर या समंदर के किनारे खुद को पाती...शकुन के जीवन के कितने अनखुले अध्याय वहाँ खुले थे। अब मैं बाक़ायदा घर की सदस्य मान ली गई थी। यही तो सबसे बड़ी खूबी है शकुन में...वे सबको समँदर की लहरों की तरह अपने में समेट लेती हैं। फिर कब, किसको अपनी गहराई में उतार लें और कब किनारे छिटक दें...पता थोड़ी चलता है।

मकान बिकते-बिकते अरसा बीत गया बीच-बीच में शकुन बैंगलोर हो आतीं महीना-दो-महीना रह आतीं... कुणाल सब सम्हाले था वहाँ का। शकुन घर के बहाने मुम्बई में जमी रहीं...अब घर का एक कमरा बाक़ायदे नरेन्द्र के लिए रिज़र्व था। मैं जब भी जाती नरेन्द्र और शकुन को उस कमरे में पाती—"कनु, मेरे साक्षात्कार में एक प्रश्न यह भी शामिल करो कि क्या इन्सान एक ही वक़्त में एक साथ दो को प्यार कर सकता है?"

मैंने महसूस किया...कगार टूट रहे थे।

गोविंद ने खुद को पूरी तरह शराब में डुबो लिया था। शाम होते ही वे पैग बना लेते कुणाल टोकता, "पापा प्लीज़...। क्यों ख़त्म कर रहे हैं खुद को। हमारे लिये ज़िन्दा रहिए हम क्या कुछ नहीं हैं आपके" वे गिलास सरका कर खिड़की के सींखचे पकड़ खड़े हो जातें नहीं, ये कैद उनकी रची नहीं है। उनकी बेगुनाही को जुर्म बना दिया गया है। दिल बुरी तरह से टूटा है, पर शकुन को आवाज़ तक न आई। टूटे दिल की सदाएँ उन्हें ही झकझोरती रहीं कुणाल ने देखा उनकी आँखों का बियाबान...अपने हाथों पैग बनाया, उनकी ओर बढ़ाया "पापा, अपना ग़म ग़लत करिये।" उन्होंने कुणाल की ओर डबडबाई आँखों से देखा...कई पल गुज़र गये गिलास ख़ाली हो गया। कुणाल फिर भर लाया "तुम शादी क्यों नहीं कर लेते कुणाल।"

"नहीं पापा...मुझे इस झंझट में फँसना ही नहीं है। प्यार किसी से हुआ नहीं और हो भी जाता तो...गोविंद की पलकें झुक गईं।

"सॉरी पापा।"

गोविंद तड़प उठे...देर तक बियाबान में सूखे पत्ते खड़कते रहे। शकुन भी कहाँ रुक पाई? उसकी आँखों के अँधे सैलाब ने सब कुछ तो निगल लिया। सुनसान किनारों पर सहमे समंदर की लहरें हैं जो इस बरबादी पर सिर धुनती बार-बार किनारों से टकरा रही हैं।

डॉक्टर आए हैं...लीवर ख़राब हो गया है गोविंद का सारी शामत पैरों पर...चलने से लाचार हो गये हैं। बिस्तर पर पड़े-पड़े अपनी, कुणाल की, केतकी की बरबादी का आलम देख रहे हैं, नहीं; शायद वे ग़लत हैं। केतकी यू.के. में माइकल के साथ खुश है। बरबाद कुणाल हुआ है...वे गुनाहगार हैं उसके।

कार्यक्रम समाप्त हो चुका है। मैं शकुन से मिलने उनके नज़दीक गई। उन्होंने मुझे गले से लगा लिया, "कैसी हो कनु?"

"अच्छी हूँ दी...गोविंदजी कैसे हैं?"

"बस अभी फ्लाइट पकड़ रही हूँ बैंगलोर की जैसे-तैसे कुणाल के हवाले करके आई हूँ। एक मिनट मेरे बिना नहीं गुज़ारते।"

और वे अपनी चिर-परिचित मोहक मुस्कान सहित कार की ओर बढ़ गईं। कार में ड्राइवर ई-सीट पर नरेन्द्र चौहान बैठा था। दूर तलक गोविंद सहाय के बेइन्तहा प्यार की बरबादी का समँदर ठाठें मार रहा था।

कार सर्रऽऽ से सड़क पर बिखरे अमलतास के फूलों को कुचलती आगे बढ़ गई।

शुद्ध सात्विक बोध की लेखिका

गिरिश पंकज

इधर के कुछ महत्वपूर्ण कथाकारों में श्रीमती संतोष श्रीवास्तव की अपनी खास पहचान है। स्त्री-विमर्श के इस दौर में भी जिस शालीन भाषा के साथ वह अपनी कथा-यात्रा को जारी रखे हुए हैं, वह उनको भीड़ से अलग करता है। उनके जीवन में संघर्ष से ही संघर्ष रहा। असमय पति परलोक चले गए, फिर बेटा हेमंत उनके जीवन में आशा की किरण बना रहा, लेकिन हेमंत भी अचानक उन्हें छोड़कर चला गया। स्वाभाविक है कि एक स्त्री टूट जाती, बिखर जाती लेकिन संतोष श्रीवास्तव ने कभी टूटना नहीं सीखा। वे हिम्मत के साथ खड़ी रही और आज भी लेखन के माध्यम से अपने आप को अभिव्यक्त करती रहती हैं। एक सफल कहानीकार के रूप में संतोष श्रीवास्तव की अपनी पहचान है। उनकी अनेक कृतियों का मैं साक्षी रहा हूँ। उनको निरंतर पढ़ता रहा हूँ। मुझे देखकर अच्छा लगता है कि संतोष श्रीवास्तव में नैतिक मूल्यों के प्रति गहन लगाव है। वह स्त्री विमर्श के नाम पर इतना अधिक बोल्ड नहीं होती कि आंखें शर्म से झुक जाएँ। वे प्रतीकों में अपनी बात कहती हैं, और हमेशा स्त्री अस्मिता को लेकर सजग रहती हैं।

पिछले दिनों उनका नया कहानी संग्रह 'अमलतास तुम फूले क्यों' इस बात की तस्दीक करता है कि एक अच्छी कहानी बिना किसी सनसनी के भी संभव हो सकती है। इन दिनों मैंने देखा है कि बहुत-सी कहानियाँ बिना सेक्स विमर्श के पूरी ही नहीं होतीं। सेक्स का इतना खुला विस्तार अनेक कथाकारों को कुछ चर्चित तो बना देता है, लेकिन कहानी के चरित्र को नीचे गिरा देता है। हम पूर्वज कथाकारों को देखते हैं, तो उनकी कहानियों में सशक्त कथ्य और उसकी शालीन प्रस्तुति कहानी को घर के हर सदस्य के पढ़ने योग्य बना देती थी। इधर की कुछ कहानियाँ घर का हर सदस्य पढ़ सके, यह संभव नहीं होता। कहानी का अश्लील-विन्यास चकित करता है, कि कहानी को क्या बिना यौनिकता के नहीं लिखा जा सकता? इसका ज़वाब संतोष श्रीवास्तव की कहानियों को पढ़ते हुए मिल जाता है कि कहानियाँ बिना यौनिक घालमेल के भी लिखी जा सकती हैं।

समीक्ष्य कहानी-संग्रह में संतोष की चौदह कहानियाँ हैं, जो मानवीय मूल्यों को स्थापित करती हैं, और प्रेम-जैसे शाश्वत विषय को भी बहुत कोमल संस्पर्श के साथ रचती हैं। पहली ही कहानी—'उस पार प्रिये तुम हो' सच्चे प्रेम की अद्‌भुत कहानी है। यह मुस्लिम लड़की सबा और हिंदू लड़के गौरव चौहान की एक प्रेम-कथा है। दोनों की शादी नहीं हो पाती। गौरव सेना में कर्नल बन जाता है और बटुए में हमेशा सबा की तस्वीर संभालकर रखता है। उधर सबा की कैंसर से मौत हो जाती है। गौरव भी सबा को याद करते हुए अंत में दम तोड़ देता है। सबा और गौरव मिलकर सैनिक नगर बसाना चाहते थे। यह कहानी प्रेमानुभूति के साथ-साथ सैन्य-जीवन को भी सुंदर ढंग से रूपायित करती है। समाज में यह संदेश भी देती है कि अब समय लद गया है, जब हम धर्म या जाति देखकर प्रेम करें या विवाह बंधन में बंधें।

मर्सी किलिंग, यानी दया मृत्यु को लेकर देश में जबरदस्त बहस होती रहती है। हताश, निराश, अस्वस्थ व्यक्ति को इच्छा-मृत्यु के वरण का अधिकार मिलना चाहिए। इस कहानी में यही विमर्श होता है लेकिन अंततः एक दूसरी सोच की तरफ कहानी मुड़ जाती है। करन नामक एक

युवक मीरा के साथ बलात्कार करता है और उसकी जान लेने की कोशिश करता है। मीरा बुरी तरह घायल होकर बिस्तर पकड़ लेती है, लेकिन इन सबके बावजूद उसका प्रेमी चित्रकार कपिल उसका अंत तक साथ निभाता है। अक्सर यही मानसिकता देखने में आती है कि अगर किसी युवती के साथ बलात्कार हो गया और वह मरणासन्न हो गई है, तो उसका प्रेमी भी उसे छोड़ देता है। इस कहानी में ऐसा नहीं हुआ। माता-पिता तो अपाहिज हो चुकी बेटी के लिए दया-मृत्यु की कोर्ट से अपील करते हैं, लेकिन कोर्ट, याचिका खारिज कर देती है, क्योंकि उसका प्रेमी कपिल हर हाल में मीरा के साथ रहना चाहता है। आज के स्वार्थी युग में ऐसी कहानी न केवल पाठक को मानवता सिखाती है वरन यह भी बताती है कि निश्चल, निस्वार्थ प्रेम करने वाले अभी भी जिंदा हैं। कोई भी कहानी अगर उद्देश्यहीन है, तो निरर्थक है। इन दिनों ऐसी अनेक कहानियाँ लिखी जा रही हैं, जिनका कोई उद्देश्य नहीं होता। वे शुरू से अंत तक विवरणात्मक शैली में लिखी जाती हैं और समाप्त हो जाती हैं। उनमें कलात्मकता दिखाने की भी विफल कोशिश होती है। मगर वह कहानी के विन्यास पर खरी नहीं उतर पाती। कहानी के निकष पर वही कहानी सफल होगी, जिसमें सुव्यवस्थित कथानक और उसका निश्चित उद्देश्य भी होगा। जैसे 'तुम हो तो' जैसी कहानी। मर्सी किलिंग पर एक और कहानी हैं—अपना-अपना नरक'।

'धुंध' कहानी बुजुर्गों की उपेक्षा को दर्शानेवाली कहानी है। कैसे कुछ बहुएं अपने ससुर से दुर्व्यवहार करती हैं। इस कटु सच्चाई को बहुत मर्मस्पर्शी तरीके से कथाकार ने उकेरा है। समकालीन बाजारवादी व्यवस्था ने भारतीय समाज में भी ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न कर दी है कि, अनेक घरों के बुजुर्ग अब यही सोचते हैं कि 'हरिद्वार जाकर किसी आश्रम में रहना ही ठीक होगा।'

'बाढ़' कहानी मनुष्य की मरती हुई करुणा को तो दर्शाती ही है, मगर यह संदेश भी देती है कि संकट के समय उदारमना व्यक्ति धर्म और जाति से ऊपर उठकर मदद के लिए आगे आ जाते हैं। कई बार समाज में ऐसे उदाहरण देखने को मिलते रहते हैं कि परिवार के सगे लोग अपनों का साथ छोड़कर चले जाते हैं, तब जिन्हें हम पराया समझते हैं, वे लोग आगे बढ़कर मदद करते हैं। कहानी में बाढ़ में फँसे बूढ़े लाचार पिता जसवीर को उसका बेटा काके छोड़कर भाग जाता है। अपनी पत्नी को भी साथ ले जाता है, लेकिन जसवीर को बचाने के लिए रहीम नामक उनका मित्र सामने आता है। बचाव दल भी आ जाता है, तब जसबीर फूट-फूट कर रोने लगता है। सब यही सोचते हैं कि जसवीर का बेटा-बहू बाढ़ में मर गए हैं, इसलिए उनके गम में जसवीर रो रहा है, लेकिन पिता किसी को असलियत नहीं बताता कि उसके अपने बेटे और बहू उसे छोड़कर भाग गए हैं। कहानी की अंतिम पंक्ति हृदयस्पर्शी है कि "पानी बाढ़ से तूने बचा लिया रहीम, पर रिश्तों की बाढ़ से मैं बच नहीं पाया।"

'अमलतास तुम फूले क्यों' कहानी इस अर्थ में अद्‌भुत है कि एक स्त्री कथाकार ने स्त्री जाति की ही बेवफाई की कहानी कही है। अमूमन ऐसा होता नहीं है। अनेक कहानियों में बेवफाई को भी ग्लैमराइज़ किया जाने लगा है। देश की एक तथाकथित बड़ी पत्रिका ने तो बेवफाई पर दो-दो अंक तक निकाले थे। ऐसे समय में जबकि बेवफाई को भी एक तरह से स्वीकृति-सी मिल रही है, तब संतोष ने अपनी इस कहानी में स्त्री की बेवफाई को ही केंद्र में रखकर कथा का ताना-बाना बुना है। पत्नी की बेवफाई से दुखी होकर उनके पति गोविंद शराब में डूब जाते हैं। शकुन एक बड़े व्यापारी से अपना संबंध स्थापित कर लेती है। कहानी की अंतिम पंक्तियाँ पूरी कहानी के मर्म को जैसे खोल कर रख देती हैं, देखें—"कार सर्र-से सड़क पर बिखरे अमलतास के फूलों को कुचल कर आगे बढ़ गई।" दरअसल यह कार नहीं थी, शकुन की बेवफाई थी, जो पवित्र रिश्ते के फूल को कुचल रही थी। कुछ प्रेम विवाह सफल भी होते हैं, तो कुछ की दुखद परिणति भी होती है। इसी सत्य को इस कहानी में उद्घाटित किया गया है। गुमराह नायिका शकुन समाजसेवी भी है। वह प्रश्न करती है, "क्या इंसान एक ही वक्त में एक साथ दो को प्यार कर सकता है।" उसका अंतर्द्वंद्व उसके चरित्र को दर्शाने के लिए पर्याप्त है।

'निगरानी' कहानी इस समय की एक ज़रूरी कहानी

लगती है। इस समय हमारा पूरा परिवेश एक-दूसरे को शक की निगाहों से देखने का आदी हो गया है, और यह एक ऐसी विवशता है जिसका शिकार होना ही पड़ता है। लोगों में जिस तरह से एक-दूसरे के प्रति नफरत की भावना भर गई है, लोग आपस में खून के प्यासे हो रहे हैं, और एक धर्म विशेष के लोगों के प्रति समाज के दूसरे धर्मों में जो भावना विकसित हुई है, उसे खत्म करना तो मुश्किल ही प्रतीत होता है। ऐसे समय में जब संतोष श्रीवास्तव 'निगरानी' जैसी कहानी लेकर आती हैं, तो लगता है, नहीं, हम जिनके बारे में गलत धारणाएं बनाए बैठे रहते हैं, वे दरअसल वैसे होते नहीं हैं। कुछ लोग जरूर गलत हो सकते हैं, लेकिन पूरी कौम गलत नहीं हो सकती। सोनल को दिल्ली जाना है, यूपीएससी की परीक्षा देने, लेकिन मजबूरी में उसे अकेले यात्रा करनी है। पिता उसे ट्रेन में बैठा तो देते हैं मगर मन-ही-मन सशंकित रहते हैं। पिता, बेटी की पल-पल की खबर लेते रहते हैं। ट्रेन में चार मुस्लिम युवक यात्रा कर रहे हैं। उसके सामने ही बैठे हैं। सोनल उनकी बातचीत के आधार पर तरह-तरह के गलत अनुमान लगाती रहती है कि हो सकता है ये आतंकवादी हों। इस कारण वह और अधिक घबरा जाती है, लेकिन ऐसा कुछ नहीं होता। उसकी सारी आशंकाएँ निर्मूल साबित होती हैं और वह सुरक्षित दिल्ली पहुँचती है। ट्रेन पूरी तरह से रुकती भी नहीं कि वह उतरने लगती है, तभी एक मुस्लिम युवक बोलता है, 'संभलकर आपा, ट्रेन रुक जाने दीजिए। 15 मिनट रुकेगी यहाँ ट्रेन। कोई लेने आएगा क्या? रातभर हम भी नहीं सो पाए। चार मनचले झांसी से चढ़े थे। ताश खेलते रहे। शराब पीते रहे। अब्बू तो उधर ही एक खाली सीट पर रात भर बैठे उनकी निगरानी करते रहे, क्योंकि पूरी बोगी में आप अकेली। फ़र्ज़ तो अपना भी बनता है न आपा।' कहानी यहीं खत्म होती है और एक पूरे चरित्र को आईने की तरह साफ कर देती है। जिन्हें हम गलत समझते हैं, वे कितने सही निकलते हैं, इस सत्य को यह कहानी बड़ी बारीकी के साथ स्पष्ट कर देती है।

'एक और कारगिल' शहीद विधवा की कहानी है, जो मजबूरी में दूसरे व्यक्ति से संबंध स्थापित कर लेती है। अमूमन शहीद की विधवा ऐसा करे, समाज स्वीकार नहीं कर पाता, लेकिन यही तो है कहानी का जोखिम, जिसे संतोष श्रीवास्तव ने उठाया है। 'एक मुट्ठी आकाश' भी विधवा को अपनाने की कहानी है। विधवा को भी जीवन जीने का हक है। 'बैराग के खाते में' संत बन गए एक भगोड़े बेटे की कहानी है। कहानी का संदेश यही है कि हमें जीवन से दो-चार होना चाहिए। परिवार से भागना एक तरह से पलायन है, कायरता है। कहानी 'अजुध्या की लपटें' आपस में लड़वानेवालों की खबर लेती है। संग्रह के अंत में रेखाचित्र 'स्त्री की जीत चाहिए' बेहद रोचक है। इस रेखा चित्र के माध्यम से पीढ़ियों के अंतराल को समझा जा सकता है। एक दौर था जब घर के बुजुर्ग, स्त्री को दबा कर रखते थे, लेकिन धीरे-धीरे परिवर्तन आता गया। इस कहानी में भी अम्मा अपनी दादी को समझाती हैं कि अब नहीं होगा। आवाज तो उठानी होगी माताजी अन्याय के खिलाफ। जानती है अन्याय सहना भी अपराध है। हमें ही समाज की रूढ़ियों, आडंबरों, अनैतिकताओं को खत्म करना होगा। समय बदलता है। बाबा अगर स्त्री की आजादी के विरोधी थे तो उनके बेटे यानी लेखिका के बाबूजी स्त्री की आजादी के पक्षधर। रेखाचित्र का समापन आस्था के साथ होता है। बड़ी दादी ने अम्मा को गले से लगा लिया। तुमने मेरे अंदर का डर-सहमापन और झिझक निकाली। तुमने मुझे नया जीवन दिया। मुझे अमृता शेरगिल–जैसा बनना है। मैं चित्रों के द्वारा स्त्रियों की पीड़ा, विभिन्न एहसासों को दर्ज करूँगी। मैं ऐसे चित्र भी चाहती हूँ, जो स्त्री की जीत के हों, वेदना, पश्चाताप के नहीं।

कुल मिलाकर संतोष श्रीवास्तव की सात्विक कहानियाँ सशक्त कथा-परंपरा की अनुगामिनी हैं। इनमें रोचकता है, सहजता, सरलता है। उद्देश्यपरकता है। मानवीय मूल्यों की चिंता है, और बेहतर समाज की बनावट की ललक भी इन कहानियों का लक्ष्य है। मुझे लगता है कि संतोष श्रीवास्तव की कहानियाँ अन्य कहानी लेखिकाओं के लिए भी मार्गदर्शक साबित होंगी कि कहानी केवल सेक्स के इर्द-गिर्द ही नहीं घूमनी चाहिए, वरन उसे जीवन के दूसरे आयामों को भी पूरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त करना चाहिए।

तुमसे मिलकर

हीरालाल नागर

संतोष श्रीवास्तव के कविता-संग्रह 'तुमसे मिलकर' को पढ़कर यह तो लगा कि इनकी कविताएँ एक सार्थक और मानसिक साझेदारी के लिए पहले से ही तैयार हैं, उनको बस थोड़ा-सा कुरेदने की जरूरत है। इसकी खास वजह यह है कि ये सीधे जिन्दगी से बाबस्ता है।

यूँ तो इसका शीर्षक ही यह जानने में मदद करता है कि ये जो कविताएँ लिखी गयी हैं वह 'तुमसे मिलकर' लिखी गयी है— 'पहले यह बंजर प्रदेश था शुष्क और उदास जीवन का तरन्नुम, लेकिन देखा एक वीरान-सी/घाटी में/तुम बांसुरी पर/गा रहे थे शून्य को/मैं चुपके से पहुँची और धुन बन गई/तुम्हारी उँगलियों पर/नाचती हुई/तुम्हारी खुशबू होकर/रच-बस गई मैं।' संतोष श्रीवास्तव की कविता में द्वंद्वात्मक फैसले नहीं हैं। इतने एक तरफा भी नहीं कि जिन पर बात न की जा सकती हो। उनकी कविताएँ कहने का, उन पर विचार करने का पूरा स्पेस देती हैं। मसलन आप 'जाल के खिलाफ' कविता को ही लें। स्त्री को लगातार पछाड़ने की हिकमतें कम नहीं होती। उसे फंसाने के नए जाल तैयार किये जाते हैं। मगर यह स्त्री की जिजीविषा है कि वह जाल तोड़ने के लिए बार-बार खड़ी हो जाती है। ''कितनी ही बार/पस्त होने के बावजूद/मुझे उठकर खड़ा कर देता है/मेरे अंदर का युद्ध/जाल के खिलाफ।''

कविता का काम ही है प्रतिरोध का वातावरण तैयार करना, जो अपने समाज व जीवन के तईं होने वाली विसंगतियों और अन्तर्विरोधों को ध्वस्त कर सके।

मगर संतोष श्रीवास्तव की कविता लड़ाई के पचड़े में कम ही पड़ती है, वह तो जिन्दगी से सीधे मुठभेड़ करती है, उम्मीद की एक लौ जलाये रखती है, और स्त्री होने की सार्थकता में खुद को अभिव्यक्त करती है। अगर 'जिन्दगी' एक 'हादसा' है, तो एक संयोग भी है, जहां 'अन्तहीन सूनापन' है, तो स्मृतियों की कोमल तान भी है। और वे एक खुलेपन में उनका 'मन' तरंगित होकर कुछ करने को उद्यत हो उठता है, ''मन करता है/मैं भी जा सकूं/लाल दीवारों में/खुलते दरवाजों तक। जहां मैं उतर सकूं। अपने दर्द को जूतों की तरह/अपने रतजगों को/खूंटी पर टांग सकूँ/कपड़ों की तरह। कोई कहे न कहे; संतोष श्रीवास्तव की कविताएँ 'स्त्री' चेतना के उस खुले प्रांगण की हिमायती हैं, जहाँ आजादी है, सुरक्षा है और उद्यमशीलता है।

मगर उसके भ्रम से अनभिज्ञ भी नहीं है कवयित्री। उनकी कविता इस खूबसूरत संस्कृति से स्त्रियों को आगाह करती है और अभिधा में उसे यह कहना पड़ता है कि- 'सौन्दर्य प्रतियोगिता से/बिकनी राउंड हटा दिये जाने से/पितृसत्ता के चरमराने की वजह/वह कहाँ जान पाई कि देह की आजादी/विचारों की आजादी नहीं है/बल्कि पितृसत्ता की सोच की ही गुलामी है। आज हिन्दी कविता एक समृद्ध जीवनचर्या से होकर गुजर रही है। झोंपड़ पट्टियों को बाहर ढकेल दिया गया है और इस पार एक रंगीन सीमारेखा खींच दी गयी है।

झूठ अपने पूर्व अभ्यास में बेहद मोहक हो उठा है और जनतंत्र का मुखौटा लगाये भीड़तंत्र एक बड़े नाटक की तैयारी में मुब्तिला है। ऐसे में संतोष श्रीवास्तव की कविता अगर नॉस्टेल्जिया रचती है, तो क्या बुरा करती है। 'यादों में बंधे हुए पल' संतोष श्रीवास्तव की बेहद खूबसूरत कविता है। इसमें प्रकृति के साथ-साथ जीवन की जादुई उड़ान है। वह एक बंद किताब नहीं रही वह अपने सफों में बिखर जाना चाहती है।

जिन्दगी का यह रोमांच ही संतोष श्रीवास्तव की कविता की पहचान है। उनमें जीने की अदम्य लालसा है, उत्कंठा है। जिजीविषा है। लहूलुहान होने के बावजूद, असंख्य खरोंचों के जानिब फिर से तैयार होने लगा मन/खाने को धोखे सुर्खाबों के/पोर-पोर बजते से/वियाबान थामे/यादों की धूप में नहाए पल/बासंती फूल बन सजे/बंधे हुए पन्ने फिर उड़ने लगे/जिन्दगी की बंद किताबों के।

कवयित्री संतोष श्रीवास्तव की कुछ कविताएँ गीत पंक्तियों की तरह हैं, जिनमें जीवन का ठहरा हुआ उल्लास झरने की तरह बह निकला है। 'रात बन जाऊँ', और 'सबूत' इसी तरह की कविताएँ हैं। नई भंगिमा, नये बिम्ब के साथ संतोष श्रीवास्तव की ये काव्य पंक्तियाँ देखें—मेरी इच्छा होती है/कि मैं भी जा सकूँ/लाल दीवारों में खुलते/दरवाजे तक/जहाँ तक मैं जा सकूँ/अपनी शर्म को जूतों की तरह/ड्योढ़ी पर/अपने दर्द को कपड़ों की तरह/खूंटी पर/और अपने शरीर को/ऐसे छोड़ सकूँ। अलग-थलग पड़ा हुआ/जैसे सामान हो/किसी विदा हुए मुसाफिर का। सचमुच यह प्रेम की पराकाष्ठा है, जिसमें डूबकर मनुष्य देहातीत हो जाता है। यहाँ 'शर्म' को जूतों की तरह 'उतारना' और अपने 'दर्द' को कपड़ों की तरह 'टांग देना' समकालीन कविता के ताजगी भरे बिम्बविधान को समृद्ध करती है, संतोष श्रीवास्तव की यह कविता। संतोष श्रीवास्तव की कुछ कविताएँ स्त्री-विमर्श की चेतना से लैस लगती हैं।

'किनारे पास आने लगे', बेचैन है इतिहास', 'खिलकर दिखाओ अशोक', 'गौतम से राम तक', 'चिलमन की वापसी', 'कब तक छली जाओगी द्रोपदी' और 'पितृसत्ता' के खिलाफ आदि कविताएँ पुरुष सत्ता के विरोध एक मजबूत स्वर है। मगर संतोष श्रीवास्तव की कविता को देखना है, तो 'बचपन की बारिश', 'मैं देखो', 'बदलाव', 'भीतर के मौसम में समझो, 'जहाँ गीत चल पड़ा है'। संतोष की कविता का उत्स कहाँ हैं, यह जानने के लिए 'चिंगारी और पीड़ा', 'अनुपस्थित ठिठका देता है', 'घौंसला', 'तलाश', 'दर्द' आदि कविताओं को जरूर पढ़ा जाना चाहिए।

संतोष श्रीवास्तव की कविताओं का एक स्वर और भी है, जो घटना की तरह अचानक घटित नहीं होता, वह कवयित्री की चित्रवृत्ति का स्थायी भाव-सा लगता है, जहाँ एक उदास रंग की जहनियत पसरी हुई है।

ये पंक्तियाँ देखें मैं मोहब्बत के सफे पर, इक तारीख -सी सजी हूँ, और तू मेरे दिल के गोशे से, हिना बन के रचा है, जब भी ये दिल किसी का होता है, दर्द कम नहीं बेहिसाब होता है, इक समंदर-सा, नजदीक ही उमड़ता है, हर लहर का हिसाब रखता है।

संतोष श्रीवास्तव की उपरोक्त कविता जिन्दगी के जज्बात का उत्सव मनाती हुई चलती है, जो अपने शिल्प और अपनी रवानगी में हिन्दी की नज्म जैसी लगती है। ''सुन के जो टूटता-दरकता है, मैं घटा बन के बरस जाती हूँ, मैं अंधेरों की रोशनी उसकी, वो चांद बन के दरीचों में, जगमगाता है।''

संतोष श्रीवास्तव की कुछ कविताएँ मौसम और प्रकृति की परछाइयों में घुल-मिल सी गयी हैं। 'चांद संग नदी हो' या 'आसपास' मौसम अपने चिर नवीन स्वर साज में अभिव्यक्त हैं।

''हवाएँ थरथराती नदी तक दौड़ी हैं/नदी की देह कांपी है/उस कंपन में एक आग है/नदी आग का घूंट पी/चांद को बांहों में लेने को आतुर है। इन पंक्तियों को भी देखें—आप महुए से उतरकर/हवा लड़खड़ाई है/नशा तारी है दूर तक।'' संतोषजी ने प्रेम, इश्क, प्यार—जैसे शब्दों को कुछ नये अर्थ दिए हैं। ये छोटी-छोटी कविताएँ हैं जो हृदय व मन की विकलता को व्यक्त करने की बेचैनी में लिखी जाती हैं। ये छोटी कविताएँ तात्कालिक भाव सम्प्रेषण में अद्वितीय लग सकती हैं, मगर संतोष श्रीवास्तव का कवि लम्बी कविताओं में ही सही अभिव्यक्ति पाता है।

इत्तेफाक से इस संग्रह में एक गजल है—'कब महकेगा' एक पर्यावरण, विंडो में है न गौरेया है और एक भूख और गरीबी को चिन्हित करती कविता 'कालाहांडी' है। गजल के शेर बहुत मुकम्मल है—जैसे यह शेर 'कब महकेगा मन का रिश्ता खोलो न। दूर है मंजिल, तुमसे इतना कहना है, हम तनहा हैं संग हमारे हो लो न।'

कवयित्री संतोष श्रीवास्तव की कविता का प्रगतिशील कविता के बरक्स बेशक कोई जिक्र न हो मगर इनकी कविताएँ अपने समय के अन्तर्द्वंद्वों से बुरी तरह जूझ रही होती हैं। फिर भी इनमें जिन्दगी की तलाश पूरी नहीं होती और वह एक सम्मोहन में बंधने को आतुर होने लगती हैं। ये कैसा फलसफा/कि देह के पोर-पोर तलाशते रहे रात भर/न जाने किस अक्षर को/न जाने किस इबारत को कि जिससे झंकृत/हो जाता है ब्रह्मांड/अपने दूधिया आगोश में/अनगिनत चांद को समेटे/उतर आती हैं आकाश गंगा। मर्मस्पर्शी जीवन के सतत संघर्ष के बीच जिन्दगी अपने को किस तरह बुनती रहती है या खुद को रचने का उपक्रम करती है, इसका उनकी 'घोंसला' कविता सक्षम उदाहरण है। वे कहती हैं—'इश्क दुआ बन जाता है/जब सहेज लेता है कोई/ढाई अक्षर की इबारत/दिल की किताब पर/संवर उठती है कायनात।

सूरज के लाल दरवाजे तक/तोते बन जाती है। ढोलक पर गाए जाते हैं गीत/अनंत जन्मों के। उनकी 'जंग जारी है' कविता, हालांकि सीधे-सीधे अपनी बात कहने में विश्वास करती है, मगर वह आत्मविश्वास से कंठ तक भरी हुई कविता है मुझे खुद को/काठ करना पड़ेगा/और मुझे काठ होने से इंकार है/मेरी जंग अभी जारी है।

'तुमसे मिलकर' में कवयित्री के सतत संघर्ष की कविताएँ हैं, जहाँ स्त्री होने की तमाम मजबूरियों को खारिज करती हुईं जीवन का उत्स हो जाना चाहती हैं और कविता में कवयित्री एक सम्पूर्ण मनुष्य होने में ही अपने को अभिव्यक्त करना चाहती है।

करवट बदलती मुंबई : आमची मुंबई

रूपेंद्र राज तिवारी

यूं तो मुंबई मैंने पहले कभी देखी नहीं।

संतोष श्रीवास्तवजी की हाल ही में 'करवट बदलती सदी : आमची मुंबई' नामक संस्मरण शैली में मुंबई से संबंधित किताब मेरे हाथ लगी।

अब यह न पूछिए कैसी लगी, जिसे पढ़ने की चाह हो वो जुगाड़ जमा ही लेता है, बहरहाल हम बात कर रहे थे आमची मुंबई की, इसके पन्ने पलटती गई और पढ़ती गई। पढ़ते-पढ़ते यूँ लगने लगा मैं तो किसी विराट साम्राज्य का इतिहास पढ़ रही हूँ।

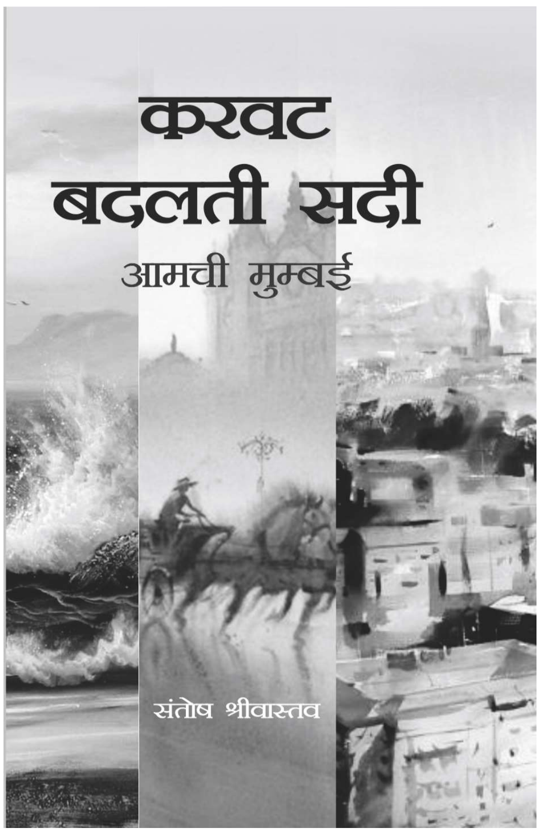

आदिवासियों से घिरा हरा-भरा साम्राज्य, समुद्र को देवता मानने वाले मछुआरों का तिलिस्म मुझ पर चढ़ ही रहा था कि अंग्रेज़ों का ज़िक्र आ गया, फिर क्या, समुद्र के बीच से होते हुए ऐलेफेंटा की गुफाओं में शिव के नाना रूपों का दर्शन कर मन शांति से भर गया। वहाँ से बाहर आई तो महानगर के बसने की दास्तान में खो गई, इमारतों का बनना, उनके शिल्प, उनकी कलाकारी और कामगारों के परिश्रम को जैसे खुद महसूस करने लगी। इमारतों की बाहरी आंतरिक दीवारों पर की नक्काशी तक मुझे रूबरू दिखने लगी।

जैसे...बंदर के हाथ का तराजू हिलता होगा नए वो लोमड़ी जिसके गले में काला बैंड है ज़रूर कोई बेरिस्टर को ध्यान में रख बनाई होगी, और दो औरतों की मूर्तियों में अटककर रह गई नज़र।

किस तरह से पुरानी यादगार जगहों के नाम पड़े।

सलमान खान और रवीना टंडन पर फिल्माया गीत जिसमें मुंबई की कई जगहों का नाम आता है, तब भी सुन कर लगता था कि कैसे किसी विशेष जगह का विशेष नाम पड़ जाता है।

गौरवशाली इतिहास के साथ आक्रमणकारियों के निशान तो दिखे ही साथ ही उनकी बस्तियाँ, उनके कारोबार, मुंबई की मुख्य धारा में उनका रच बस जाना कोई एक दिन में तो हुआ न होगा।

पुर्तगालियों की बस्ती, उर्दू शायरों की पनाहगाह, पारसी मोहल्ले, सब अपने गौरवशाली अतीत के साथ स्थापित हैं।

कुछ मशहूर नाम वीटी स्टेशन, चर्च गेट, युद्ध स्मारक, गेट वे ऑफ इंडिया, युगीन इतिहास से हम पहुंचते हैं, विश्वविद्यालयीन प्रांगणों में।

मुंबई घूमने वाला व्यक्ति शायद ही इच्छुक होगा ऐसी नीरस जगहों से, लेकिन संतोष जी के इस मुंबई दर्शन की स्पेशल यात्रा ने मुंबई के प्रख्यात विश्वविद्यालयों से न केवल परिचय ही कराया, वहाँ की एक-एक विशेषता के प्रति ऐसी रुचि उत्पन्न की जैसे बस सर उठाकर सबका नज़ारा कर रहे हों।

जब वह चर्चगेट से विश्वविद्यालय के शॉर्टकट रास्ते ओवल मैदान से होते हुए इसके विस्तार की बात करती हैं और मरीन ड्राइव तक इसे जोड़ देती हैं, तो समुद्र का विशाल रेतीला किनारा आंखों के सामने दूर तक बिछा नज़र आने लगता है।

गिरगांव की चौपाटी का ज़िक्र करती हैं, तो गांधी जी के आह्वान के पीछे हजारों का हुजूम नारियल के पेड़ों के बीच से आजादी के नारे लगाता गुज़रता नज़र आता है।

एकदम से दृश्य बदलता है और आज की चौपाटी पर इक्के-दुक्के नारियल के पेड़ों के साथ, हजारों आजाद हिंदुस्तानियों को मौज-मस्ती, खेलते-खाते दिखाई देते हैं।

कबूतरों की खूब कही, मुंबई के लोग कबूतरों से खूब प्यार करते हैं, या यह भी कह सकते हैं कि कबूतरों को पुरानी इमारते खूब भाती हैं, चौपाटी, चर्च गेट, गेट वे ऑफ इंडिया, दाने वाले कबूतरों के दाने बेच अपनी रोज़ी-रोटी चलाते हैं।

मुंबई के गणपति उत्सव का संबंध लोकमान्य तिलक के आजादी की योजनाओं की बैठकों का बहाना था, सब जानते हैं कि एकता और युक्ति आजादी की लड़ाई में बहुत काम आई, आज भी गणेशोत्सव का उल्लास बयान करती हुई संतोष जी एकता को ही प्रमुख भाव मानती हैं।

मुंबई के मलाबार हिल्स का ज़िक्र न हो ऐसा हो नहीं सकता। राजभवन और उससे जुड़े संस्मरण जब संतोष जी को 2004 में साहित्य के लिए लाइफटाइम अचीवमेंट वसंत राव नाइक प्रतिष्ठान की ओर से तत्कालीन राज्यपाल एम.एस.कृष्णमूर्ति के हाथों मिलना वह बड़े हर्ष से साझा करती हैं। साथ ही राजभवन देखने के अवसर को स्वीकारती हैं।

बाणगंगा का ऐतिहासिक संदर्भ रोमांचित करता है।

मुंबई और फिल्म उद्योग एक-दूसरे के पर्यायी हो चुके हैं।

फिरोज़शाह मेहता ऐतिहासिक उद्यान किसी ज़माने में शूटिंग का केंद्र रहा। इस स्थान की खूबसूरती का ज़िक्र संतोष जी ने ऐसा किया कि जैसे मुहावरा आँखिन देखी चरितार्थ हो गया हो।

मुंबई का महालक्ष्मी मंदिर, ब्रीच कैंडी अस्पताल, वार्डन रोड पर लता मंगेशकर का निवास स्थान, हाजी अली दरगाह, रेसकोर्स, नेहरू साइंस सेंटर, जहाँ संतोषजी ने लगभग एक घंटे आम जन के बीच काव्यपाठ किया, वाकई यह उपलब्धि से कम नहीं।

वर्ली रोड पर दूरदर्शन केंद्र आकर्षण का केंद्र है।

अब शुरू होता है असली मुंबई शहर।

प्रभादेवी रोड से, जैसे फिल्मों में दिखाते हैं न, कोई गाँव से मुंबई देखने आता है, तो बड़ी-बड़ी इमारत को देख चकाचौंध हो जाता है, वैसा ही कौतूहल मन मे़ं हो रहा है।

संतोष जी भी कहती हैं कि जबलपुर से वह मुंबई मात्र घूमने नहीं बसने आईं थीं, और उनकी जिजीविषा और सच्ची लगन व परिश्रम ने उन्हें यह अवसर दिया भी।

यादों में खोई संतोष जी इप्टा से जुड़े तमाम समकालीन कलाकारों से भेंट को ताज़ा करती हैं।

राही मासूम रज़ा का 'नीला मखमली बटुआ' आज भी याद है इन्हें, उनका सुपारी खाना।

पारसी थियेटर के बारे में भी बताया है संतोष जी ने कि कैसे पारसी अभिनेत्रियाँ उर्दू मिश्रित डायलॉग बोलकर मोह लेती थीं।

थियेटर का जिक्र हो और पृथ्वी थियेटर का नाम कैसे भूल सकती हैं संतोष जी। इस बारे में जानकारी अवश्य फिल्म प्रेमियों को रोचक लगेगी, मुझे तो बहुत लगी।

आदाब, मैं प्रेमचंद बोल रहा हूँ विश्वविख्यात नाटककार मुजीब खान और मराठी नाटक मंच का उल्लेख अत्यंत रूचिकर बन पड़ा है।

ईरानी होटलों का जिक्र करते फिर से यादों के दरीचों से झांकती हुई, समृद्ध कलाकारों की चर्चाओं का हिस्सा बन ईरानी चाय की चुस्कियाँ लेती हैं।

हर बड़े शहर के साथ एक बदनाम गली भी जुड़ी होती है जिसका जिक्र करती हुई संतोष जी घृणा से नहीं बल्कि उनके प्रति सहानुभूति से भर जाती हैं। कमाठीपुरा का इतिहास अंग्रेज़ों से भी पहले का हैदराबाद के निज़ाम से जुड़ा है, इसका इतिहास और वर्तमान दोनों ही मिल कर अनगिनत कहानियाँ गढ़ते हैं जिनके पीछे जिस्मफरोशी की दिल दहलाने वाली हक़ीक़तें भी हैं।

आलीशान ओपरा हाऊस, और धोबी तालाब के सात सो इकत्तीस घाट, बताइए इतना विरोधाभास कही मिलेगा भला! और तो और डिब्बावाला का उल्लेख नहीं होगा, तो खाने का वांदा हो जाएगा।

क्या!!!

महेश्वरी उद्यान; मुंबई की सरहद, सीव, एशिया का सबसे बड़ा स्लम धारावी, और मुंबई के आसपास की खूबसूरती, मुग़ल हमाम, पुराने मशहूर सिनेमाघर, बड़े-बड़े फिल्म स्टूडियोज़, गोरेगांव की दादा साहब फालके नगरी, विभिन्न मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारे मुंबई के विभिन्न जाति के परिचायक।

समुद्र मुंबई का आकर्षण, भला किसे न मोह ले; डूब जाती हैं संतोष जी इस सौंदर्य में, और समुद्र तो जैसे उनका सखा हो।

आलीशान बंगलों का उल्लेख रोमांचित करता है।

इस कंक्रीट के जंगल के पास माथेरान, खंडाला, लोनावला, अम्बोली, एम्बिवैली और महाबलेश्वर जैसे हरे-भरे पर्वतीय सैरगाह तिप्त, दग्ध मन को शांति अनुभव कराते हैं।

मारेथन की घाटियों से जुड़ी संतोष जी के जीवन की सबसे दुखद घटना हेमंत, इकलौते पुत्र की मात्र 23 वर्ष में दुर्घटना में मृत्यु विह्वल कर देती है। उस माँ का असहनीय दर्द हम महसूस भी नहीं कर सकते।

लोगों के जैसे परिंदे भी मुंबई में आने के इच्छुक हैं; यह इसी किताब से पता चला।

मुंबई को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जोड़ने वाली भारतीय रेल सेवा में, जिसमें सबसे अधिक सफर किया संतोष जी ने लोकल से चर्चगेट वीरार तक के अपने संस्मरणों के ज़रिए अपनी यादें और अपने परिश्रम के दिनों को साझा कर रही हैं। मुंबई दर्शन की इस दुर्लभ रोचक और महत्त्वपूर्ण किताब में कोई ऐसा स्थान, कोई ऐसा इतिहास, यहाँ तक कि भू-भाग, इमारतों की बनावट, शिल्प आदि नहीं जो छूट गया हो।

मुंबई में पाँच नदियाँ हैं। जी हाँ मुझे भी आश्चर्य हुआ, पूरी एक प्रांत में पाँच नदियों का तो पता है ए जी सही पहचान रहे हैं, पंजाब, किंतु एक महानगर में पाँच मीठे पानी की नदियों का उल्लेख सुन मन इसके भौगोलिक सौंदर्य के आकर्षण में और भी मोहित होता जा रहा है।

हर शैय का ज़िक्र किया है संतोष जी ने, मुंबई की, राते, मुंबई की लोकल रेल सेवा, मुंबई की चाल, मुंबई की संस्कृति, मुंबई की एक जुटता क्या कुछ नहीं जो मुंबई में न हो और संतोष जी ने उल्लेख न किया हो।

अपने जीवन के बिताए, सुख-दुख, हर्ष उल्हास पीड़ा-प्रेम श्रम, लेखन, शिक्षा, पत्रकारिता, नौकरी के साथ-साथ मुंबई की हर महत्वपूर्ण जानकारी उसका सौंदर्य, इतिहास, उसकी भौगोलिक संरचना अपने अनुभवों के साथ साझा किए हैं।

मुंबई में संतोष जी रही नहीं उसे उन्होने जीया है।

किसी शहर की ख़ासियत होती है, एक बार जो वहाँ जाए तो वहीं का हो कर रह जाए, और मुंबई तो सपनों का शहर है।

आज भी उन्हें कसक है मुंबई छोड़ने की।

भई अब मुझे कोई पूछेगा कि मुंबई गई हो, तो बिना झिझक के कह दूंगी, गई हूँ का क्या मतलब, इस किताब को पढ़ते हुए मुंबई को कईं रातों सिरहाने रखा है।

इसके पढ़ते, संतोष जी के साथ उठते-जागते, खाते-पीते, सोते मुंबई घूमी है।

लौट आओ दीपशिखा

सुषमा मुनीन्द्र

कुछ ख्वाहिशें हुई पूरी कुछ रही अधूरी

साहित्य जगत में अपना नाम सुनिश्चित कर चुकीं सुपरिचित उपन्यासकार, कथाकार संतोष श्रीवास्तव ने अपने देश विदेश भ्रमण पर इधर सार्थक और सूचना संपन्न यात्रा वृत्तांत लिखें हैं एवं रोचक यात्रा-वृत्तांत के लिए ख्यात होती जा रही हैं। उनके सद्य प्रकाशित उपन्यास लौट आओ दीपशिखा, की केंद्रीय पात्र चित्रकार दीपशिखा अपनी चित्र प्रदर्शनी के लिए जो देश-विदेश की यात्रा करती है उसके विवरण में संतोष जी ने अपने यात्रा अनुभव से प्राकृतिक, भोगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक चलन प्रचलन को इस तरह दर्ज किया है कि घटना क्रम में तारतम्य बनता है और कथा का सहज विकास होता है। लिव इन रिलेशनशिप पर आधारित उपन्यास का आरंभ दीपशिखा की मृत्यु से होता है। और प्रभाव और प्रवाह को बनाए रखते हुए अतीत के पृष्ठ कुछ इस तरह पलटे गए हैं कि सिलसिला बनता चला गया है। कथा से तादात्म्य बना चुके भाव विह्वल पाठक उपन्यास के अंत पर पहुंचते हुए दीपशिखा की बदहवासी को अपने करीब पाते हैं। दीपशिखा की कहें और क्लेश अधीर कर देते हैं कि जो दीपशिखा करोड़पति व्यापारी की इकलौती बेटी सुलोचना व यूसुफ खान की 14 बरस की तपस्या के बाद जन्मी एकमात्र रूपमती संतान है, करोड़ों की पीपल वाली कोठी की अकेली हकदार है, चित्रकला जगत का चमकता सितारा है, संभावनाओ, महत्वाकांक्षाओं से भरी उत्साही, काबिल लड़की है, विदेशी चित्रकारों के बीच सेमिनार प्रेजेंटेशन, लाइव परफॉर्मेंस देती है, सदैव सार्थकता की तलाश करती और ऊर्ध्वगामी सोच रखती है, कालिदास के संपूर्ण लेखन की सीरीज चित्रित करने जैसा अनोखा अद्भुत काम करती है, जिसने 'अंकुर ग्रुप ऑफ़ आर्ट्स' की स्थापना की है, देश-विदेश में चित्र प्रदर्शनी लगाई है, जिसके पास विचार, बुद्धि, प्रतिष्ठा, लोकप्रियता, संपन्नता है। माता-पिता जैसे मार्गदर्शक, शेफाली जैसी पारदर्शी नजरिए वाली मित्र, गौतम जैसा सहृदय लिव इन पार्टनर है। कुल मिलाकर कहे जिसकी संपूर्ण प्रकृति ही सुहासिनी है उसका ऐसा करुण अंत क्यों हुआ? इस प्रश्न के उत्तर उपन्यास के पन्नों में है।

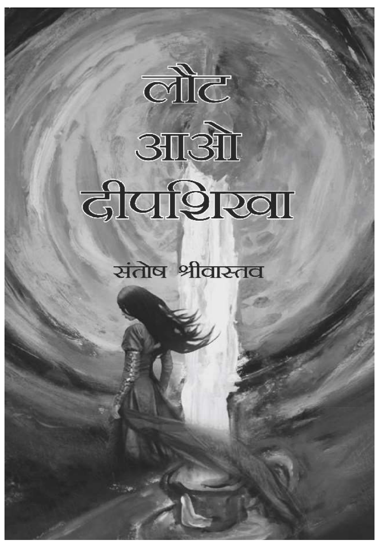

पहला उत्तर

तमाम आधुनिकता और उहापोह के बावजूद स्त्री आज भी अपने स्त्री बोध से पूरी तरह बाहर नहीं आ पाई है, तभी तो अंतरजातीय प्रेम-विवाह करने वाली सुलोचना के भीतर मां बनते ही पारंपरिक स्त्री चैतन्य हो जाती है। दीपशिखा को घर से दूर मुंबई के जे जे स्कूल ऑफ आर्ट से चित्रकला में डिप्लोमा लेने के लिए नहीं भेजना चाहती। फिर दीपशिखा के हठ पर उसे भेजती है लेकिन उसके लिए फ्लैट, स्टूडियो, नौकर चाकर जैसी उच्च वर्ग की सुविधा सुरक्षा की व्यवस्था करती है। दीपशिखा का आकलन करें, तो लड़कियाँ आम तौर पर जिन पारिवारिक, सामाजिक प्रतिबंधों, प्रतिरोधों से गुजरती हैं वह नहीं गुजरी है। लेकिन उसके भीतर से स्त्री बोध नहीं गया है। जानती है विवाह के बाद लड़कियों की जीवनचर्या में अवरोध, आपत्तियाँ आती हैं। वह चित्रकार, छायाकार मुकेश से प्रेम विवाह करना चाहती है। कि एक के क्षेत्र होने से उसकी कला को विकसित होने का अवसर मिलेगा।

दूसरा उत्तर

21वीं सदी में पहुंचकर भी पुरुष पितृसत्तात्मक

मानसिकता और अपने धर्म-जाति की श्रेष्ठता को पूरी तरह नहीं छोड़ पाए हैं। पूरे सिस्टम पर कब्जा कर स्त्रियों का सामाजिक, दैहिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, भावात्मक स्तर पर शोषण करने से नहीं चूक रहे हैं। तभी तो यूसुफ चाहता है दीपशिखा मुसलमान से शादी करे। तभी तो दीपशिखा को धोखा देकर मुकेश अपने परिवार, समाज में लौट जाता है, तभी तो पत्नी से अलग-थलग रहता दो पुत्रियों का पिता मंदाकिनी नाम की रखैल रखने वाला फिल्म डायरेक्टर नीलकांत जो न अपने परिवार के लिए भरोसेमंद है न दायरे के लिए। दीपशिखा के चित्र अच्छे दाम पर खरीद कर उसे मोहाविष्ट कर सुनियोजित तरीके से शोषण कर उसे गर्भवती बना देता है।

तीसरा उत्तर

भारत के सर्वोच्च न्यायालय मद्रास न्यायालय ने अपने फैसले में विवाह के बिना स्त्री-पुरुष के साथ रहने को दंपती की तरह वैधानिक माना है, तथापि प्राचीन और गहरी सामाजिक मान्यताएँ इस फैसले को नहीं मानतीं, तभी तो अंतरजातीय विवाह करने वाली सुलोचना और युसूफ को दीपशिखा का गौतम के साथ सहजीवन में रहना अमर्यादित लगता है, तभी तो दीपशिखा की बॉडी शेफाली या गौतम को सरलता से नहीं दी जाती। कि बॉडी के लिए रिश्तेदार ही क्लेम करें।

चौथा उत्तर

दीपशिखा जानती थी, प्रतिकूल परिस्थितियों का चुनौती की तरह सामना करने से अनुकूलता बढ़ती है। उसमें साहस और पारदर्शिता भी है। अपना गर्भवती होना वह गौतम को बता देती है। दृढ़ता और उग्रता भी है। नीलकंठ को फटकारने के लिए मंदाकिनी के घर पनवेल पहुंच जाती है, लेकिन रंगों के भाव पकड़ने में दक्ष दीपशिखा मनुष्य के भाव नहीं पकड़ पाई। स्थितियों के छल छंद क्षेत्रों में सायास अनायास उलझती गई। दो बार मिले छल ने उसका विवाह जैसी संस्था से विश्वास खत्म कर दिया। वह गौतम के साथ लिव इन में रहती है। थोड़ी स्थिरता और ठहराव पाती है। इसी बीच यूसुफ का निधन हो जाता है। पीपल वाली कोठी में अकेले रहती सुलोचना से वह वक्त निकालकर मिलने जाया करती है। माँ बेटी कोठी में इधर सुख-दुख बांट रही है उधर गुजरात में दंगे हो रहे हैं। कोठी से चूंकि यूसुफ का नाम जुड़ा है दंगाई वहाँ पहुँच जाते हैं। पुलिस की तत्परता से दंगाई सुलोचना और दीपशिखा तक नहीं पहुंच पाते, लेकिन इस छोटे से समय में घातक दबाव का गहरा असर दीपशिखा पर निष्कर्षतः पड़ता है। उसे पैरासाइट सिजोफ्रेनिया नाम की बीमारी हो जाती है। अदृश्य साये, भूत प्रेत से डरती है। लोगों पर शक करती है। साइकियाट्रिस्ट के उपचार, गौतम की परिचर्चा के बावजूद वह जी नहीं पाती। यदि दृश्य के भीतर का अदृश्य समझा जाए तो दीपशिखा की मानसिक स्थिति का एकमात्र कारण दंगाई नहीं है। पृष्ठभूमि में होते रहे तमाम पेचीदा उपक्रम हैं, जो उसने देखे, सहे। संगति विसंगति, मोह मोहभंग, संबल संघात, आशा हताशा, विजय पराजय, आस्था आघात, विश्वास विश्वासघात जैसे जगत के व्यवहार उसे क्षीण करते गए। गौतम के साथ परिणय में नहीं सहजीवन में रहने के कारण असुरक्षा, अधूरेपन, अनिश्चय के भाव भी कहीं न कहीं रहे होंगे। दीपशिखा की एकांतिक मृत्यु पर पाठक खुद को विराग की स्थिति में पाते हैं। जिस दीपशिखा की संपूर्ण प्रकृति सुहावनी थीं, उसका अंत यह है तो लोग किस अपेक्षा, किस लक्ष्य के लिए उम्र भर इतना सरंजाम एकत्र करते हैं। उपन्यास नसीहत देता है, जब तक किसी मुकेश, किसी नीलकांत, किसी गौतम के साथ लड़कियां भावुकता में बहती रहेंगी उनकी कथित मुक्ति अंतर बंधन ही प्रमाणित होगी। उपन्यास में पात्र कम हैं, लेकिन महत्वपूर्ण हैं। उन्हें अच्छा स्पेस मिला है। बिंब, प्रतीक, मुहावरों की जटिलता से मुक्त छोटे-छोटे सहज वाक्य हैं, जो बड़ी बात कह देते हैं। चित्रकला की आधारभूत बारीकियों का विवरण अच्छी जानकारी देता है। लेकिन उपन्यास की कुछ बातें व्यवहारिक नहीं लगतीं। अपने संपर्क में आए तीनों पुरुषों से दीपशिखा जिस तत्परता से मिलनसार होती है उसमें अतिरेक नजर आता है। कसावट और तार्किकता कुछ अधिक होती, तो प्रभाव बढ़ जाता। बहरहाल उपन्यास उन तमाम लड़कियों को सतर्क करेगा जो मुक्ति के नाम पर नई इबारत लिखना चाहती हैं, लेकिन बहुत कुछ सोचकर दीपशिखा बन जाती हैं।

टेम्स की सरगम

पुष्पा भारती

निर्बाध, निरव्याज अनंत प्रेम है

प्रशंसित लेखिका संतोष श्रीवास्तव के उपन्यास 'टेम्स की सरगम' ने मुझे गहरे इसलिए छू लिया है, क्योंकि इसमें जिस प्रेम तत्व का वर्णन है उसे मैंने बहुत गहराई से महसूस किया है। प्रेम के इस बीज तत्व को स्थापित करने के लिए संतोष ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अपनी कथा का ताना-बाना बुना है। इतिहास तो अतीत का इतिवृत्त होता है। वह अतीत जो गुजर चुका है। मृत हो चुका है, लेकिन संतोष की सधी हुई कलम का कमाल है कि पाठक उस इतिहास की नब्ज को छूकर उसकी धड़कन सुन सकेंगे।

गुजरते समय की पगध्वनि साफ-साफ सुन सकेंगे। इतिहास इसमें जीवित धड़क रहा है। यह उपन्यास कोई ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, पर इसमें वर्णित प्रेम कथा के साथ-साथ इतिहास इस तरह गुंथा हुआ है कि उपन्यास के अन्य पात्रों की तरह वह भी एक पात्र नजर आता है।

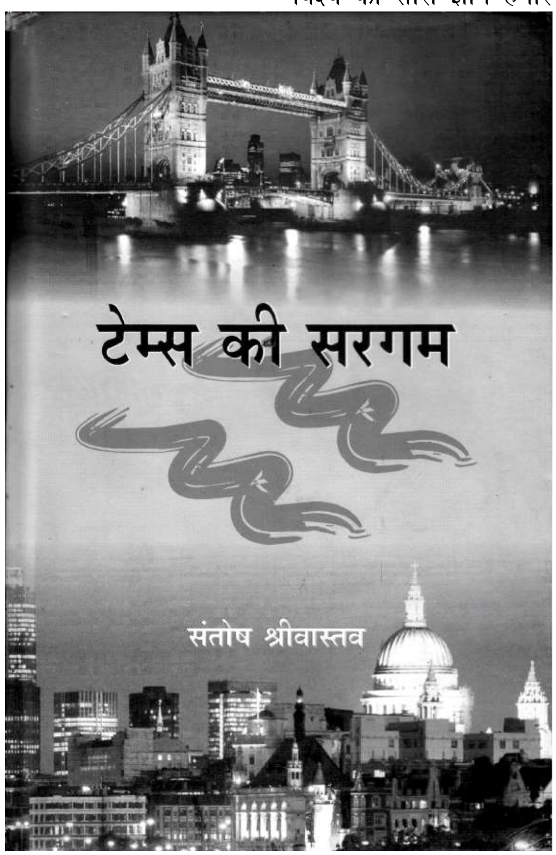

संतोष अंग्रेजों के जमाने की फिटन की सैर भी करा देती हैं और अंग्रेज हुक्मरानों की विशाल कोठियों के खूबसूरत बगीचों के पुकुर भी दिखा देती हैं। मैं बड़ी देर तक उसी पृष्ठ पर ठिठक गई थी और लाल-सफेद कमल के फूलों की खूबसूरती नजर से पीती रही थी। इतिहास का घटना चक्र ही नहीं संतोष ने बीच-बीच में साहित्य से इत्र खींचकर जो महक बिखेरी है, उसने भी मन को बहुत छुआ। उपन्यास की नायिका डायना और नायक चंडीदास के माध्यम से भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग का संगम साफ दिखाई देता है। जब डायना कहती है इस विश्व का सारा ज्ञान हमारे भीतर मौजूद है, लेकिन उसे देखने वाली हमारी आंखें बंद हैं। उन्हें खोलने के लिए एक गुरु की जरूरत होती है जो ज्ञान मार्ग के दर्शन कराता है। चंडीदास कहता है मैं ज्ञान नहीं जानता। बस एक शब्द जानता हूँ प्रेम, और इस एक शब्द में ब्रह्मांड समाया होता है। दोनों के प्रेम की व्याख्या संतोष ने बड़ी गहराई तक जाकर की है। चंडीदास से यह कहना कि, "और डायना, तुम सृष्टि हो, सृजन हो, तुम मंजिल हो मेरी।" ऊंचे और गहरे धरातल पर ले गई हैं संतोष प्रेम को।

इतिहास को कथा में गूंथने में तो संतोष की कलम का जवाब नहीं। उपन्यास के पात्र टॉम (डायना का पति) डायना और नादिरा (डायना की सहेली) के माध्यम से उस

समय की अंग्रेजी हुकूमत की बानगी देता इतिहास और चंडीदास के परिवार के माध्यम से उस समय के भारतवासियों की मनःस्थिति का जीता-जागता चित्रण उपन्यास में है। एक ही परिवार के पांचों सदस्य अपनी अलग-अलग जीवन पद्धति जी रहे हैं। सबके मूल में देश-प्रेम की भावना है। तत्कालीन भारत के सभी परिवारों की लगभग ऐसी ही स्थिति थी क्योंकि उपन्यास की पृष्ठभूमि कोलकाता है और वहां सुभाष चंद्र बोस का वर्चस्व था, इसलिए चंडीदास की बहन गुनगुन और उसका प्रेमी सुशांत छात्रों की मजदूर यूनियन को लेकर आगे बढ़े, वीर सावरकर से जुड़े और जब सुभाष देश छोड़कर जाने लगे, तो उस सत्य प्रमाणित ऐतिहासिक प्रसंग में वे बड़ी खूबसूरती से गूंथ दिए गए और संतोष का यह प्रयास कथा को बहुत जीवंत और संवेदनशील बना देता है।

देश की तत्कालीन राजनीति के खूबसूरत वर्णन के साथ-साथ उपन्यास में मानो प्रकृति और आसपास का परिवेश जीवित पात्र होते हैं। मसलन "धूप का टुकड़ा कमरे में चुपके से आकर बैठ जाता है।"

"हवा का झोंका हरी दूब के सिरों को छूकर आता है।"

प्रातः धीरे-धीरे अपने पैर धरती की ओर बढ़ा देती है।

"कमरे में मध्यम रोशनी नहीं होती, वरन् वहां तो रोशनी दीवारों पर चित्र करती रहती है।"

उपन्यास की कथा के प्रवाह में बीच-बीच में से अनेकानेक प्यारे-प्यारे बिंब गमी और उमस में ठंडी बयार के झोंके—जैसे महसूस होते हैं।

डायना का चरित्र पाठक की संपूर्ण सहानुभूति और प्रेम पाने में समर्थ रहा है। उसका पति टॉम उसकी अपनी पसंद का व्यक्ति नहीं था। उसे तो उसके पिता ने चुना था और बिना यह परवाह किए कि उसकी बेटी की प्रकृति बिल्कुल उस तरह की नहीं है जो टॉम- जैसी प्रकृति वाले व्यक्ति के साथ खुश रह सकेगी। दोनों में कहीं कुछ भी तो मेल नहीं खाता। टॉम से बेचारी को वास्तविक प्रेम का एक कण भी कभी नहीं मिला। केवल अपनी देह के दोहन से वह भीतर ही भीतर एक दम खाली, अकेली और उदास होती जा रही थी। ऐसे में एक दिन जब उसका सहज संवेदनात्मक, कलाप्रिय मन धीरे-धीरे अंकुरित हुआ और दोनों एक-दूसरे को जी जान से चाहने लगे। सीधा-सच्चा, सरल प्रेम, लेकिन संतोष ने इस प्रेम को कोरी वासना से न जोड़कर उसमें ईश्वरीय तत्व का समावेश कर दिया। यह वाक्य—

"डायना ऐसे धरातल पर खड़ी थी, जो सीधा कृष्ण के पीतांबर को छूता था।" मन को कृष्ण में बना गया। राधा यानी प्रेमतत्व और इसी प्रेमतत्व को आधार बनाकर उपन्यास की कथा रची गई है। इस प्रेम को कथा का मूल आधार बना संतोष इतिहास को सामाजिक संपूर्णता के साथ उपन्यास में शामिल कर लेती हैं। भारत के धन संपदा का अंग्रेजी शासन ठीक उसी तरह दोहन करता है, जैसे गंगा के पानी को स्पंज में सोखकर लंदन की टेम्स नदी के किनारे ले जाकर निचोड़ दिया जाए। दादाभाई नौरोजी के लिखे इस वाक्य के साथ आजादी की लड़ाई में पारसी समुदाय के योगदान की कथा भी दी गई है। सब कुछ इतनी चुस्ती से संतोष करती हैं कि कथा कभी कहीं से भी बोझिल नहीं होती। कथा में प्रेम का प्रवाह निर्बाध गति से चलता रहता है।

कथा सबसे ज्यादा जीवंत हो उठी है, जब अपने पति के हाथों अपने प्रेमी के कत्ल के बाद डायना के चरित्र का लोहा जागता है। संतोष की कहानी कला में माहिर कलम ने लिखा—

"टॉम सिर्फ गोश्त प्रेमी है। रात होते ही उसे भुना गोश्त भी चाहिए और जीवित भी।"

लेकिन वह टॉम से घृणा भी तो नहीं कर पाती। चंडीदास के प्रति अथाह प्रेम उसे ऐसे शैतान के प्रति घृणा करने का अवकाश ही कहाँ देता है, और उसके जीवन में वह है ही कहाँ।

क्योंकि—

"चंडीदास उसके जीवन से गया ही नहीं और टॉम

उसके जीवन में कभी आया ही नहीं।"

केवल एक पंक्ति में सारे चरित्र चित्रण का निचोड़! चरित्र के इसी पारदर्शी लोहे को लेकर डायना अपना शेष जीवन जीती है। उसे मात्र दो चीजें महत्वपूर्ण लगती हैं। अपना मातृत्व और अपने प्रिय के परिवार के प्रति कृतज्ञता और कर्तव्यबोध। वह जानती है कि टॉम को तो अथाह दौलत और औरत का शरीर चाहिए। दोनों ही चीजें डायना से मिलती रही हैं, लेकिन अब बस! उसे अब जिंदगी अपने लिए अपनी तरह से जीनी है, और बिना किसी गिल्ट की भावना के वह सख्त फैसला लेकर टॉम से समझौता करती है कि अब वह उसके साथ तभी रहेगी, जब अंतिम सांस तक वह उसका जिस्म नहीं छुएगा। हां ऐश के साथ जीवन गुजारने लायक धन उसे अवश्य हर महीने मुहैया कराती रहेगी। डायना के चरित्र की यह उठान अंत तक बनी रही। चंडीदास के परिवार को संभालना, उसकी पुत्री को जन्म देना और नाम भी वही देना जो चंडीदास ने सोचा था—रागिनी। डायना का चरित्र आंख में तपे कुंदन-सा चमकने लगा। भव्य, कर्मठ, समर्पित और संपूर्णतः ईमानदार नारी चरित्र का गठन और प्रेम की काबिले-तारीफ परिणिति कि डायना की मृत्यु के बाद उसका दाह-संस्कार हुआ और उसकी राख पंचमढ़ी की उसी घाटी में विसर्जित की गई, जिसमें ढकेलकर टॉम ने चंडीदास को मारा था।

आगे की कथा को बिना अनावश्यक विस्तार दिए प्रेम के इस वृत्त के अधूरे अंश को पूरा गोलाकार रूप मिला रागिनी के जीवन प्रसंग से जुड़कर। भारत की आजादी के बाद डायना के सहयोगियों—दीना और जॉर्ज के संरक्षण में लंदन में अपनी माँ की समृद्धि के बीच रागिनी के जीवन में प्रेम प्रवंचना और धोखे के रूप में आया और जब उसके भ्रम टूटे तब तक उसके पास सिवाय कुचले-मसले अतीत के और ढलते यौवन के अलावा कुछ नहीं बचा था। भारत में अपनी बुआ मुनमुन की प्रेरणा पाकर वह सब कुछ छोड़ छाड़कर आई तथा कृष्ण तत्व की खोज वाली अपनी थीसिस पूरी की और अपना सब कुछ दान करके वृंदावन में कृष्णमय हो गई।

इस उपन्यास के सभी नारी चरित्र ठोस मुकम्मल और सार्थक हैं। प्रेम का मुजस्सम रूप डायना, देश की आजादी के लिए मर मिटने वाली कर्मठ गुनगुन, आज के लिव इन रिलेशनशिप को उस दकियानूसी जमाने में जीती मुनमुन, श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को समर्पित दीना एसंपूर्ण स्त्री नादिरा। इन चरित्रों के साथ सबसे ज्यादा ध्यान आकृष्ट करती है चंडीदास की माँ। गृहस्थी के बोझ से पिसती साधारण सी गृहिणी अचानक कितनी बड़ी बन जाती है जब बेटी गुनगुन के अवसान पर रोती कलपती उस माँ से डायना कहती है

"आप शक्ति हैं और रोती हैं, आज तो गर्व करने का दिन है।"

अचानक माँ आंसू पोंछ, कमर में पल्ला खोंस और हाथ का पंजा माथे तक ले जाकर जोर से बोलीं, "जय हिंद।"

और मैं संतोष की कलम पर फिदा हो गई।

रागिनी का चरित्र भी साहस की मिसाल है। उसे प्रेम की पीड़ा को जीवनपर्यंत झेलना गवारा नहीं। उसने अपनी माँ के संघर्ष और पीड़ा समेत खुद की पीड़ा को भी उस यज्ञ में आहुति बना स्वाहा कर दिया जिसमें सिर्फ एक चीज बजती है प्रेम! संपूर्ण प्रेम। निजी प्रेम को असीम विस्तार देने वाले व्यष्टि के द्वारा समष्टि को मुक्ति देने वाले ऐसे ही चरित्रों को गढ़ना आज के युग की जरूरत है।

संतोष श्रीवास्तव की कहानियों में मूल्यबोध आसमानी आँखों का मौसम

जया केतकी शर्मा

संतोषजी की कहानियों पर कुछ कहने से पहले मैं हिंदी कहानी और उसकी आलोचना के बारे में कुछ कहना चाहूँगी। हिंदी कहानी में कथावस्तु, पात्र यानी चरित्र चित्रण, कथोपकथन यानी संवाद, देशकाल यानी वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य, रोचकता, प्रभाव और वक्ता एवं श्रोता यानी कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये

रखने के लिये महत्वपूर्ण तत्व माने गए हैं।

अब बात करते हैं उनकी कहानियों की। संतोषजी ने जब कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया तब हिंदी कहानी में स्त्री पात्रों को लेकर प्रमुखता से लिखा जा रहा था। संतोषजी ने भी अपनी कलम से कहानियाँ उतारीं और प्रकाशन के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाईं। एक-एक कर उनके पाँच कहानी संग्रह आए। सब में एक से बढ़कर एक कहानियाँ।

'अंकुश की बेटियाँ' कहानी में हमारे समाज की थोथी मानसिकता का चित्रण है जहाँ एक ओर जुड़वा बेटियों को कोख में ही मार देने की बात है वहीं दूसरी ओर कैसे पिता की मानसिकता बदल जाती है और वह अपनी बेटियों के जीवन की दुआ करता है। बलात्कार और बालिका भ्रूण हत्याओं—जैसी देश की शर्मनाक और बड़ी समस्याओं पर भी इस संवेदनशील लेखिका का हृदय विचलित हो जाता है। 'हलाहल', 'लावा' कहानियाँ उसी आंतरिक द्वंद्व से उपजी कहानियाँ हैं।

संतोषजी की कहानियों में यह क्षमता है कि वह पाठक के सामने दृश्य प्रस्तुत कर देती हैं। पाठक इतना सम्मोहित हो जाता है कि उसे आभास होने लगता है कि वह इसी कहानी का पात्र है। कथानक का चयन और पात्रों के संवाद ऐसे लगते हैं जैसे हमारे बीच से ही किसी की बात हो रही हो।

उनकी कहानी में संवादों की अधिकता नहीं होती फिर भी पूरी कहानी पाठक को सम्मोहित कर देती है। चाहे शरणार्थियों के जीवन के कटु अनुभव हों या घरेलू महिलाओं के जीवन की कठिन परिस्थितियाँ। वे शब्दों से ऐसे दृश्य गढ़ती हैं कि जब तक कहानी पूरी न हो पाठक छोड़ नहीं पाता।

'चित्रों की जबान' एक स्त्री और पुरुष के जीवन के प्रेमांकुर से लेकर पतझड़ तक की कहानी है। जिसमें जीवन

के साथ गुजारे पलों का हिसाब-किताब करते उम्र के आखिरी पड़ाव पर भी दोनों के होंठों पर मुस्कुराहट रहती है।

कहीं-कहीं ये कहानियाँ ताकती हुई न्याय की गुहार लगाती हैं, कभी अपने कर्तव्यों में अपने को पूरा खर्च कर देती हैं तो कहीं प्रेम की नई परिभाषाएं उकेरती नजर आती हैं। अपने को बिखेरती, टूटती, किरच-किरच होकर भी निराश नहीं होती और साहस का नया संसार समेटती, सँभालती, और नए मानदंड गढ़ती नजर आती हैं।

हिन्दी में कहानी

आलोचना पर्याप्त समृद्ध और बहुआयामी होते हुए भी आलोचना की मुख्यधारा में अनादृत ही रही है। हिन्दी में केवल कथाकार या कहानीकार तो बहुत से मिल जाएँगे, लेकिन ऐसी कलम जो केवल कथा या कहानी की आलोचना का सेहरा अपने सिर बाँधना चाहे; ढूँढ़ने पर बहुत मुश्किल से ही मिल पाएँगे। जो दो-चार कहानी आलोचक साहित्य के पटल पर रहे या हैं भी तो उनके कार्य इतने सीमित और कालबद्ध हैं कि उससे कहानी-आलोचना की कोई सामान्य सैद्धान्तिकी संभव नहीं हो पाई।

'गूँगी' एक बेजुबान लड़की की करुण कथा है। कितना बेसहारा हो जाता है हमारा शरीर किसी एक अंग के बेकाम हो जाने पर। उसे अपनी अस्मत की रक्षा के लिए अपनों से भी किस तरह घमासान करना पड़ता है। इस तरह की और भी कहानियाँ पढ़ने को मिली हैं पर इसमें संतोषजी की कलम ने पाठक को बाँधा तो है ही दृश्य के माध्यम से अंतर की मजबूती को भी प्रस्तुत किया है।

यह कहना पर्याप्त होगा कि एक कहानी की समीक्षा एक कहानी की तरह ही होनी चाहिए, उसे साहित्य की किसी अन्य विधा की तरह नहीं देखना चाहिए। क्योंकि कहानी में कथा और शिल्प के माध्यम से समाज के परिदृश्य को दर्शाने का प्रयास किया जाता है। यह करने में संतोषजी की कलम समृद्ध तो है ही सराहनीय भी है।

'सपना ठहरा सा' एक उत्साही और युवा लड़की की कहानी है जो बताती है कि अपनी ख्वाहिशों को पूरा करने के लिए जवानी के जोश में लड़कियों को माँ की रोकटोक कितनी नागवार गुजरती है। पर जब वह अपनी मंजिल पा लेती है तब उसे अहसास होता है कि इस कामयाबी के पीछे उसने क्या खोया है?

कहानी समीक्षा की असल जमीन तो स्वयं कहानी विधा के संघटक तत्त्वों से ही की जा सकती है। नए प्रयोगों द्वारा उसकी संभावनाओं की तलाश की जा सकती है। इससे परम्परा का मूल्यांकन भी होगा और आगे के नए रास्ते भी खुलेंगे।

'मृगमरीचिका' की मौसी कहती हैं, 'औरत की जिंदगी हर हाल में यातना भरी है। चाहे कितनी भी सुख-सुविधाएं हों पर न जाने कहाँ से दुख छन्न से गिरता है और छोटे-बड़े सुखों को अपने में समेट लेता है', तो आँखों के सामने सारे रिश्तों में आईं नारियाँ चाहे वे काकी, ताई या बुआ कोई भी हों घूम जाती हैं जो इस बात का जीता-जागता उदाहरण बन जाती हैं।

हमारे समाज में विडंबना है कि माँ-पिता अपनी अधूरी आकांक्षाओं को अपने बेटे-बेटियों में पूरी करना चाहते हैं और इसके चलते परिवार के बिखरते स्वरूप को संतोष ने अपनी कहानी के माध्यम से दिखाया है। 'नागफनियों के बीच' कहानी में किसी तरह अपने मन की करने के लिए बेटी को जाने कितने विरोधाभासों से दो-चार होना पड़ता है।

समाज के बीच रहकर समाज के आंतरिक जीवन में उथल-पुथल मचाते उपद्रवियों से मर्यादा कैसे छिन्न-भिन्न होती है यह दृश्य खींचती कहानी 'सब तरफ आग है लगी हुई' पढ़ने के बाद हो सकता है, शब्द जिन भावों-अनुभवों स्मृतियों को उनकी कलम कुरेदना चाहती है, वे पाठक के भीतर न हों। यहाँ पाठक की जो अयोग्यता है, उसे उलटकर कहानी और कहानीकार की अयोग्यता कह दिया जाए। यह ठीक नहीं, उचित नहीं। मसलन संतोषजी की कहानियों में आने वाले उर्दू के शब्द। कई बार मुझे खुद कहानी पढ़ते-पढ़ते रुकना पड़ता है। और उर्दू के शब्द का समानार्थी हिंदी का शब्द मिलते ही मुझे कहानी का भाव संप्रेषण मिल जाता है।

'महाकुम्भ' में लेखिका भारतीय अध्यात्म की तह तक जा पहुँचती है और नायिका गुनहगारों को क्षमा कर देती हैं।

पहला पृष्ठ पढ़ने के बाद कई बार पाठक द्वारा कहानी छोड़ दी जाती है। इससे यह स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए

कि लेखक की ओर से ही कहीं चूक रह गयी। यह भी तो हो सकता है कि पाठक में उसे समझने की क्षमता की कमी हो। हाँ यदि कोई भी पाठक पास आता ही नहीं तो बात और हो सकती है, लेकिन संतोष के साथ ऐसा होता नहीं है। पाठक पढ़ता है और प्रतिक्रिया भी देता है।

'आसमानी आँखों का मौसम' बहुत अधिक दिलचस्प और मर्मस्पर्शी कहानी है जो दूर रहने वाले प्रेमी-प्रेमिका के बेहद रंगीन सपनों की दुनिया को साकार होने की कगार पर टूटते-बिखरते सामने लाती है। इस कहानी का एक वाक्यांश— 'मैं जानती थी कि मैंने रेगिस्तान में इंद्रधनुष की कल्पना कर डाली है पर मेरा खुद पर वश नहीं।'

उनकी कहानी की कथावस्तु साधारणतः इकहरी होती है। चरित्र के लिए किसी एक पहलू का ही चित्रण रहता है। कथोपकथन अधिक छोटे और मर्मस्पशी होते हैं। संवादों की निरर्थक लंबाई नहीं होती उनकी कहानी में। कहानी में एक समय का निर्धारण और एक स्थान की जरूरत होती है जिसका चयन संतोष बहुत सावधानी से करती हैं। अगर हम बात करें साठ-सत्तर के दशक के बाद की कहानियों की तो उनका तेवर बिल्कुल ही बदला हुआ पाते हैं।

इधर की कहानियों में कहीं पत्रकार की कहानी है तो कहीं बड़े खानदान की स्त्रियों के करुण क्रंदन से कर्ण वेधती गुहार सुनाई पड़ती है। 'लावा', 'मेरे होने का अर्थ' और 'महाकुंभ' आदि कहानियों में जहाँ औरत अपने अस्तित्व को साबित करने की जद्दोजहद करती दिखाई पड़ती है तो वहीं यहाँ सपने बिकते हैं, 'उस पार प्रिये तुम हो' में परिवार की बिखरती कड़ियों को जोड़ने का प्रयास करते दृश्य मन को झिंझोड़ जाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद से ही बेरोजगारी और स्त्री सशक्तिकरण को लेकर कहानियों में बात लिखी जाने लगी। महिलाओं और उसके अधिकारों की लड़ाई के साथ उसकी अभिव्यक्ति की छटपटाहट की अनुगूँज स्त्री रचनाकारों की कहानियों में बखूबी सुनाई पड़ती है।

दलित के प्रति अपनी सहानुभूतियों के रंग से हिंदी कहानी को नया मोड़ दिया। मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में एक जमीन से जुड़े व्यक्ति के जनजीवन की निकटतम परिस्थितियों का जो वर्णन हुआ उसका अनुसरण करने वाले कथाकारों की संख्या कम नहीं। संतोषजी ने किसी भी प्रतिष्ठित कलम का अनुसरण नहीं किया। अपने ही तरीके से लिखना शुरू किया और जमीनी वास्तविकता से जुड़कर लिखा। निरंतर उनके लेखन को पसंद किया गया; सराहा भी गया। कहीं-कहीं भाषा के प्रवाह में बाधा डालती त्रुटियाँ परिलक्षित होती हैं जो संवाद में रुकावट नहीं डालतीं।

आज के दौर में तकनीकी विकास को रेखांकित करती हुई और उससे उत्पन्न खतरों को व्याख्यायित करने वाली कहानियाँ भी बहुतायत से लिखी जा रही हैं। मसलन महिलाओं को ऐसी संस्थाओं में काम करने से क्या मुश्किलें आती हैं और किस तरह की सावधानियों से वह अपने आपको सुरक्षित रख सकती हैं।

हिन्दी की कहानी-समीक्षा पर अधिकांशतः एक आरोप यह लगाया जाता रहा है कि उसके प्रतिमान कविता समीक्षा के क्षेत्र से आयत्त किए जाते हैं। हिन्दी आलोचना के पास कहानी समीक्षा के ऐसे प्रतिमान लगभग न के बराबर हैं, जो कहानी को कहानी की तरह देखें, जो कहानी-विधा के लिए हों।

वहीं दूसरी ओर तकनीकी कार्यकर्ताओं और संस्थाओं के मालिकों को किस प्रकार महिलाएँ अपने मोहपाश में बाँधकर फ्लर्ट करती हैं। और मालिकों को नुकसान की हद से गुजरना पड़ता है। ऐसी कहानियाँ इस दृष्टिकोण से लिखी जा रही हैं कि मर्यादा और नैतिकता का दामन न छोड़ा जाए।

मंजुल भारद्वाजजी के शब्दों में संतोषजी का लेखन सच को उजागर करता है। शब्दों का चयन, शिल्प का गढ़न और भाषा की बुनावट एक ऐसे रचनात्मक संसार की ओर ले जाने की कोशिश है जहाँ हम अपने आप ही उनके संग हो लेते हैं।

ख्वाब न जाने कितने लिबास बदलते हैं

सरस दरबारी

खुशियों के...

चाहतों के...

उम्मीदों के...

और जब वह लिबास शरीर बनने लगता है तो उसे किस्मत बड़ी बेरहमी से खुरच-खुरचकर जिस्म से अलग

करने पर तुल जाती है। लहूलुहान कर देती है सारा वजूद और छोड़ जाती है नासूर उम्रभर टीसते हुए रिसने के लिए।

रन्नी ने जब खुशियाँ पहनीं, तो परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए दुगुनी उम्र के एक क्लर्क से उसे बियाह दिया गया, जिसने उसके शरीर के साथ उसकी आत्मा को भी भरपूर रौंदा। खिलौनों के संसार में पली रेहाना, जो शादी के मायने भी नहीं जानती थी; रोज़-रोज़ शराबी पति के हवस का शिकार होती रही। बहुत ही वहशियाना तरीके से उसे औरत बनाया गया। और आखिरकार उसे एक बाँझ करार दे सदा के लिए मायके भेज दिया, कभी न बुलाने के लिए। रफ्ता-रफ्ता उसकी खुशियों के पैरहन तार-तार होते गए।

फिर जब उसने चाहत का लिबास पहना तो उसकी ज़िंदगी में एक उम्मीद बनकर आया युसुफ भी कायर ही निकला, जो रन्नी के हक़ की लड़ाई तक न लड़ सका। अपने पिता की ज़िद्द के आगे हथियार डाल, एक अनचाहे गर्भ का भार उसपर थोप गायब हो गया।

एक अनब्याही माँ के कलंक ने उसे दोबारा तोड़ा। जब एक बाँझ कहलाने की ज़िल्लत के बाद कतरा-कतरा उसकी बेगुनाही उस तसले में नेस्तनाबूत होती रही, जो साबित कर सकती थी कि वह एक बाँझ नहीं, एक पूरी औरत है। पर बावजूद इसके रन्नी ने युसुफ को कभी दोषी नहीं माना।

हालांकि उम्मीद का पैरहन तार-तार होकर जिस्म पर चिपका रहा युसुफ की याद बन, जिसे वह कभी अपने से जुदा न कर सकी। मुसीबतों की खाइयाँ पाटते-पाटते वह खुद दफ्न होती गई। उसे खुशियाँ कतरों में मिलीं, और हर कतरे के बाद दुखों के पहाड़। बहुत कम होता है कि ईश्वर से लड़ने का मन करे। रन्नी की कहानी पढ़कर कुछ ऐसा ही लगा।

एक इंसान के जीवन में इतने दुख...!

रन्नी की पीड़ा, हर पाठक के दिल को टीसती है।

इस उपन्यास की एक और विशेषता है—

यह उपन्यास संयुक्त रूप से लिखा गया है। हर लेखक की अपनी एक विशेष शैली होती है, शब्द संयोजन होता है। संवाद मिलकर लिखे जा सकते हैं, पर एक उपन्यास में, जिसे दो कथाकारों ने मिलकर लिखा है निरंतरता का निर्वाह कर पाना कठिन होता है।

पर शब्दों के पैरहन पढ़ते हुए, कहीं भी यह एहसास नहीं हुआ। संतोष श्रीवास्तवजी एवं प्रमिला वर्माजी ने बहुत ही निपुणता से इसे गूँथा है। यह तय कर पाना कठिन है, कि किसकी लेखनी ने कब विराम किया और कब दूसरी ने गति पकड़ी। कौन सा भाग किसने लिखा है। भाषा या शैली के अंतर ने कहीं भी रुकावट नहीं पैदा की।

इस अनुपम कृति के लिए दोनों बधाई के पात्र हैं। भविष्य में ऐसी और संभावनाओं के लिए आप दोनों को अनंत शुभकामनाएँ।

मालवगढ़ की मालविका

विनीता राहुरीकर

मालवगढ़ की मालविका उपन्यास जब पढ़ने बैठी तो यकीन मानिए चार पन्नों के बाद उपन्यास पढ़ ही नहीं पायी। किसी ने जैसे मुझे भी हाथ पकड़कर पायल के साथ जीप में बिठा दिया और मैं चल पड़ी ऊबड़-खाबड़, रेत के ढूहों से भरे रास्ते पर, बबूल, कीकर के कँटीले पेड़ों की छाँव तले सीधे प्रताप भवन। प्रज्ञा में जैसे अचानक एक झरोखा सा खुल गया और मैंने देखा मैं तो प्रताप भवन में खड़ी हूँ जहां बाबा, दादी को लेकर तल घर में खड़े हैं, दिखा रहे हैं उन्हें भारत को स्वतंत्र करवाने के सारे सरंजाम। दादी डरकर बाबा से लिपटी जा रही है, लेकिन दूसरे रोज से देव बाबा की मड़िया में छुपे क्रांतिकारियों के लिए नियम से स्वादिष्ट भोजन भेजने लगी है। भारत को आजाद करने में किसने कितना योगदान दिया है यह कभी भी आंका नहीं जा सकेगा। दादी-बाबा जैसे लाखों लोगों के बलिदान पर ही देश आजाद हुआ है।

उपन्यास की जादुई भाषा का चमत्कार है कि पाठक इसे पढ़ते हुए कब इसका हिस्सा बनकर उपन्यास के पात्रों के साथ एकाकार होकर जीने लग जाता है, उनका हिस्सा बनकर उन्हीं का होकर रह जाता है। क्षण भर में ही अपने समय से कटकर 70-75 वर्ष पहले का हो जाता है।

तभी बड़ी दादी की चिल्लाहट पर मारिया के साथ वो भी दौड़ते हुए पहुँच जाता है। उषा बुआ के विवाह में सज-धजकर उल्लास मनाता है। संध्या बुआ के गुपचुप विवाह के समय साँस रोके रहता है कि कहीं उसकी सांसों की आवाज प्रताप भवन के कमरे के बिस्तर पर पड़ी बड़ी दादी को खबर न कर दे।

यह उपन्यास स्त्री मन तथा चरित्र के विविध रँगों को बड़ी बारीकी से अपनी बुनावट में उतारता चलता है। एक बहुत गहन बात जो मैंने इस उपन्यास से समझी है, वो यह कि स्त्री व्यर्थ ही आज तक समाज में अपनी कमजोर स्थिति के लिए दोष पुरुषों पर मढ़ती आयी है। 75 बरस पहले के इस समाज में मुझे तो स्त्री की दयनीय दशा के लिए एक भी पुरुष उत्तरदायी नहीं दिखा, अलबत्ता स्त्री ही दिखी।

दादी को सती करने का फैसला भी एक स्त्री ने ही लिया। किसी पुरुष ने नहीं कहा कि मालविका को सती हो जाना चाहिए। बल्कि पुरुष ने तो जलती चिता से उठाकर स्त्री का उद्धार ही किया। पायल के विदेश जाकर पढ़ने का विरोध किसी भी पुरुष ने नहीं किया। किया तो फिर एक स्त्री ने। यहाँ एक स्त्री ही रही पूरे उपन्यास भर जिसकी वजह से उम्र भर क्या तो दूसरी स्त्रियाँ और क्या तो पुरुष सभी त्रस्त रहे, दुःखी रहे। कहीं ऐसा तो नहीं पाप के बोझ से बचने के लिए आज तक स्त्री ही स्त्री पर अत्याचार करके उसका दोष पुरुष पर मढ़ती आयी हो और फिर कालांतर में यही बात समाज और समय के लिए एक सच के तौर पर स्थापित हो गई कि पुरुष वर्चस्व चाहता है और स्त्री को पददलित रखता है। स्त्री के विरुद्ध यह कहीं स्त्री का ही षड्यंत्र तो नहीं जिसने पुरुष को भी अपने भ्रम में लपेटकर रख दिया है।

क्योंकि पुरुष तो बाबा जैसा है जो मालविका को पूरा सम्मान देता है। सम्पूर्ण कुल के अच्छे-बुरे फैसले लेने का अधिकार कुल जमा मालविका के ही तो पास है।

कब किसी पुरुष ने उसे रोका मारिया को आहुति देने से, मारिया को सेवा सदन बनाने के लिए धन और जमीन देने से।

उसके जीवन में ग्रहण लगाया तो एक स्त्री ने। उसे अपने घर-परिवार से अलग किया तो स्त्री ने। उसे जिंदा आग में जलाने का हुक्म दिया तो स्त्री ने।

उपन्यास की महीन बुनावट में बड़ी कुशलता से लेखिका ने इस सच्चाई को बुना है।

और पाठक जीता है कोठी में होने वाले आनंद उत्सवों को। जीता है कोठी के दर्द को।

संध्या और अजय के पवित्र प्रेम में डूबता है तो जिम

के उदात्त प्रेम के सामने नतमस्तक होता है। उफ्फ! प्रेम इतना उदात्त भी होता है यह तो बस जिम को देखकर, उसके व्यक्तित्व को पहचानकर ही जाना जा सकता है। साधारण मनुष्य में ऐसी असाधारणता दुर्लभ है। जिम का व्यक्तित्व तो मनुष्य होकर भी मानवेतर है। न सिर्फ मालविका के प्रति प्रेम में, वरन भारत देश के प्रति भी उनकी सोच पाठक का सर उनके आगे श्रद्धा से झुका देती है। तभी तो भारत की स्वतंत्रता पर वह मालविका से भी अधिक प्रसन्न हुए।

थॉमस भी तो प्रेम की इसी ऊँचाई पर है। जहां एक मनुष्य से प्रेम करते हुए अपने प्रेमी की खुशी की खातिर उसका प्रेम एक व्यापक रूप लेकर सबका हो जाता है और एक ईश्वरीय उदात्तता को प्राप्त हो जाता है। मारिया की इच्छा का मान करते हुए खुद को लोगों की सेवा में अर्पण कर देता है। तब मारिया के लिए क्या कहूँ जो दूसरों के दुख से विचलित होकर अपना जीवन ही दूसरों के लिए समर्पित कर देती है। उसके द्वारा बड़ी आंटी की याद में स्थापित कृष्णजी की भव्य मूर्ति के आगे सिर नवाकर खड़ी हो गई बस।

और मालविका...

उपन्यास का केंद्रीय पात्र। जो सबका कल्याण करते हुए, सबसे प्रेम करते हुए, सबके प्रति अपने कर्तव्यों को पूरी निष्ठा से निभाने वाला एक विशुद्ध राजस्थानी, परम्परागत भारतीय स्त्री पात्र होने के बाद भी थोथी मान्यताओं से कोसों दूर है। सड़े-गले रीति-रिवाजों से परे है। जीवन के प्रति जिसमें अदम्य जिजीविषा है। प्रेम है जीवन से उसे। उसमें समाज की परम्परागत धारा के ही नहीं अपने मन में प्रारम्भ से ही भर दी गई मान्यताओं के विरुद्ध जाने का भी साहस है। वह सिर्फ समाज से ही नहीं, वरन अपने आपसे लड़ने की ताकत भी रखती है। तभी वह जिम को पूरे मन से स्वीकार करके न सिर्फ अपने अतीत को पोंछ देती है, बल्कि जीवन को जिम के साथ सुखद रूप से आगे भी बढ़ाती है। प्रेम का दिव्य रूप यहाँ हम देखते हैं। भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को अपने रेशे-रेशे में रचा-बसाकर जीती एक स्त्री के लिए इन रेशों को अपने रक्त-मज्जा में से निकाल फेंकना कितना दुरूह रहा होगा। उसकी आत्मा कितनी लहूलुहान हुई होगी, लेकिन मालविका ने जीवन को सर्वोपरि रखा और इसके पार हो गई। ओह मालविका तुम्हारी आँखों में प्रेम के उस दिव्य दीप के उजास की परछाई देखी है मैंने जो कृष्ण के लिए राधा की आंखों में बलते हैं। तुम्हारा प्रेम शुद्ध सात्विक प्रेम है, बाबा के साथ भी, जिम के साथ भी। रत्ती भर कलुष की छाया नहीं है उसमें। जो तुम्हारे भीतर की इस लौ को देख पाएगा वही उजास से भर जाएगा।

तुम्हारी ही लौ लेकर पायल ने अपने रास्तों में आने वाली अंधेरों की परछाइयों को दूर किया। तुममें जो साहस भीतर से भरा हुआ था वही पायल में मुखर हुआ है। वह दोनों ही सूरतों में तुम्हारी ही उत्तराधिकारी है। संपत्ति की भी, साहस की भी। बस प्रेम करने, विश्वास करने का साहस जो तुममें था वो पायल तुमसे विरासत में नहीं पा सकी वरना अंत में इतनी एकाकी न रह गई होती। जबकि बाबा, पिता, अजय सभी पुरुषों ने तो उसकी इच्छाएँ पूरी करने में हमेशा अपनी सहमति ही दी फिर क्यों...फिर क्यों सब पुरुषों को कटघरे में खड़ा करके एकाकी जीवन की डगर चुन ली। जिम का अपार स्नेह, बलिदान भी तुम्हारी सोच को बदल नहीं सका।

उपन्यास खत्म होने के बाद भी मन बाहर नहीं आ सका। उसी के प्रभाव में रहा। कभी मालविका की शिमला वाली कोठी में जिम के कंधे पर सर रखकर बैठा रहा, कभी पायल के साथ इटली की गलियों में मिहिर सँग घूमता रहा। कभी अजय को डायरी में कुछ लिखते देखता रहा तो कभी संध्या को बग्घी में बैठ कॉलेज जाते विदा करता।

सन्तोषजी की लेखनी का जादू इस उपन्यास में मन पर हावी हो जाता है और पाठक उपन्यास की गिरफ्त से छूट ही नहीं पाता। यह एक कहानी भर नहीं है, यह एक जीवन है जो पाठक जीता चला जाता है और यही इस उपन्यास की सफलता है। भारत की आजादी के समय का एक कालखंड है, दस्तावेज है कि आजादी मात्र अहिंसा से नहीं मिली है उसके लिए लाखों लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी है और उनका योगदान सदैव सर्वोपरि था और रहेगा।

संवेदनीयता को नुकीलापन देती लघुकथाएँ मुस्कुराती चोट

बी.एल.आच्छा

संतोष श्रीवास्तव की कतिपय लघुकथाओं से साक्षात्कार समाजशास्त्र के कई पन्नों को दृश्यात्मक बनाता है। कहीं मामूली सा जीवन जीती कामवाली का चमकदार हौसला है। कहीं पुरानी प्रथाओं के नए-नए अर्थ खोजने वाला पत्नीत्व है तो कहीं सांसारिक मोहमाया में आसक्ति-अनासक्ति के द्वंद्व का फलसफा है। कहीं दांपत्य जीवन में सांवले-गोरे के सौंदर्य बोध का अतिक्रमण करता जीवन व्यवहारों का सौंदर्य है। कहीं परिवार का पेट पालने के चक्कर में अपनी अस्मिता को ठेस पहुंचाती विवशता का दर्द है।

कहीं सांप्रदायिक नजरिए में अपना-पराया करती मजहबी मानसिकता का त्रासद परिदृश्य है। कहीं तीन तलाक की क़ानूनी लड़ाईयों में सिसकता दांपत्य है। कहीं प्रेम के अवांछित प्रसंगों में नारी को ही लांछित करती पुरुष सामाजिकता का दंश है। नए तकनीकी आविष्कारों की रोबोट संस्कृति के समानांतर पति संचालित पत्नी की रोबोटी जैविकता है। कहीं अपने ही भ्रष्ट कृत्यों से अपने ही खून की मौत की शोकांतिका है और भी कितने ही कोण होंगे इस संग्रह की लघुकथाओं के।

समकालीन जीवन, अच्छे-बुरे, संगत-विसंगत, पुराने नए जैविक-तकनीकी स्पर्शों अंतर्द्वंद्वों की मनःस्थितियों जीविका के संघर्षों को नुकीले अंत से बेधते होंगे।

“मंगलसूत्र” यूं तो स्त्री के दांपत्य और सौभाग्य का पारंपरिक प्रतीक है। पर वही निम्नवर्गीय मंदा के जीवन की चुभन है। झोंपड़ी में दारू पियेला पति की मार और घरों में काम करने वाली बाई की तरह मिलने वाली मजदूरी से मंदा इतनी त्रस्त है कि मंगलसूत्र की चुभन पति के मरते ही स्वाभिमान में सुखांत बन जाती है।

जीवन की रोजमर्रा त्रासदी मंगलसूत्र बिक जाने के बाद इस मर्मान्तिक फुसफुसाहट में व्यक्त होती है—

“भौत चुभता था ताई।”

यही मंगलसूत्र प्रतीक है पारंपरिक दांपत्य का और यही चरमांत में त्रासद जीवन की दासता से मुक्ति का भी।

लेखिका ने मंदा के अति निम्नवर्गीय कामकाजी चरित्र में भी अस्मिता और मातृत्व के परिश्रम की कमाई और स्वाभिमान के गुण इस तरह उगाए हैं कि वह समाज सेविका मनोरमा की नजरों में भी बड़ी बन गई है। बड़े सेठ द्वारा फैक्ट्री में काम और भेजी गई मदद को भी वह विनम्रता से इंकार कर देती है और घरों में काम से मिलने वाली कमाई से ही घर चलाने की सामर्थ्य दिखाती है।

बनावट भी बेहतर है लघुकथा की, क्योंकि मंदा में मातृत्व और बच्चों के सुख का ख्याल भी बहुत गहरा है। पति की दारू खची की बचत और मंगलसूत्र बेचकर बच्चों की वर्षों से दबी इच्छाओं की पूर्ति उसके वात्सल्य को स्पर्शिल बना देती है। परिवेश की बुनावट उस लघुकथा को कितना यथार्थ रूप देती है!

मुंबईया हिंदी इन अनपढ़ पात्र की जबान पर चढ़कर मंदा की अंतड़ियों के दर्द को खासा उभार देती है। यों कथा गति में पेच है; सेठ द्वारा भेजी गई मदद और नौकरी के, पर एक निर्णायक सा भाव उस मामूली से पात्र में इस तरह चुना गया है कि मंदा का चरित्र और लघुकथा का चरमंत व्यंजक बन जाते हैं। शीर्षक और लघुकथा का अंत एक सुगठित विन्यास बन गए हैं।

“सती” लघुकथा शीर्षक से जितनी पुरानी लगती है उतने ही नए परिवेश में जीवन की सार्थकता का नया अंदाज। सतीत्व को नया अर्थ देने वाली इस लघुकथा में जीवन परक दायित्व को चरम मूल्य की प्रतिष्ठा मिली है। बीमार पति की सेवा में एक स्त्री भोगकाल के उन सभी सवालों को, डिजाइनर कपड़ों के प्रदर्शनी अंदाज को, मॉल की चहलकदमियों को, गहनों के आकर्षण-प्रदर्शन और भविष्य की चिंता किए बगैर बैंक अकाउंट को शून्य पर लाकर त्याग की प्रतिमूर्ति बन जाती है। भोगकाल की सहेलियां उसके दुख-दर्द में सहायक न बनकर इस परिस्थिति

में पिज्जा-बर्गर के स्वाद और मॉल थिएटर की मस्ती का बखान फोन पर करती हैं। लघुकथा को पति की तेरहवीं की शोकांतिका के परिदृश्य में बुना गया है।

रिश्तेदारों की मौखिक तसल्लियों के बीच लेखिका ने दो विरोधी रंगों वाले परिदृश्य को चुना है। जहां सुखान्तिका के समय के स्वाद, मॉल थिएटर हैं। पर दुखांततरी में इन सब पर कसावदार नियंत्रण पति सेवा को भी जीवन मूल्य बना देता है। सखियों की लपलपाती स्वादु जबानें भी उसे भटकाती नहीं है। बल्कि सब कुछ स्वाहा करके भी वर्षों तक

पति की सेवा ही चरम बन जाती है। लेखिका इस चरम को लघुकथा की पंच लाइन बना देती है नए अर्थ भरकर। डॉक्टर कहता है—

"आप तो सती हैं, केवल पति के साथ चिता में जलने से ही सती नहीं होती।" विरोधी परिदृश्यों की योजना, सहेलियों-रिश्तेदारों की अन्यमनस्कता, अपने ही जीवन की सुखद-दुखद अनुभूतियों का विन्यास इस लघुकथा को सपाट नहीं होने देता। निश्चय ही मूल्यपरक है यह लघुकथा।

"भेंटक्वार्टर" अपने घर के प्रति आसक्ति-अनासक्ति का द्वंद्व है। वृद्धावस्था में अपने घर के प्रति मोह इस कदर हावी है सत्संगी महिला में कि वह इसी फिक्र में है कि उसके मरने के बाद रघु द्वारा दिलाया गया घर धार्मिक संस्थान का हो जाएगा। ईंट-ईंट से मोह मगर शर्त यही कि कोई सत्संगी ही वहां रहकर मकान मालिक बन-बना रह सकता है।

लेखिका ने इस वृद्ध सत्संगी महिला की बीमारी, उसकी सांसों के उतार-चढ़ाव, जिंदगी की घटती हुई प्रत्याशा का दृश्य इस तरह बुना है कि घर के प्रति आसक्ति बढ़ती चली जाती है।

पर कोई सत्संगी वारिस नहीं है। बड़ी मुश्किल से खरीदे घर की, मगर उसे धार्मिक संस्थान को देने में यही मोह रेशा रेशा काबिज है, लेकिन कथागति और अंतर्द्वंद्व तब नया मोड़ लेते हैं जब नाटक का विजुअल संदेश वृद्धावस्था की गिनी हुई सांसों में इस तरह घुल जाता है कि यही वृद्ध नारी सर्वथा अनासक्त होकर घर का दान करने के लिए सहयोगी को ट्रस्ट ऑफिस में फॉर्म भरवा कर दान करने के लिए कहती है। कथानक में यही द्वंद्व का भंवर फलसफे की तरह बुना गया है। सत्संगी और निरुपाय मन भी कितना अनासक्त। मगर जब कोई प्रेरक मिल जाता है तो अनासक्ति कुलांचे भरती है त्याग के लिए।

"असली आनंद" लघुकथा देह सौंदर्य और व्यवहार सौंदर्य के समांतर अनुभव से उपजा विवेक है। फ्लैशबैक की तरह चौंकाने वाली यह लघुकथा इस वाक्य से शुरू होकर कौतूहल पैदा करती है।

माँ मुझे वन्दना पसंद है। दरअसल सांवले रंग की हीन भावना और गौर वर्ण की सौन्दर्य ग्रंथि जब लॉकडाउन की व्यवस्था में व्यवहार की आत्मीयता से साक्षात्कार करती है तो सांवलेपन की ग्रंथि हवा हो जाती है युवक में। अपनी माँ को पहली नजर में वन्दना को नापसंद करने वाला युवा कुछ दिन बाद यकायक अपनी माँ को वन्दना को पसंद करने के लिए फोन करता है।

इससे न केवल माँ को आश्चर्य होता है बल्कि संस्कार और शालीनता का सौंदर्यशास्त्र सांवले रंग पर अतिक्रमण कर जाता है। देह के सौंदर्य की तुलना में संस्कारों का सौंदर्य न केवल अंतरंग है, बल्कि दांपत्य के भविष्य की चांदनी भी। अलबत्ता यह संयोग ही था लॉकडाउन में व्यवहार में झांकने का। पर संदेश तो है ही कि देह रंग ही प्रेम का प्रतिमान नहीं।

व्यवहार और संवाद के शालीन रंग देहरंग की तुलना में अधिक आकर्षक एवं व्यक्तित्व प्रदर्शक होते हैं। दांपत्य के उजले रंग व्यवहार में लंबायमान रहते हैं। युवक-युवती के बीच के संवादों से यह लघुकथा आकर्षण को उपजाती है और उसका संक्रमण युवक का नजरिया ही बदल देता है। मनोग्रन्थि और व्यक्तित्व के आंतरिक गुणों को खोलने में यह लघुकथा प्रभावी है।

"चिता" का कथानक तो सामान्य है पर उसके भीतर व्यवस्था के रंग जरूर हैं। बड़ी सेठानी की बीमारी में हवेली में मालिश करने आने वाली बाई सेठ के बदरंगों को सहन करती रहती है। सिर्फ इसलिए कि चार बच्चों का पेट पालने के लिए उसके आदमी की आय अपर्याप्त है लेकिन सेठानी के मरने के बाद उसकी चिंता काम छूट जाने की है। लघुकथा का शीर्षक इस मायने में बहुत व्यंजक है। एक तरफ सेठानी की चिता जल रही है। दूसरी तरफ मालिश वाली जीवित ही आर्थिक चिंता में जल रही है। अलबत्ता इस लघुकथा का अंत भी आर्थिक व्यवस्था की चिंता के ताप में तब लपट सा बन जाता है जब सारे परिदृश्य पर चौकस नजर रखने वाली छोटी सेठानी उसे घर की सीढ़ियों पर ही रोक कर कहती है—

"अपने घर जा। अम्माजी रही नहीं तो तेरा यहां क्या काम।"

विवशता में चारित्रिक स्खलन और सारे कारनामों पर सांकेतिक पर्दा डालने का चातुर्य इस लघुकथा को व्यंजक बना देता है।

"काला इतवार" लघुकथा की जमीन मजहबी रंगों में खून से सनी है। हिंदुओं में हिंदू नाम और मुस्लिमों में मुस्लिम नाम से गाना गाते हुए भीख मांगने वाला अहमद आखिरकार सारे सांप्रदायिक हो-हल्ले में अपनी ही जात वाले से मार दिया जाता है पराई जात का समझ कर। पेट के लिए भीख मजहब नहीं देखती पर मजहबी रंग पेट की भूख को कहाँ समझ पाते हैं।

संवादी शैली में रची इस लघुकथा में आवेश है, तकरार है, मजहबी भाषा के ख़ौलते तेवर हैं, मारकाट की धार है, नफरतों की झन्नाहट है और अंत भी चौंकाने वाला। संदेश यही कि नफरतों की चाकुई धारें अपनों को ही चीर देती हैं। अशोक हो या अहमद आखिर खून तो इंसानी है, और वह भी निहत्थे भिखारी बालक का।

पेट भरने के लिए निकला युवा संगीत की थाप से ही कुछ बटोर लेता है पेट के लिए, लेकिन मजहबी रंग अपने ही पेट को चाकू दिखा जाते हैं कत्ल के काले इतवार में। शिल्प और संवेदना में यह लघुकथा प्रभावी है। इंसानियत के दर्जे को घटाकर मजहबी हैवानियत पर प्रहार करने के लिए। शीर्षकों के चयन में लेखिका बहुत चौकस है।

"तीस साल बाद" लघुकथा तीन तलाक पर केंद्रित है। जुबेदा के अब्बा और अम्मा 30 साल तक कानूनी पेंच लड़ाते रहे सिर्फ इसलिए कि लड़की पैदा हुई थी। वही लड़की जुबेदा 30 साल तक अम्मी की लड़ाई को संगठन और कानून से लड़ती रही। जब जीत हुई तो अम्मा के मुंह में मिठाई का टुकड़ा रख दिया। एक सधे हुए वाक्य ने तीस साल की तकलीफदेह यात्रा को इस तरह रख दिया कि मिठाई का टुकड़ा अम्मा के मुंह में तकलीफदेह अतीत सहित घुलने लगा। लघुकथा यों तो सामान्य है पर उसके अंतिम वाक्य में एक रासायनिक अनुभूति लघुकथा को संवेदनीय बना देती है।

"पर्दा गिर चुका था" लघुकथा पति-पत्नी और प्रेमी के त्रिकोण की है। प्रेमी की हत्या कर दी गई पर समस्या सामाजिक मनोविज्ञान की है। पति द्वारा पत्नी के प्रेमी राहुल की हत्या पर न राहुल के लिए उंगली उठती है न हत्या के लिए पति पर। उठती हुई सामाजिक उंगलियां यही कहती हैं—

"हद है ब्याहता को यह सब क्या शोभा देता है।"

न राहुल के लिए शोक न हत्यारे पति पर कोई तंज।

हत्या और उम्रकैद या फांसी के बीच एक नारी की कातर मनःस्थिति है। सामाजिक नजरों में लांछनों को सहने और जूझने की।

लेखिका ने पुरुषवादी समाज के चरित्र को जितना लक्षित किया है उतना ही पुरुषवादी समाज द्वारा नारी के चरित्र की मर्यादाओं को गढ़ने की एकांतिक मनोवृत्ति को भी। नारी के अंतःस्थल में एक उदास कारुणिक-सी व्यथा की लहरों का काव्यात्मक स्पर्श देकर इस लघुकथा को भाव संवेदी बना दिया है।

"रोबोट" की जमीन टेक्निक और ह्यूमन टच की है। अमेरिका से लौटा पति जिस शान से होटलों में रोबोट सेवा का चित्र खींचता है वह पत्नी के लिए करिश्माई है। कस्टमाइज्ड टेबल कुसी कंप्यूटर लॉग, रोबोटिक सरवर और 74 लाख में मशीनी सेवक। पर यही पति भारत में खाना खाते हुए पत्नी से कहता है, "यार पापड़ और हरी मिर्च भी लाओ न।"

लिहाजा बिन लागत खर्च की यह पत्नी ही जीवित रोबोट है। सारे आदेशों का प्रफुल्ल मनोभावों के स्पर्श के साथ पालन के लिए। रोबोट कथा का मशीनी अंदाज और पति का पत्नी के लिए आदेशात्मक सा अंदाज लघुकथा का चरमांत है। बहुत सधे हुए तरीके और बॉडी लैंग्वेज के साथ मनोभावों को जोड़ देने के कौशल से प्रभावी बन जाता है। जाती हुई पत्नी को देख उस ने पलकें झपकाईं।

"मिलावट का जहर'' अवसाद की मनोव्यथा है पर भ्रष्टाचार में अपने ही पुत्र को खो देने की व्यथा इसे संघनित कर देती है। सीमेंट की मिलावट से बने नदी के पुल के ढह जाने से छह लोगों की मृत्यु कसक नहीं बन पाती। महज खबर बन जाती है।

अलबत्ता जांच और मुकदमे बाजी के साथ सजा के विचार फड़फड़ाने लगते हैं, लेकिन थाने से आई फ़ोन की घंटी रोम-रोम में बजती है। आपके बेटे रोहित की बाइक पुल टूटने से दुर्घटनाग्रस्त हो गयी। मौके पर ही रोहित की मृत्यु हो गई। यह फोन की घंटी ही वातावरण और व्यथा को इतना गहरा कर देती है कि जीत के सिवा कुछ बचता नहीं। लघुकथा की बुनावट में इस कारुणिक दृश्य को संजोने की विजुअल भाषा है।

संतोषजी की लघुकथाएं बिन कथानक के नहीं आतीं इसलिए 'मोड़ के वक्रिल पंथ' और 'बाहर भीतर के द्वंद्व' यथार्थ एवं मनोविज्ञान को अनदेखा नहीं करतीं। कुत्सित यथार्थ भी आ जाए पर दिशा तो मूल्यपरक ही रहती है। जिस परिवेश को वे छूती हैं, उस परिवेश की बोली, भूगोल को सदैव हिलगाय रखने के कारण वे सहज और स्पर्शिल बन जाती हैं।

अनावश्यक पंच लाइनों के चमत्कार की अपेक्षा वे लघुकथाओं को उस शीर्ष तक पहुंचाकर कोई वाक्य जरूर जड़ देती हैं जो लघुकथाओं की संवेदनीयता को नुकीलापन दे सके। संवादों के जरिए कथा विन्यास को जीवंत और चरित्रों के भीतर झांकने का कौशल भी इन लघुकथाओं की विशिष्टता बन जाता है। ये लघुकथाएं सपाटपन से, अनावश्यक उलझाव से कथानकीय पेंचों से मुक्त हैं इसीलिए इनके संदेश और संवेदनाएं संप्रेषणीय हैं।

लघुकथा

स्तुतिगान

प्रतिभा सिंह

कैलाश जी अपने दूसरे बेटे की शादी का कार्ड देने आये थे। बड़ी आत्मीयता से राजेश जी ने उन्हें बैठाया। इस बार वो कुछ बदले-बदले से दिखे।

उनको पता था कि कैलाश जी का बड़ा बेटा कोई अच्छी प्राईवेट नौकरी कर रहा है। उत्सुकतावश उन्होंने दूसरे बेटे के बारे में पूछा, बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि वो तपाक से बोले, जैसे उन्हें इसी प्रश्न का इंतजार था अजी वो तो डी.एम. हो गया जिला का! राजेश जी ने खुशी जताई और बधाई भी दी। फिर वो लगे गौरव गाथा सुनाने। जैसे-जैसे वो बोलते गये उनके हाव-भाव में एक प्रशासनिक तेवर दिखाई देने लगा। ऐसा लगा मानो बेटे की जगह वही जिलाधीश हो गये हों। राजेश जी सुनते रहे और इंतजार करते रहे कि वो शादी में आने का विशेष आग्रह करेंगें पर शायद भूल गये कि वो निमंत्रण देने आये थे, वो महाशय तो बेटे की स्तुति गान करते हुए निकल गए।

सुखमय मृत्यु अथवा यूथेनेसिया

पूजा अनिल

5 जून, 2019 को मात्र सत्रह साल की नोआ पोथोवेन ने हॉलेंड में इच्छा मृत्यु को चुन लिया, लेकिन वह आत्महत्या नहीं थी। उसकी और डॉक्टर की रज़ामंदी से, डॉक्टर्स की सहायता द्वारा उसे बाक़ायदा एक सुखमय मृत्यु प्रदान की गई। क्या हुआ था ऐसा कि इतनी छोटी उम्र में जब उसके सपने देखने के दिन थे, उसने आसान मृत्यु की राह चुनी? गहरे मानसिक अवसाद में थी वह। क्यों थी मानसिक अवसाद में? क्योंकि छोटी उम्र में ही उसके साथ दुष्कर्म किया गया और इस तरह इस दुनिया से उसका मोह भंग हो गया। मोह भंग होते ही उसने जीवन से दूर होने की यानी इच्छा मृत्यु की अपनी चेष्टा प्रकट की। तो क्या इच्छा मृत्यु आत्महत्या से अलग है? हाँ जी, बिलकुल अलग है।

जीवन में प्रवेश के उपरान्त हर एक व्यक्ति के लिए मृत्यु का समय नियत है, तो क्या उस समय के आने से पूर्व ही मृत्यु का चुनाव आपका लीगल अधिकार है।

तो जान लीजिए कि हाँ, दुनिया के कुछ देश यूथेनेसिया को मानवाधिकार के अंतर्गत स्वीकार कर चुके हैं।

आप अवश्य जानना चाहेंगे कि क्या होता है यूथेनेसिया? सरल शब्दों में कहें तो यह मानव द्वारा स्वेच्छा से चुनी हुई सुखकर मृत्यु है। खासतौर पर जब वह पीड़ा और सन्ताप से थक चुका हो और अपने कष्ट से छुटकारा पाना चाहता हो।

अब हम जानना चाहते हैं कि कहाँ से आया है यह शब्द? तो खोज करने पर पता चला कि ग्रीक भाषा के शब्द 'यूथेनेटस' का अर्थ है आसान मृत्यु।

सवाल उठता है कि आसान अथवा सुखमय मृत्यु की आवश्यकता ही क्यों है? डॉक्टर्स का कहना है कि ऐसे रोगी जो मरणासन्न हैं अथवा स्थावर जीवन (वेजटेटिव एक्सिस्टेंस) जीने हेतु मशीन पर निर्भर करते हैं, उनके लिए कानूनन ऐसी व्यवस्था की गई है कि यदि वे अपनी इच्छा से मरना चाहते हैं तो वे अथवा उनके परिजन उनके चिकित्सक के सम्मुख इच्छा मृत्यु का आवेदन कर सकते हैं। उनकी वेदना से मुक्ति हेतु इस तरह की मृत्यु को अनेक देशों में मान्यता प्राप्त है, जिसका निर्णय पूर्ण तौर पर रोगी, रोगी का परिवार और रोगी का इलाज कर रहे डॉक्टर और कोर्ट की सहमति से किया जाता है। भारत में भी इस तरह की निष्क्रिय यूथेनेसिया को विधिसम्मत स्वीकृत किया जाता है जिसमें वेदनाग्रस्त रोगी का लाइफ सपोर्ट सिस्टम हटा कर सुखमय मृत्यु प्रदान की जाए। इसमें बच्चे और बुजुर्ग भी शामिल हैं। जो अपना निर्णय लेने में स्वयं सक्षम नहीं होते उनके परिवार, न्यायालय और चिकित्सक द्वारा निर्णय लेना मान्य है। लेकिन उन्हें यूथेनेसिया के बारे में अवगत अवश्य किया जाता है ताकि वे अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने का आसान रास्ता जान सकें। जो रोगी मरणासन्न अवस्था में जी कर यातना भुगत रहे हों संभवतः उनके लिए एक तरह से मुक्ति पथ है यह।

यह तो हुई ऐसे केसेस की बात जो अत्यंत पीड़ा के चलते शरीर से मुक्त हो जाने हेतु बाध्य हैं, लेकिन दूसरी तरफ ऐसे भी केसेस हैं जो मानसिक पीड़ा के चलते अवसाद में डूबे हुए हैं। मानसिक पीड़ा शारीरिक पीड़ा की तरह दृष्टिगोचर नहीं होती। ना ही मानसिक रोग का उपचार शारीरिक रोग की तरह आसान होता है। सर्वप्रथम तो मानसिक रोग पकड़ में ही नहीं आता, उस पर यदि किसी ने खोज भी लिया तो रोग का कारण पता नहीं चलता, कारण ही पता नहीं तो निवारण दुष्कर हो जाता है। ऐसे में रोगी अपने आप में ही यातना भोगता रहता है। किसी का हाथ

या पाँव टूट जाए तो एक बार तो कृत्रिम हाथ या पाँव लगाने के विचार कर सकते हैं, ट्रांसप्लांटेशन से गुर्दा, फेफड़े और हृदय तक बदला जा सकता है, लेकिन अब तक ऐसी कोई चिकित्सकीय सुविधा नहीं जिससे मन अथवा मस्तिष्क बदल कर कोई नया मस्तिष्क लगाया जा सके! अवसादग्रस्त व्यक्ति सर्वप्रथम अपने जीवन से दूर होने का ही विचार करते हैं। उनके इस विचार को मूर्त रूप देने में सहायक है यूथेनेसिया या सुखमय मृत्यु। यूथेनेसिया अधिकृत देशों में कोई भी मानसिक पीड़ित व्यक्ति यदि आत्महत्या करने की बजाय यह रास्ता चुनता है तो न्यायिक व्यवस्था उसके साथ है।

किसी की बलपूर्वक हत्या की जाए अथवा किसी को सहमति से मरने के लिए छोड़ दिया जाए? यह प्रश्न यक्ष प्रश्न की तरह गंभीर है क्योंकि कहीं तो, कुछ तो, हमारी नैतिक जिम्मेदारी होनी चाहिए इस विचार में!

दुनिया में कुछ देश हैं जो अधिकृत तौर पर सुखमय मृत्यु का अनुमोदन करते हैं और उन देशों में इस तरह की मृत्यु हेतु वहां के निवासी आवेदन करके अपने जीवन से मुक्त हो सकते हैं। नीदरलैंड (हॉलैण्ड), बेल्जियम, कोलंबिया और लक्सेमबर्ग में मानव यूथेनेसिया अधिकृत तौर पर स्वीकृत है। स्विट्ज़रलैंड, जर्मनी, जापान, कनाडा और अमेरिका के कुछ राज्यों (कैलिफ़ोर्निया, ऑरेगोन, मोन्टाना, वॉशिंगटन और वेरमोंट) में सहायतापूर्वक आत्महत्या विधिसम्मत है। मेर्सी किलिंग लॉ, सुखकर मृत्यु कानून, सम्मानजनक मृत्यु कानून, गौरवपूर्ण मृत्यु कानून आदि विभिन्न नामों से बने कानून इन देशों में रोगी को पीड़ा से उबारने हेतु मृत्यु चुनने में सहायता करते हैं।

आइए अब जानते हैं ऐसे देश जहाँ यह प्रक्रिया न्याय विरुद्ध है। स्वीडन और अमेरिका सहित ऐसे देशों में भारत भी शामिल है जहाँ सक्रिय सुखमय मृत्यु ग़ैरकानूनी है। ऑस्ट्रेलिया, फ़िनलैंड, आयरलैंड, लाटविया, लिथुआनिया, न्यूज़ीलैंड, मेक्सिको, नॉर्वे, फिलीपीन्स, टर्की, ब्रिटेन आदि देशों में यूथेनेसिया पूर्णतः ग़ैरक़ानूनी है।

किसी देश में इसे सुखमय मृत्यु कहा गया है कहीं चिकित्सकीय देख-रेख में मृत्यु, तो कहीं गौरवपूर्ण मृत्यु कह कर इसे स्वीकार किया गया है। चाहे किसी भी नाम से पुकारा जाए, किन्तु है तो यह मृत्यु ही। यदि आपका मरने का इरादा मजबूत है तो इस दुनिया में आपके लिए इच्छामृत्यु के अनेक रास्ते खुले हैं। कोई ज़रूरी नहीं कि आत्महत्या करके आप अपने आप को धार्मिक आस्था के ख़िलाफ़ पाप का भागी बनायें या विधिक नियमों के विरुद्ध जाकर क़ानूनन मुजरिम बन जाएँ।

बल्कि आधिकारिक तौर पर आपके लिए इस दुनिया के कुछ मेडिकल क्लीनिक्स में दरवाजे खुले हैं, जहां आप जाएँ और उनसे कहिए कि अब आपकी जीने की सभी तमन्नाएँ समाप्त हो चुकी हैं और इस दुनिया में ज़िंदा रहने के लिए आपके पास कोई ठोस वजह नहीं।

कहिए उनसे कि आप इस कदर अवसादग्रस्त हैं कि दुनिया की कोई भी चीज़ आपको इस अवसाद से बाहर लाने में नाकाबिल है।

उनसे कहिए कि दुनिया का कोई डॉक्टर आपको इस गहरे अवसाद से बाहर लाने में सक्षम नहीं है, लेकिन इच्छामृत्यु के लिए आपका जीवन छीन लेने में अवश्य सक्षम है! कैसी तो विडंबना है कि जिन डॉक्टर को हम हमेशा जीवन रक्षक मानते आये हैं अब उसी के पास मानव अपनी सुखमय मृत्यु हेतु याचना करने पहुँचने लगा है! जीवन रक्षक के आगे जीवन छीन लेने का निवेदन करना निश्चित ही उनके हृदय को आघात पहुँचाने जैसा होगा! मैं विश्वास करती हूँ कि आप कदापि मृत्यु का यह तरीका नहीं चुनेंगे।

डॉ. संजीव कुमार, कानून के गलियारों से साहित्य के आंगन तक एक जाना-पहचाना नाम

प्रभात गोस्वामी

ऐसा अद्‌भुत संयोग मिलता ज़रूर है, पर बहुत कम। कोई इंसान कानून की मोटी किताबों से जुड़कर भी साहित्य के आँगन में कुछ न कुछ रचता हो। दोनों विषय अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं, संवेदनशील हैं। एक तरफ सबूतों के आधार पर किताबों में लिखे कानून को मानने की बाध्यता और दूसरी ओर स्वतंत्रता से विचरण करता मन, हर रेखा को लांघता हुआ, इधर-उधर विचरण करता। ऐसा सामंजस्य देखने का अवसर मुझे मिला डॉ. संजीव कुमार के व्यक्तित्व में। पेशे से कानून के जानकर, मुखर अधिवक्ता और मन से कवि, आलोचक, संपादक।

संजीवजी से पहली मुलाक़ात 'आभासी मंच व्यंग्य यात्रा' अब '21वीं सदी के साहित्यकार समूह' माध्यम से हुई तब इतना भर पता था कि आप एक प्रकाशक हैं इंडिया नेटबुक्स के सर्वेसर्वा। फिर मुलाकातों, बातों का सिलसिला शुरू हुआ तो आपके व्यक्तित्व की परतें खुलती गईं डॉ. संजीव कुमार कॉर्पोरेट जगत में कानूनविद। उच्चतम न्यायालय के एक मुखर अधिवक्ता डॉ. संजीव कुमार एक संवेदनशील कवि, बाल साहित्यकार, आलोचक और संपादक और सहृदय इंसान। ऐसा बड़ा और सुखद संयोग विरलों में ही मिलता है।

उनका एक अक्श और दिखाई पड़ता है। एक सजग प्रकाशक इंडिया नेटबुक्स के माध्यम से अच्छे साहित्य, साहित्य के मनीषियों के साथ आने वाले कल के हस्ताक्षरों को पहचान देने का कार्य कर रहे हैं। बहुत कम समय में आपने प्रकाशन समूह को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। इस कार्य, या कहूँ संजीवजी के व्यक्तित्व को उभारने में शिक्षिका, साहित्य साधिका, दूरगामी सोच रखने वाली जीवन संगिनी डॉ. मनोरमाजी का योगदान भी भुलाया नहीं जा सकता।

डॉ. संजीव कुमार ने मेरा दूसरा व्यंग्य-संग्रह 'चुगली की गुगली', प्रकाशित किया। कोई धनराशि नहीं ली। समकालीन व्यंग्यकार, कवि भाई लालित्य ललित के आग्रह पर दिल्ली के प्रेस क्लब में उसका लोकार्पण भी करवाया। जिसका सारा व्यय भी उन्होंने उठाया। मेरे जैसे लेखक के लिए उनका यह स्नेह अभिभूत करने वाला था। आज भी उनसे निरंतर संपर्क बना हुआ है। एक बार उन्होंने मेरा लम्बा साक्षात्कार भी अपने यूट्यूब चैनल पर किया। यह स्पष्ट करता है कि उनकी एक नज़र जहाँ साहित्यिक क्षेत्र के मनीषियों पर टिकी रहती है। वहीं दूसरी नज़र वह नए लेखकों पर भी रखते हैं।

डॉ. संजीव कुमार मन से कवि हैं। उनके काव्य-संग्रह 'ऋतंभरा' से लेकर 'आज की मधुशाला', तक उनके काव्य की सुदीर्घ यात्रा को दर्शाते हैं। काव्य में सौन्दर्य, प्रतीकों, बिम्बों के साथ उनकी कविताएँ, गीत, मुक्त छंद मन की गहराइयों को छूते हैं। कश्मीर के हालातों पर उनका काव्य-संग्रह झकझोरता है। कानून के विविध विषयों पर 36 पुस्तकें, हिंदी साहित्य की 102 किताबें, बाल साहित्य पर दस पुस्तकें और भी अनेक हिंदी-अंग्रेज़ी में उनका विशाल रचना संसार है। आप गिनते और पढ़ते थक जाएँगे। आपके लेखन का कौशल सब देख रहे हैं 'अनुस्वार', साहित्यिक पत्रिका का संपादन से पूर्व आपने अनेक पत्रिकाओं, पुस्तकों का संपादन भी किया।

साहित्यश्री, जीवन प्रकाश जोशी सम्मान से लेकर एक लम्बी फेहरिस्त है। जो यह दर्शाती है कि डॉ. संजीव कुमार ने जिस क्षेत्र में कार्य किया मन से, समर्पण से किया। उनकी प्रतिबद्धता का इससे बड़ा उदाहरण कोई दूसरा नहीं हो सकता। किसी एक व्यक्ति में गुणों की खान देखनी हो तो डॉ. संजीव कुमार से मिलिएगा ज़रूर।

‘कोणार्क’ : रागात्मक अभिव्यंजना का अश्म शिल्प

डॉ. पद्मा पाटिल

‘कोणार्क’ डॉ. संजीव कुमार की इंडिया नेटबुक्स, नोएडा (नई दिल्ली) द्वारा 2019 में प्रकाशित नई शैली में सृजित काव्य रचना है। कवि ने ‘कोणार्क’ रचना में 97 भावखंडों में अपने और महाराणा विशु के बीच के भावात्मक संवाद को निरूपित किया है। इक्कीसवीं शती का तीसरा दशक प्रवाहमय है। कविता विधा भी गतिशील है। आधुनिक काल की कविता अपने विकास के अनेक सोपानों से गुजरकर इक्कीसवीं शती में प्रवेश कर अभिव्यक्ति की नवीनता को सँजोए रखने में सफल हुई है। समकालीन कविता के अनेक कवियों ने बीसवीं शती में कविता की जमीन दृढ़ बना दी है। स्थितियाँ बदलती गयीं। मनुष्य का जीवन हर तरह से परिवर्तित हुआ। संवेदनाएं परिवर्तित होती गयी। सृजनशील मन में बहुविध विषय विन्यास करते रहते हैं। पुराख्यान, पौराणिक चरित्र, इतिहास, ऐतिहासिक चरित्र, घटनाए, मानव जीवन को झकझोर देनेवाले वर्तमानकालीन राजनीतिकए सामाजिकए सांस्कृतिक संदर्भ आदि अनेक ने साहित्यकारों के मन को सोचने के लिए बाध्य किया। डॉ. संजीव कुमार बहुआयामी व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं। उन्होंने भारतीय स्थापत्य कला का असाधारण नमूना ‘कोणार्क’ सूर्य मंदिर को केंद्र में रखकर कविता के माध्यम से इतिहास, प्रेम और अभिव्यक्ति पक्ष का रागात्मक संतुलन स्थापित किया है।

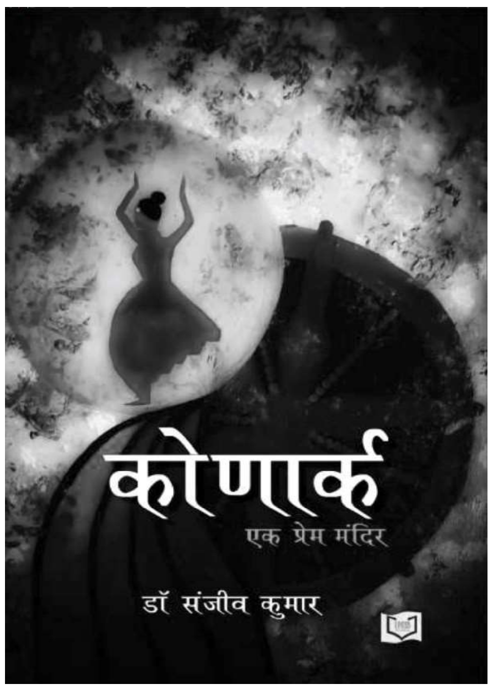

हम सभी हिंदी रचनाकर जगदीश चन्द्र माथुर की कोणार्क रचना से परिचित हैं। मराठी भाषा में लिखी एक रचना है, ‘कोणार्कचा कलाकार’ यरचना अनुपलब्ध और लेखक अज्ञात। बहुत वर्षों पूर्व इस रचना को बड़ी रुचि से पढ़ा था। इतिहास के प्रति निष्ठा और रुचि होने से ऐसी रचनाओं के प्रति एक अनोखा आकर्षण रहा। इसी कारण डॉ. संजीव कुमार की प्रस्तुत रचना के प्रति जिज्ञासा रही।

कविता भाव उद्वेलन का सशक्त माध्यम है। कवि ने आमुख में वर्तमान में कोणार्क पर लिखने के क्या कारण रहे हैं, इसके संकेत दिए हैं। कोणार्क के बारे में आमुख में उल्लेखित मुद्दे सामान्यतः हम सभी जानते हैं। कोणार्क मंदिर के निर्माण के पीछे अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक कथाएँ बतायी जाती हैं। संकेत कुछ भी हों, आज भी यह भव्य सूर्य मंदिर भग्नावशेषों के रूप में सही भारत के उड़ीसा राज्य के पुरी शहर में हैं। यह कलिंग शैली की भारतीय स्थापत्य-कला का सर्वश्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट उदाहरण है। इस मंदिर तथा उससे जुड़ी पौराणिक, ऐतिहासिक कथाएँ सभी के मन में जिज्ञासा का निर्माण तो करती ही हैं, साथ ही असाधारण आकर्षण भी। उसकी भव्यता से मन अचंभित हो जाता है। इसका निर्माण मनुष्यों द्वारा हुआ है पर विचार उठ खड़े होते हैं कि हम उसके सामने कितने छोटे हैं। हमेशा ऐसी कलाकृतियों ने कवि मन को पुकारा है, आकर्षित किया है, जिज्ञासा जागृत की है, और फिर सुंदर रचनाओं का सृजन हुआ है। फिर ये कलाकृतियाँ भारत की हों या विदेश स्थित हों। माइकेल एंजेलो, बर्निनी,

राफेल, लियोनार्दो द विंची—जैसे अनेक कलाकारों की कृतियाँ, शिल्प, भव्य इमारतें आदि के साथ इजिप्त के स्फिंक्स, इंग्लैंड का स्टोनहेंज, भारत और विदेशों में कलाकारों द्वारा निर्मित महात्मा बुद्ध आदि की मूर्तियों तथा शिल्पों ने साहित्यकारों को सृजन प्रेरणा दी है। उत्सुकता, जिज्ञासा हमेशा नवीन निर्मिति में सहायक रहती हैं। सृजनकर्ता या सृजनकत्री पुराख्यानों, इतिहास, उसके तथ्य आदि को कल्पना के साथ पिरोते हुए सुंदर कलाकृति का सृजन करता है या करती है जैसे उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता आदि। अभिव्यक्ति का माध्यम रचनाकार पर निर्भर होता है।

डॉ. संजीव कुमार ने 'कोणार्क' काव्यकृति के आमुख में कहा है कि उनके मन में भी कोणार्क मंदिर संबंधी के ऐतिहासिक, पौराणिक तथा स्थापत्यविषयक तथ्यों के प्रति जिज्ञासा रही। उनके मन में यह जान लेने की प्रबल इच्छा रही कि महाशिल्पी विशु द्वारा बारह-सौ वास्तुकारों की सहायता लेकर निर्माण किए कोणार्क के सूर्य मंदिर की स्थापत्य कला की पृष्ठभूमि में कौन-सी कल्पना ने स्थान पाया है। इसके साथ ही मंदिर में मैथुन मूर्तियों के निर्माण के पीछे भी कौनसे सूत्र रहे होंगे।

ऐसी जिज्ञासा को मन लिए डॉ. संजीव कुमार ने कोणार्क का वहाँ दो बार जाकर सूक्ष्म अवलोकन किया। सम्पूर्ण मंदिर तथा उसका परिसर जो सांप्रत भग्नावशेष स्वरूप खड़ा है, नजदीक से देखा। कवि मन अभिभूत हुआ। उसने जान लिया कि इसके निर्माण की पृष्ठभूमि में जो अप्रतिम शिल्पकला दिखाई देती है वह भाव, कल्पना, ज्ञानए अनुभव, चिंतन से परिपूर्ण है।

उस कवि मन ने कल्पना और स्वयं के अनुभव के परिणामस्वरूप 'कोणार्क' शीर्षक से नवीन शैली में काव्य सृजन किया। कवि ने मंदिर निर्माण के महाशिल्पी विशु य बिशुद्ध के साथ संवाद स्थापित किया एवं यथासंभव कोणार्क मंदिर के शिल्पविन्यास तथा उसके आयोजनसंबंधी विवेचन करने का प्रयास कविता के माध्यम से किया है। इस काव्य में कुल 97 खंड हैं। काव्यरचना कुल 97 पृष्ठों में बद्ध है। आमुख 6 पृष्ठ और शीर्षक पृष्ठ, प्रकाशक जानकारी, रचनाविषयक चार लयबद्ध पंक्तियाँ ऐसे शेष पृष्ठ, कुल 107 पृष्ठों की रचना। न तो एकदम लघु और न ही बहुत विस्तृत। रंजक, ज्ञानशमकए रागात्मक भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का अनुकूल प्रयोग।

डॉ. संजीव कुमार भव्य अश्म शिल्प कोणार्क के सूर्यमंदिर की रागात्मक अभिव्यंजना करने में सफल हुए हैं।

कहाँ शिला खंडों में मिलता
इतना सुंदर जीवन
पूछो तो कोणार्क
सुनाता मधुमय प्रेम की गुंजन।

कवि ने काव्यरचना के पूर्व ही कोणार्क विषयक अपनी अनुभूति प्रदर्शित की है। मानव जीवन की प्रेम—जैसी बहुत उदात्त भावनासंबंधी 'कोणार्क' द्वारा सुनाए जाने की कल्पना सुंदर है। वस्तुतः कला का रूप कोई भी क्यों न हों वह दर्शकों से संवाद स्थापित करती है। वह संगमरमर से बना ताजमहल हों या अश्म से निर्माण किया कोणार्क का सूर्यमन्दिर हों या दुनियाभर के कलाकारों द्वारा बनाई मूर्तियाँ, चित्र, शिल्प आदि क्यों न हों! मराठी कवि अरुण कोलटकर की कविता 'त्रिमेरी' यभिजकी वही गीली बही, साहित्य अकादमी से पुरस्कृत, 2005, में माइकेल एंजेलो के 'पिएता' शिल्प का बेहतरीन उल्लेख अनोखे तरीके से मिलता है। इसमें कवि ने कल्पना की है येशू के छिन्न-विच्छिन्न शरीर को क्रूस से उतारने के बाद माता मेरी को अपने प्रिय बेटे को अपनी संगमरमर गोद में लेकर दुःख प्रकट करने माइकेल एंजेलो की पंद्रह सौ वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। कितनी उदात्त कल्पना का आविर्भाव दृष्टिगत होता है। माइकेल एंजेलो का संगमरमर में निर्मित 'पिएता' शिल्प विश्वविख्यात शिल्प है। शिल्प द्वारा महसूस होनेवाले माता मेरी के दुःख से मन चुप्पी साध लेता है। सोलहवीं शती का यह शिल्प बहुत व्यक्त होता है। दर्शक यदि कलाओं के जानकार हों तो अवश्य ही उसे शिल्पों द्वारा उसके साथ संवाद स्थापित हो जाने की अनुभूति हो जाएगी। डॉ. संजीव कुमार की उपरोक्त पंक्तियों से वही भाव दुहरा गया। स्पष्ट है जब ऐसा होता है तब कवि के अपनी अभिव्यक्ति में सहज तथा सफल होने के संकेत होते हैं।

एक शाम
उन्हीं पाषाण शिलाओं के बीच
तलाशता रहा मन
की वह मूर्तियाँ
जीवन का मूर्त हैं
या मूर्तियाँ ही जीवन...
खोजती रहीं आँखें उन
भाव-भंगिमाओं के बीच
उस शिल्पी की आँखों के
अनबेधे स्वप्न
कैसे जागे होंगे
जीवन के इतने मूर्त रूप
कैसे प्यार में डूबी
सराबोर जिंदगियाँ
मनाती होंगी जीवन का उत्सव—
यह सत्य होगा
या केवल कल्पनाओं का संगम
कैसे थम गया होगा
जीवन का हर भाव
जन्म लेने के लिए
कोणार्क की मूर्तियों में ॥ भाव खंड 4

कैसे कह सकते हैं कि मूर्तियाँ बोलती नहीं! वस्तुतः मूर्तियों द्वारा जीवंतता का अहसास होने का भाव जागृत होना महत्वपूर्ण है। कोणार्क के शिल्प सौन्दर्य में महाशिल्पी विशु के स्वप्न खोजनाए इस कलाकृति की पृष्ठभूमि तथा कल्पना को ढूँढ़ने का कवि मन बनना ही कवि के अनुभवों से पाठकों का गुजरना है। हम इस बात से परिचित हैं कि खजुराहो का निर्माण कौनसे उद्देश्य से किया गया था। कोणार्क के सूर्य मंदिर निर्माण के पीछे के विविध उद्देश्यों से अर्थात् पौराणिक, ऐतिहासिक कथाओं, संकेतों से भी हम परिचित हैं। यदि हम निर्माणकालीन सम्पूर्ण परिवेश को ध्यान में लें तो यह बात तो स्पष्ट होती है कि कोई भी कलाकृति बिना उद्देश्य या हेतु से निर्मित नहीं हुई। सामान्यतः समसामयिक परिवेश, प्रजाहित आदि का ध्यान तो तत्कालीन राजा रखते थे। जिस प्रकार खजुराहो आदि भारतीय स्थापत्य कला की बहुत सुंदर, बेहतरीन कलाकृतियाँ निर्माण की गईं, तब प्रजाहित को नजरअंदाज नहीं किया होगा। प्रेम जैसी विविध भावनाओं का आविर्भाव रंग तूलिकाए अश्म या पत्थरों आदि द्वारा करना कलाकारों के लिए चुनौतिभरा ही रहा होगा। आज जब इन कलाकृतियों से गुजरते हैं तो अनुभूति होती है कि मानव जीवन की सभी भावनाओं को इस कठिन माध्यम द्वारा व्यक्त किया है जो अत्यंत प्रशंसनीय है।

डॉ. संजीव कुमार के कवि मन की कल्पना अनोखी है। उन्होंने महाशिल्पी विशु की प्रेमिका होने की कल्पना की है। संभवतः उसके होने से ही कोणार्क जैसे भव्य सूर्य मंदिर वास्तु का निर्माण हुआ। वाकई कवि मन की सोच पंछी सी उड़ान भरती है।

तुम
और तुम्हारी प्रेयसी
कितने भाग्यवान होंगे
जो बिताए होंगे
स्वप्नों भरे पल
प्रेमामृत में सिक्त
दहकन के बीच
उगते शतदल
बहकते पल
और सौंदर्य की
अजस्र धार में
पिघलता यौवन
जो प्रतिकृत हो उठा है
इन प्रस्तर प्रतिमाओं में
जीवंत
और खिल उठा
जीवन का गीत
कामनाओं का संगीत
मूर्त होकर
कोणार्क की इन
प्रतिमाओं में ॥ (भाव खंड 10)

इस भव्य निर्माण के केंद्र में रहे ऐतिहासिक कथा

सूत्र को कवि ने अपनाया है। मंदिर स्थापत्य की ओडिशा शैली जिसे कलिंग नागर शैली कहा जाता है उसका सम्पूर्ण प्रतिफलन कोणार्क सूर्यमंदिर में हुआ दृष्टिगत होता है। ओडिशा में इस शैली में निर्मित मंदिर गंग वंश के शासन काल में निर्माण किए गए थे।

ज्ञात ऐतिहासिक सूत्रों के प्रमाणस्वरूप प्राप्त हुए तालपत्र पाण्डुलिपियों से जानकारी मिलती है कि पहले केसरी वंश के राजाओं ने एक सूर्यमंदिर बनवाया था। बाद में गंग वंश के राजाओं द्वारा मंदिर में पूजा-अर्चना का प्रबंध किया गया था। तेरहवीं शती में राजा नरसिंह देव ने पुराने मंदिर के सामने इस मंदिर का निर्माण करवाया। पौराणिक आख्यानों की तुलना में ये प्रमाण पुख्ता ठहरे।

कलिंग नागर शैली मंदिर स्थापत्य में विख्यात है। कोणार्क के सूर्यमंदिर के वर्तमान स्वरूप से उसकी प्राचीन भव्यता का अनुमान लगाना कठिन है, परंतु असंभव नहीं। उसके भग्नावशेषों को देखकर उसकी भव्यता का अंदाजा लगाने के प्रयास जरूर होते हैं। कहने का तात्पर्य यही कि कवि संजीव ने ऐतिहासिक तथ्यों तथा स्थापत्य कला अर्थात् कलिंग मंदिर शैली पर अधिक ध्यान दिया है।

महाशिल्पी विशु के पुत्र धर्मपाद का बलिदान एक पिता के लिए कितना पीड़ादायी रहा, उसका हृदयद्रावक वर्णन कवि ने किया है—

“किन्तु नहीं कह सकता
अपने हृदय की पीड़ा भी
कि अपनी आँखों से
हमने जिसे देखा था
पिता की शिल्प कला के
शीर्षस्य बिन्दु को छूटे हुए
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
उस कला के प्रतिमान को
जो केवल मेरे द्वारा
उकेरी गई थी
और जिसका मैं ही सोच सकता था
पूर्णत्व एवं पूर्णशिल्प
उस कल्पना को
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
छीन लिया था उसने
वह धर्मपाद
मेरे अपने तन का ही
एक अंश था” (भाव खंड-13)

महाशिल्पी का दुःख शब्दातीत है।

“जब तक
समझ पाता मैं
जब तक लगा पाता
उसे अपने गले
जब तक सुन पाता
उसके मुंह से
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
उसने बलिदान कर दिया
अपना जीवन
समा गया वह
सागर की उत्ताल तरंगों में
देने के लिए
सैकड़ों शिल्पियों को
जीवनदान
बचाने के लिए
राज्य दण्ड से
और मैं
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्
देखता रहा
ञ् ञ् ञ् ञ् ञ्”

15 वें भाव खंड में कवि महाशिल्पी से संवाद करता है। प्रेयसी तथा पुत्र की मृत्यु से पीड़ित महाशिल्पी विशु के मन से कवि तादात्म्य स्थापित करता है। अगले भाव खंड में कवि ने विशु की कोणार्क के पत्थरों पर की कलाकारी की

प्रशंसा की है।

मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रेम भाव को केंद्र में रख वहाँ निर्माण की सुंदर कारीगरी पर बातचीत करते हुए कवि ने चंद्रभागा नदी की संजीवनी शक्ति पर प्रकाश डाला है तथा उसके विविध नाम और कार्यों पर भी। कवि ने विशु से कहा कि इतना सुंदर, भव्य निर्माण कार्य उससे इसलिए संभव हुआ कि विशु के जीवन की आत्मा, उसकी प्रेयसी उसमें समायी थी। (भाव खंड-18) प्रेम की भावनाएं उन पत्थरों में इसी कारण इतनी उत्कटता से उकेरी गयीं। विशु द्वारा उकेरे भाव धीरे-धीरे कवि की आँखों में समा जाते हैं। कवि ने कल्पना की कि विशु ने अपनि जीवन यात्रा को कवि के समक्ष रखा। सम्पूर्ण मंदिर निर्माण का रहस्य बताते हुए उसने किए कठोर परिश्रम, गुरु से स्थापत्य कला की पायी शिक्षा आदि सभी को खुले मन से प्रकट किया। महाशिल्पी यह बात भी रखता है कि उसकी कला यात्रा ने उसे एकाकी बना दिया। उसने कला के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था।

डॉ. संजीव कुमार ने सभी तरह के बिंबों का प्रयोग काव्य सृजन के दरमियान किया है। इससे कोणार्क हर तरह से पाठकों के मन को छू लेता है।

मानव जीवन में राग-रागिनियों की खोज की आवश्यकता, भावों का महत्व आदि ने संवाद शैली द्वारा काव्य में जगह पायी है। कोणार्क में शृंगार ने अपना समग्र रूप रखा है, परंतु अनोखे अंदाज में। भावों का प्रवाह अविरत बहता हुआ दिखाई देता है। कोणार्क का निर्माण अपनी भव्यता को समक्ष रखता जाता है।

भले ही काव्य रचना का स्वरूप अलग हों, संवाद शैली, छोटे-छोटे 97 खंड परंतु अभिव्यक्ति से प्रेम भाव और अश्मों के बीच की रागात्मकता बहुत ही संवेद्यता से निश्चित अभिव्यंजित हुई है। सूर्य के मन के भाव विशु ने जान लिए थे। उसी के अनुकूल कोणार्क निर्माण में उसकी सहभागिता रही। स्त्री-पुरुष के बीच का द्वंद्व कोणार्क के शिल्प में उकेरने में विशु को बड़ी सफलता मिली। विशु और उसके साथ बारह वर्ष कार्य कर रहे शिल्पी, उनके सुदूर रहे परिवार, मंदिर निर्माण कार्य में व्यस्त रहे शिल्पियों के परिवारों पर हुआ अन्याय आदि का वर्णन कवि ने आखिरी भाव खंडों में किया है। विशु का अपने पुत्र को पहचान न पाने का दुःख बहुत गहरा था। पुत्र धर्मपाद को पहचानने में हुए विलंब से उसे अत्यंत पीड़ा हुई थी।

उससे विशु आहत हुए और आखिर में कल्पना सृष्टि में समाधिस्थ हुए। मराठी भाषा में 'कोणार्कचा कलाकार' इसी कथ्य को लेकर काफी वर्षों पूर्व लिखा गया था। शैली अलग कथ्य में साधर्म्य रहा है। डॉ. संजीव कुमार ने कविता को माध्यम बनाया है। कथ्य गतिशील रखनेवाली भाषा का उचित प्रयोग किया है।

डॉ. संजीव ने आमुख में कहा है कि सभी बातों का ज्ञान किसी अनुभव से प्राप्त हो, यह जरूरी नहीं। परंतु उनका विशु अपने समस्त अनुभवों को कवि के सामने प्रकट करता है। कवि ने कोणार्क के अप्रतिम, भव्य, अश्म मंदिर के निर्माण में जिन भावनाओं का उद्रेक निमित्त बना होगा इसकी सुंदर कल्पना निरूपित की है। उनकी 'कोणार्क' काव्य रचना कवि के मतानुसार प्रेम मंदिर है। एक पाठक के नाते कहना उचित होगा कि काव्य का कथ्य उदात्त है। उसे केवल प्रेम मंदिर की प्रतीति में सीमित रखना अनुचित होगा। कवि द्वारा इस भव्य मंदिर या वास्तु के निर्माण में कलाकारों में रहा अनुभव, भाव, स्थापत्य कला का ज्ञान, मेहनत, लगन, श्रम, कल्पना-चिंतन आदि अप्रतिम होने से रचना सशक्त हो उठी है। कवि की कल्पना ने नवीन शैली तथा संवाद शृंखला में अपना रूप ढाला है जो एक अनोखा अनुभव देता है।

साहित्य की राजनीति और हमारे जीवंत साहित्यकार

सिद्धेश्वर

प्रत्येक वर्ष की तरह इस बार भी हिंदी दिवस खूब धूमधाम से मनाया गया! सरकारी संस्थानों ने अपने गिने-चुने साहित्यकारों को (जिनकी गोपनीय लिस्ट होती है, और उस लिस्ट के खिलाफ आप कुछ बोल भी नहीं सकते) बहुत ही सम्मानपूर्वक बुलाकर, अपने मंच पर आसीन करते हैं! ये सम्मानित लोग साल भर भले व्यवहार में अंग्रेजी का उपयोग करते हो, लेकिन आज के दिन हिंदी का खूब गुणगान करते हैं! और बदले में एक मोटी नगद राशि भी पाते हैं! चलो भाई हिंदी कुछ दे या ना दे, कम से कम कुछ लोगों को मोटी राशि तो दे ही देती है! और युवा साहित्यकार नित्य नया सृजनात्मक विकास करते हुए भी, उन मंचों तक नहीं पहुंच पाते। मुख्यधारा की पत्र-पत्रिकाओं और मुख्यधारा की संस्थाओं द्वारा उपेक्षित ऐसे साहित्यकार, अपने आसपास कुकुरमुत्ते की तरह उग आई स्वैच्छिक साहित्यिक संस्थाओं की कवि गोष्ठियों में जाकर, अपनी साहित्यिक भूख को शांत करते हैं।

बहुत सारी ऐसी संस्थाएँ भी हैं जो दूरदराज क्षेत्रों से आए हुए कवियों-साहित्यकारों को एक कप चाय जरूर पिला देती है, नाश्ता दें या ना दें क्योंकि इस महंगाई के युग में, नाश्ते की कोई गारंटी नहीं। बहुत हुआ तो, थोक भाव में छपाए हुए सम्मान-पत्र पर अपने हस्ताक्षर करके, युवा साहित्यकारों को अवश्य सम्मानित करते हैं, ऐसी संस्थाओं के संयोजक, अपने-अपने होंठों की मुस्कान के जरिए ही वे आपसी संवाद कर लेते हैं कि चलो भाई हम भी खुश, तुम भी खुश।

साहित्यकारों की इस भीड़ में, ढेर सारे ऐसे साहित्यकार भी होते हैं, जिन्हें कविता का क ख ग भी नहीं आता, लेकिन वे बहुत ही सहज रूप से प्राप्त कर लेते हैं, निराला सम्मान, प्रेमचंद सम्मान, महादेवी सम्मान, और भी कई तरह के सम्मान, भले ही उन्हें कहीं-कहीं इस सम्मान-पत्र के बदले 500 से 1000 तक खर्च भी करना पड़े। इनमें से अधिकांश को हिंदी सम्मान भी जरूर मिल जाता है, भले वे सालों भर दिन भर में हजार बार सिस्टर, ब्रदर, मम्मी, डैडी, गुड नाइट, गुड मॉर्निंग, हाय, हेलो, टाटा, बाय-बाय कहने में शान महसूस करते हैं। और ऐसे साहित्य प्रेमी ही अंग्रेजी में हस्ताक्षर करना अपना परम धर्म समझते हैं। आमंत्रण कार्ड अंग्रेजी में छपवाना उच्च घराने की पहचान समझते हैं और झूठा दिखावा करने के लिए, हिंदी दिवस के दिन आते हैं हिंदी गौरव सम्मान लेने।

ये तो बातें हुईं तथाकथित हिंदी सेवी और हिंदी के नए कवियों और साहित्यकारों की, जो बिना साहित्य का गंभीर अध्ययन किए, बिना साहित्य का गंभीर सृजन किए, साहित्यिक संस्थानों से इतने बड़े-बड़े सम्मान पा लेते हैं। यानी 'हींग लगे न फिटकरी, फिर भी रंग उतरे चोखा' एक सजग साहित्यकार और कवि कहलाने के लिए और क्या चाहिए भाई। अरे भाई, जरा यह भी तो सोचिए कि दिन रात जो साहित्य में अपना सिर खपाते हैं, दिन-रात हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में अपनी आंखें गड़ाए रहते हैं, प्रेमचंद के बताए रास्ते पर चलकर जो खुद को कलम का मजदूर समझते हैं, और दिन-रात सामाजिक, पारिवारिक विसंगतियों को दूर करने के लिए, देश के विकास के लिए, साहित्य सृजन के पथ पर हिंदी की कलम दौड़ाते रहते हैं, इतना कुछ के बदले आखिर उन्हें मिलता भी क्या है भाई? आत्म संतुष्टि, मन की तृप्ति, दिल की तसल्ली, या फिर और कुछ? इनमें से बहुतों को और कुछ भी नहीं मिलता। क्योंकि ऐसे साहित्य के सजग सृजक को, रेवड़ी की तरह बंट रहे मान-सम्मान से संतुष्टि नहीं मिलती। पूरी संतुष्टि तब मिलती है जब उनके सृजन का सही मूल्यांकन होता है।

लेकिन उचित मूल्यांकन करने वाले और हमारे साहित्य समाज में अपने नैतिक मूल्यों के प्रति कितने लोग ईमानदार दिखते हैं? कितने लोग हैं, जो कवि-लेखकों से बिना नाम, पदनाम पूछे साहित्य सृजन की श्रेष्ठता के आधार पर, उचित सम्मान देते हैं? उनकी सारगर्भित रचनाओं को जन-जन तक पहुंचा सकें, ऐसे लोग कितने हैं? बंधे-बंधाए, लेखकों

कवियों को बार-बार प्रकाशित करने की अपेक्षा, उनकी स्तरीय रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं में अपेक्षित स्थान देने वाले कितने संपादक-प्रकाशक है? सरकारी संस्थानों के मंचों पर ऐसे साहित्यकारों का मूल्यांकन करने वाले कितने लोग हैं। क्योंकि लेखकों का आर्थिक शोषण करने वाले लोग तो आपको हजारों मिल जाएंगे, लेकिन आर्थिक लाभ पहुंचाने वाले गिने-चुने लोग ही होते हैं, वह भी आजकल ढूंढे नहीं मिलते। और इस तरह का सवाल सिर्फ हमारे-आपके नहीं, देश के उन लाखों करोड़ों उपेक्षित साहित्यकारों का है, जिनके सवालों को सवाल समझकर उस ओर झांकने वाला भी कोई नहीं मिलता। हमारे और आपके ये तमाम सवाल हैं साहित्य की राजनीति का खेल खेलने वाले उन तमाम अधिकारियों के सामने, जिन्हें सालों भर पहले अपने बने-बनाए हुए, साहित्यकारों की लिस्ट के आगे कोई नया नाम नजर ही नहीं आता। क्या कभी इस ओर किसी ने सोचने की भी कोशिश की है कि प्रत्येक वर्ष मुख्यधारा के पत्र-पत्रिकाओं से लेकर, मुख्यधारा की साहित्यिक संस्थानों तक आखिर कुछ साहित्यकारों का ही वर्चस्व क्यों स्थापित रहता है? क्या कभी किसी ने इन सवालों पर भी सवाल उठाया है कि हर वर्ष कुछ नए साहित्यकारों का नाम जोड़ने की अपेक्षा, अपने इर्द-गिर्द मंडराने वाले साहित्यकारों की अधिक याद उन्हें क्यों आती है? कभी किसी ने उनसे पूछने का यह जुर्रत की है कि क्या अच्छे लिखने-पढ़ने वाले साहित्यकारों कवियों का अभाव हो गया है? क्या हिंदी साहित्य विकास की ओर जाने की अपेक्षा पतन की ओर जा रहा है? क्या साहित्य के विकास के रथ का पहिया रुक गया है? क्या हिंदी में अच्छे साहित्य का अकाल पड़ गया है? या फिर साहित्य की राजनीति के इन खिलाड़ियों ने, भाई भतीजावाद, व्यक्तिगत लाभ का आदान-प्रदान, एक-दूसरे की पीठ खुजलाने की बीमारी, पदोन्नति पाने की तरह उचित पैरवी को ही अपना सशक्त हथियार बना लिया है। यानी जो साहित्यकार साहित्य की की विसंगतियों को अपनाएगा यानी इस अचूक नुस्खे को आजमाएगा, वही श्रेष्ठ साहित्यकार कहलाएगा और हिंदी साहित्य जगत में प्रकाशन से लेकर मंच तक पर उन्हें ही प्राथमिकता दी जाएगी। हिंदी साहित्य का यह दुर्भाग्य है कि हमारी सरकार के द्वारा भी ऐसे अनैतिक कुकर्म में लिप्त और दिग्भ्रमित अधिकारियों, साहित्य प्रेमियों के हाथों में हिंदी साहित्यकार और हिंदी साहित्य का संरक्षण करने का अधिकार प्राप्त होता है, उनके इस भ्रष्टाचार जैसे कुकर्म के खिलाफ ना तो कोई आयोग बैठता है, ना तो कोई उच्च अधिकारी, बल्कि उनके ऊपर का भी जो अधिकारी होता है, वह भी उन्हीं की तरह, हिंदी साहित्य का हित देखने के पहले अपना हित देखता है। हिंदी साहित्यकारों को लाभ देने के पहले, अपना व्यक्तिगत लाभ देखते हैं। और ये लोग प्रेमचंद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, शिवपूजन सहाय जैसे रचनाकारों को सम्मानित करते हुए उनकी जयंती मनाते हुए, उनके व्यक्तित्व से जरा सी भी सीख नहीं लेते, जिन्होंने अपना पूरा जीवन, नई प्रतिभाओं को तराशने में लगा दिया, साहित्य की गंदी राजनीति के खिलाफ जेहाद लड़ने में अपना पूरा जीवन बिता दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी और शिवपूजन सहाय, जैसे संपादक जिन्होंने हिंदी जगत को निराला और प्रेमचंद-जैसे अमर साहित्यकार सौंपे। और ये सारा नंगा खेल जो साहित्य में खेला जा रहा है, उसे हमारे-आपके जैसे साहित्यकार भी खूली आंखों से देख रहे हैं। साहित्यकारों से भी साहित्यकारों की बात छिपती है क्या? क्या आप सभी को भी ऐसा नहीं लग रहा है कि आज साहित्य जगत में साहित्य प्रेरक व्यक्तित्व की अपेक्षा, साहित्य की राजनीति का दांव-पेंच अधिक कामयाब हो रहा है? यदि समाज में रिश्वत लेना-देना दोनों अपराध हैं, योग्य व्यक्ति के रहते अयोग्य व्यक्ति को, अनैतिक कुकर्म के आधार पर नौकरी देना अपराध है, एक इंसान की अपेक्षा बेईमानों को सम्मान देना यदि अपराध है, तो फिर साहित्य की इस गंदी राजनीति में, साहित्य का यह गंदा दांव-पेंच खेलना भी अपराध होना चाहिए या नहीं? ऐसे लोगों का साहित्यिक बहिष्कार होना चाहिए या नहीं? और इन सब के खिलाफ भी कानून में कोई सुधार होना चाहिए या नहीं। आइए हम सभी साहित्यकार इन विचारों पर चिंतन-मनन करें! तभी देश की छवि में सुधार के साथ-साथ साहित्य की छवि में भी सुधार की संभावना दिख पड़ेगी। समाज को खंगालने के पहले अपने भीतर खंगालना बहुत जरूरी है और नित्य विखंडित होते साहित्यिक मूल्यों को बचाने के लिए अपेक्षित भी है।

पेशेवर पढ़ाई अब हिंदी में

संतोष बंसल

इस बार 12वें विश्व हिंदी सम्मलेन का आयोजन फिजी के नाड़ी शहर में किया जा रहा है, जो 15 से 17 फरवरी 2023 में हुआ। भारतीय विदेश मन्त्रालय और फिजी सरकार द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित इस सम्मलेन में भारतीय विदेश मंत्री डॉक्टर एस. जयशंकर भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया। फिजी के शिक्षा मंत्रालय, विराट और कला के स्थायी सचिव अंजिला जोखान की मौजूदगी में सम्मलेन के 'लोगो' और 'वेबसाइट' का शुभ आरम्भ किया गया। इस दौरान उन्होंने बताया कि हिंदी भाषा फिजी के संविधान की आधिकारिक भाषाओं में से एक है एवं फिजी में प्राथमिक विद्यालयों से लेकर 'युनिवर्सिटीज़' में भी भारतीय मूल के 'स्टूडेंट्स' के लिए हिंदी एक अनिवार्य 'सब्जेक्ट' है। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के तौर पर मान्यता दिए जाने के सवाल पर विदेश मंत्री श्री जयशंकर ने कहा कि यूनेस्को द्वारा अलग-अलग समाचार पत्रों, सोशल मीडिया और अन्य प्लेटफार्म पर अब हिंदी का इस्तेमाल किया जाता है। किन्तु हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता देने में थोड़ा समय लग सकता है एवं प्रधानमंत्री की व्यक्तिगत रुचि और प्रयासों से इंजीनियरिंग और मेडिकल की पढ़ाई हिंदी और भारतीय भाषाओं में हो, इसके भी संस्थागत इंतजाम किये जा रहे हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ, सत्ता की इच्छा एवं समय की मांग भी राजभाषा हिंदी के साथ है। क्योंकि विश्व की तीसरे नंबर पर सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा, अब बाजार की जरुरत और संवाद का माध्यम बन गई है। लेकिन हिंदुस्तान में हिंदी भाषा का मुद्दा महात्मा गाँधी के अथक प्रयासों के बावजूद सदैव विवादास्पद रहा, इसी कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी उसे राष्ट्र भाषा का दर्जा नहीं दिया गया। आजादी के अमृत महोत्सव पर जब यह विषय एक बार फिर जिन्न की तरह बाहर निकल आया है और विचार-विमर्श का विषय बन गया है। तब अनेक बोलियों-उपबोलियों और भाषा-भाषी भारत देश में यह चर्चा दोबारा गरमा गई है और कई राजनीतिज्ञ इसके विरोध में सुर-स्वर निकालने लगे हैं। ये नेता अपनी प्रांतीय और स्थानीय भाषाओं के प्रति असुरक्षा बोध जताते हुए, रोजगार और शिक्षा के प्रति हिंदी भाषा पर प्रश्न उठा रहें हैं। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि एक व्यक्ति अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा के साथ विदेशी भाषा को भी सीख सकता है या इससे भी अधिक भाषाओं को अपनाने में सक्षम है। वैसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू होने के बाद यह उम्मीद की जा रही है कि मातृभाषाओं की स्थिति में कुछ सुधार होगा और हिंदी भाषा की नींव अधिक सुदृढ़ होगी। यद्यपि रोजगार की शिक्षा को हिंदी भाषा में प्रदान करने के मामले में हम पिछड़े हुए हैं, किन्तु नयी शिक्षा नीति के तहत देश ने पेशेवर शिक्षा भी हिंदी माध्यम से देने की ओर कदम बढ़ा दिए हैं। यदि हमारे कार्यालयों में आम लोगों की सरल भाषा में काम होता, तो उन्हें अपने कामों को करने और समस्याओं को समझने में सहूलियत रहती। जिससे दफ्तरों में फाईलों के ढेर न इकट्ठे होते और सभी कार्य समय पर निपटाए जाते। तब कितना अच्छा होता, अगर हमारे न्यायालय अपनी भाषा में जनता को न्याय दे पाते। मुजरिम को दंड और मुवक्किल का फैसला देने में सालों साल न लगते और गाँव-देहात के लोग कानूनी प्रक्रिया और न्याय को अपनी भाषा में आसानी से समझ पाते। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने भी अदालतों में स्थानीय भाषाओं के इस्तेमाल पर जोर दिया और कहा कि, 'अंगरेजी में न्यायिक प्रक्रिया और फैसले समझना मुश्किल होता है तथा मातृभाषाओं के प्रयोग से न्याय प्रणाली में आम नागरिकों का विश्वास बढ़ेगा और वे लोग इससे अधिक जुड़ाव महसूस करेंगे एवं इसके लिए एक समूह दो प्रारूपों में कानून बनाने पर विचार कर रहा है, जो विभिन्न देशों में प्रचलन में है। एक विशिष्ट कानूनी भाषा में और दूसरा साधारण भाषा में, जिसे आम लोग समझ सकते हैं।' इसके प्रत्युत्तर में पूर्व मुख्य न्यायाधीश एन. वी. रमना ने कहा कि अदालतों में स्थानीय भाषाओं का

इस्तेमाल करने के लिए कानूनी व्यवस्था की आवश्यकता है। यदि कृत्रिम बुद्धिमता की तकनीक का भविष्य में इस स्तर पर विकास होगा कि वह स्थानीय भाषाओं को देखकर जज को उसका मर्म समझा सके, तो फिर कोर्ट में ये भाषाएँ लागू हो सकती हैं। यद्यपि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के कामकाज में हिंदी का प्रयोग काफी समय से किया जा रहा है और यहाँ अधिकतर काम हिंदी या फिर हिंदी-अंग्रेजी को मिलाकर निपटाया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त दिल्ली के न्यायिक इतिहास में भी नौ साल पहले एक तमिलभाषी न्यायाधीश ए. एस. जयचंद्रा ने एक बड़ी पहल की थी। यद्यपि दिल्ली की अदालतों के कामकाज में हिंदी भाषा प्रयोग नहीं की जाती, किन्तु न्यायाधीश जयचन्द्रा ने पांच सितम्बर 2013 को विवाह विच्छेद के एक मामले में न केवल हिंदी में फैंसला सुनाया, बल्कि पूरा निर्णय पत्र भी हिंदी में लिखवाया। यहाँ ख़ास बात यह रही कि गैर हिंदी भाषी प्रदेश का होने के बावजूद उन्होंने स्वयं हिंदी में आदेशपत्र तैयार किया। एक आदेश पत्र रिकार्ड के लिए अंग्रेजी में भी लिखवाया गया, किन्तु न्यायाधीश का मानना था कि वादियों की बोली और स्थानीय भाषा को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिखा जाए। पिछले वर्ष प्रमुख खबर थी कि हिंदी भाषा में इंजीनियरिंग की शिक्षा की शुरुआत की जाएगी, जिसके लिए आईआईटी बी.एच.यू में इंजीनियरिंग की पढाई हिंदी में करने की तैयारी की जा रही थी। इसके लिए 'मैनुअल' से लेकर सभी विभागों के पाठ्यक्रम हिंदी में करने पर काम शुरू हुआ। और इस कोर्स के हिन्दीकरण के काम के लिए वैज्ञानिक प्रणाली अपनाई जा रही है, जिसके लिए भाषा का आसानी से समझ में आना जरूरी शर्त है। दूसरे आईआईटी में अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों को हिंदी में परिवर्तित करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जा रहा है कि यह कोष कठिन न हो। कठिन शब्दों के स्थान पर अंग्रेजी के शब्दों का ही इस्तेमाल किया जा रहा है, साथ ही अन्य भाषाओं से भी शब्द लेने की तैयारी है। वैसे भी संस्थान से प्रकाशित होने वाले 'न्यूज़ लेटर' हिंदी और अंगरेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित किये जाते हैं। चूँकि इंजीनियरिंग की किताबें अभी तक अंगरेजी में हैं, ऐसे में हिंदी भाषा में नए कोर्स और किताबों के लिए आईआईटी के सभी विभाग अलग से काम कर रहे हैं। इसके लिए संस्थान की तरफ से हिंदी में इंजीनियरिंग की किताबें लिखने के लिए प्रोत्साहन स्वरूप अनुदान भी दिया जा रहा है। अब तक विभिन्न विभागों के छह प्राध्यापकों ने इंजीनियरिंग की किताबें लिखने का प्रस्ताव दिया है तथा नए शोधपत्रों का प्रकाशन भी हिंदी में कराने को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके अलावा तकनीकी शब्दों को हिंदी में अनुवाद करने के लिए एक कमेटी बनाई गई है एवं विभागों की तरफ से प्रस्तावित शब्दों को कमेटी पारित करेगी। इसके बाद इन्हें राष्ट्रीय भाषा शब्दावली प्रकोष्ठ के समक्ष रखा जाएगा। प्रकोष्ठ की मुहर लगने के बाद ही इन तकनीकी शब्दों को 'कोर्स' में शामिल किया जाएगा, ताकि यह सर्वमान्य रहें। संस्थान में जल्द ही भाषा शब्दावली प्रकोष्ठ की कार्यशाला भी कराने की तैयारी है, जिससे हिंदी में अध्ययन करने वाले छात्र अंगरेजी समेत अन्य भाषाओं में भी समान अधिकार रखें। बी.एच.यू. के निदेशक प्रोफेसर प्रमोद जैन के अनुसार, हिंदी जन-जन की भाषा है और इसमें तकनीकी शिक्षा भारतीयता को बढ़ावा देने में मददगार होगी। भाषा में कठिन शब्दों की जगह आसान शब्दावली पर जोर है और इसके लिए अंग्रेजी व् अन्य भाषाओं के शब्द भी समाहित किये जाएंगे। आईआईटी बीएचयू में अगले सत्र से हिंदी में अध्ययन का भी विकल्प रहेगा। नयी पुस्तकों के लेखन के लिए संस्थान के प्राध्यापकों को अनुदान और पुस्तकालय में हिंदी की तकनीकी शिक्षा की किताबों की संख्या भी बढ़ाई जा रही है। लेख हिंदी की पटरी पर उतर रही अभियांत्रिकी, हिंदी हिन्दुस्तान अखबार, 14 सितम्बर 2021 इसी तरह अब तक चिकित्सा शास्त्र की पढ़ाई सिर्फ अंगरेजी में होती थी और उसकी किताबें अंग्रेजी में ही उपलब्ध हुआ करती थी। आम आदमी यही सोचता था कि काश डॉक्टर अपना पर्चा मरीज की भाषा में लिखता और दवाएं हमारी भाषा में मिल पाती। हिंदी क्षेत्र में डॉक्टरी भले ही मातृभाषा में होती है, लेकिन पढ़ाई तो अंगरेजी में होती आई है। जब अस्पतालों में डॉक्टर मरीज का संवाद हिंदी में होता है, तब डॉक्टरों का आपसी परामर्श या चिकित्सा कार्य अंगरेजी में क्यों? इलाज भी अगर हिंदी में होगा, तो शायद ज्यादातर मरीजों को समझने में सुविधा होगी। अभी तो अनेक डॉक्टरों के हाथ से लिखी पर्ची को पढ़ना समझना भी आसान नहीं है और दवाइयां भी अंग्रेजी नाम से बिकती हैं। अक्सर भाषा में

आपसी वार्तालाप ठीक से न होने से न तो रोगी अपनी बीमारी ठीक से बता पाता है और न ही डॉक्टर मरीज से खुलकर उसकी तकलीफ समझ सकता है। मुझे याद है कि एक अहिन्दी भाषी बंगाली डॉक्टर अपने मरीज से हिंदी में पूछता था, "टट्टी में' कौन आता है 'यह कौन' शब्द 'खून' का उच्चारण बदल कर 'कौन' शब्द में हास्यास्पद हो गया था, जो आम डॉक्टरों में चुटकुला बन गया था। उत्तर भारत के सरकारी अस्पतालों में गाँवों-कस्बों के मरीजों के साथ डॉक्टरों को उन्हीं की जुबान में बात करनी चाहिए, नहीं तो दर्द और तकलीफ को जाने-पूछे बिना इलाज संभव ही नहीं, चूँकि यह व्यवसाय 'लाइफ लाइन' या जिंदगी से जुड़ा है, इसीलिए इसमें भाषा के कारण बातचीत की दूरी नहीं होनी चाहिए। अभी तक सुविधाओं के अभाव के साथ-साथ भाषा के दुराव के कारण शिक्षित डॉक्टर गाँवों में जाने से कतराते रहें हैं तथा गरीब और अभावग्रस्त लोग भी अज्ञान वश प्रशिक्षित डॉक्टर तक पहुँच नहीं पाते और अपने आस-पास के नकली डॉक्टरों के चंगुल में फंसे रहते हैं। अक्सर ये विवश और वंचित लोग अपनी जान गंवा देते हैं और अपने प्रिय लोगों से हाथ धो बैठते हैं। ऐसे में अब चिकित्सा की तीन किताबों का हिंदी में आना सुखद और ऐतिहासिक प्रगति है, जिनमें शब्दावलियों को अंग्रेजी भाषा के समान देवनागरी लिपि में लिखने का प्रयास बेहद उपयोगी होगा। मध्य प्रदेश सरकार की महत्वाकांक्षी परियोजना के तहत एम् एम् बी एस के छात्रों के लिए हिंदी पाठय पुस्तकों का अनावरण किया गया है और हिंदी की ऐसी पहल में हिंदी भाषी मध्य प्रदेश ने बाजी मार ली है। इस पहले कदम के तहत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के हिस्से के रूप में तीन विषयों जैव रसायन, शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान की हिंदी पाठ्य पुस्तकों का विमोचन किया गया है।

अंततः यह समझना चाहिए कि अंगरेजी की अच्छी जानकारी न होने के कारण कई विद्यार्थी मेडिकल जैसे उच्चतर अध्ययन से वंचित रह जाते हैं, अब उनको अपनी प्रतिभा दिखाने का पूरा मौका मिलेगा। दूसरे सुदूर इलाकों से आये ऐसे विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने देहातों और कस्बों में भी अपनी सेवायें दे सकेंगे। जिससे सरकार के लिए भी ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवायें देना सहज और सरल होगा, जिसका फायदा बच्चों और स्त्रियों के साथ वृद्ध पुरुषों को भी मिलेगा। वैसे पेशेवर शिक्षा में पूरा जोर गुणवत्ता पर होना चाहिए, तभी हम जरूरी बदलाव लाने में सफल हो सकेंगे। यद्यपि भारत अनेक भाषाओं का देश है, जहाँ हिंदी को किसी पर थोपा नहीं जा सकता। किन्तु अगर हिंदी में पढाई होने से 'ब्रेन ड्रेन रोकना संभव होगा, तो देश के योग्य पेशेवर अपनी जमीन पर ही सेवा में अपनी प्रतिभा का उपयोग करेंगे। वस्तुतः जब से यह खबर प्रसारित हुई है, तब से सोशल मीडिया पर मेडिकल शिक्षा से जुड़े हिंदी शब्दों का उपहास बनाया जा रहा है। ऐसे लोग क्या साबित करना चाहते हैं? रूस, जापान, चीन, फ्रांस जैसे विकसित देश स्थानीय भाषा में ही शिक्षा देते हैं। जब कभी अंतर्राष्ट्रीय 'कॉन्फ्रेंस होती हैं और सभी डॉक्टर्स' आपस में मिलते हैं। तो संपर्क भाषा के रूप में ये सब आपस में अंग्रेजी का हल्का-फुल्का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन तकनीकी रूप से अनुवादक और दुभाषिये ही काम करते हैं। जो शोध-पत्रों और उपलब्धियों को अपनी राष्ट्रीय भाषाओं में प्रस्तुत करते हैं, तब उनकी 'मेडिकल मैगजीन' में प्रकाशित होते हैं। जबकि भारत में यह कहा जाता है कि हिंदी में मेडिकल करने वाले डॉक्टर गैर-हिंदीभाषी राज्यों में काम नहीं कर पाएंगे अथवा रिसर्च पेपर, जर्नल और उच्च अध्ययन की किताबें अंगरेजी में हैं। क्या यह संभव नहीं कि नियुक्ति के समय प्रदेश और भाषा का ध्यान रखा जाए, जिससे पदाधिकारी के साथ पब्लिक का भी हित होगा। दूसरे क्या मातृभाषा के साथ तीन भाषा फार्मूला नहीं अपनाना चाहिए। हमारे संविधान निर्माता बाबा भीमराव आंबेडकर कई भाषाओं के ज्ञाता थे। बात केवल इच्छा शक्ति और उसके अनुसरण की है। ऐसे में अपनी भाषा को अधिकार दिलाने के लिए बुद्धिजीवियों को आगे आना होगा। हमें भी हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए कटिबद्ध होना होगा और हिंदी को सरोकार, रोजगार और ज्ञान की भाषा बनाना होगा। भारतीय जनसंचार संस्थान के महानिदेशक श्री संजय द्विवेदी के अनुसार, 'जरूरी है कि हम जमाने को भी बता दें कि हमें हिंदी की जरूरत है।'

उस खरखरी आवाज़ की स्निग्धता

प्रबोध कुमार गोविल

उन दिनों मैं मुंबई में अकेला रहता था। लगभग हर रविवार की दोपहर में मेरे फ्लैट के सामने रहने वाले एक सज्जन आ जाते। आते ही कहते चलो, शतरंज की एक बाज़ी हो जाए! और संयोग देखिए, मैं लगभग हर बार उन्हें यही उत्तर देता—'आज नहीं, आज मुझे कहीं जाना है।'

दरअसल उन दिनों दफ्तर से छुट्टी के दिन मैं कमलेश्वर जी से मिलने जाता था। कमलेश्वर जी तब सारिका छोड़ने के बाद मुंबई में थे और उनकी सक्रियता मुंबई शहर को लगातार दिखाई दे रही थी। उन्होंने हिंदी कहानी के जिस आंदोलन को अपने मित्रों राजेंद्र यादव और मोहन राकेश के साथ जोर-शोर से उठाया था वह भी परवान चढ़ चुका था और उसके चर्चे चारों तरफ़ थे। सारिका के बाद 'गंगा' जैसी पत्रिका के माध्यम से पाठकों और नए लेखकों ने उनके कहानी विषयक सरोकार बेहद धूमधाम से देखे थे। तय था कि कमलेश्वर नाम की यह आंधी अब सहज ही थमने वाली नहीं थी।

वे दिन मेरे लिए भी लेखन के विराट सागर में हाथ-पांव मार कर शब्दों की दुनिया में अपने लिए एक छोटी छतरी ढूंढ़ने के थे। सच कहूँ तो मेरे जैसे एकलव्य के लिए कमलेश्वर से मिलने की कोशिश करना जैसे किसी द्रोणाचार्य का साया ढूंढने सरीखा ही था। इसीलिए मैं समय मिलते ही उनके पास जाता था। मेरी कहानी 'बेवजह उदास हम तुम' वास्तव में कमलेश्वरजी से मेरी भेंट की कोशिशों की ही कहानी थी। उन दिनों मैं कहानी में कमलेश्वर और उपन्यास की दुनिया में डॉ. राही मासूम रज़ा से खासा प्रभावित था। ये प्रभाव कायम है अब तक भी। यही कारण था कि मुंबई की अपनी दिनचर्या से मुझे जब और जैसे भी वक्त और सहूलियत मिलते मैं कमलेश्वरजी के घर या दफ्तर जाने का इरादा बना लेता था। अब कोई नया लेखक कमलेश्वर से मिलने जाएगा तो खाली हाथ तो नहीं ही जाएगा। लिहाज़ा मैं उनसे मिलने से पहले अपनी किसी नई कहानी पर काम करता और कहानी पूरी होते ही कमलेश्वरजी के पास जाने के लिए उतावला हो जाता। मानो कमलेश्वर के देख या पढ़ लेने के बाद मेरी पथरीली बेजान कहानी में प्राण-प्रतिष्ठा हो जाएगी।

इस तरह उनसे हुई ढेरों मुलाकातों के कुछ दृश्य मुझे अक्सर अब भी याद आते हैं।

वार्डन रोड के अपने घर के ड्राइंग रूम में भारी पर्दों के पीछे सोफे पर अकेले बैठे हुए कमलेश्वरजी एक बड़े से ख़ाली कागज़ पर सधे हुए हाथ से हस्ताक्षर कर रहे हैं। उनका बैठ जाने का इशारा मिल जाने के बाद भी मैं खड़ा ही हूँ, क्योंकि बैठने का संकेत उन्होंने मुझे मेरी ओर बिना देखे दिया है।

मैं इसे कोई अपमान जैसा नहीं मान रहा केवल इतनी सी जिज्ञासा है कि वो इतने तल्लीन होकर खाली कागज़ों पर कई बार हस्ताक्षर क्यों कर रहे हैं। इसका खुलासा कुछ दिन बाद होता है। कुछ दिनों के बाद मैं मुंबई के तमाम अखबारों में एक नई पत्रिका का विशाल विज्ञापन देख रहा हूँ जिसके संपादक के रूप में कमलेश्वर के नाम की घोषणा हुई है और उनका ये नाम विज्ञापन में उन्हीं की लिखावट में छपा है, हस्ताक्षर की तरह। जैसे साहित्यिक हलकों में "श्री वर्षा" हुई है। यही नाम है पत्रिका का! गुजराती भाषा में पहले से ही निकल रही ये नई हिंदी पत्रिका देखते-देखते मुंबई के साहित्यिक परिदृश्य पर भी छा गई है।

श्रीवर्षा एक टैब्लॉयड अखबार की तरह निकलने वाली पत्रिका थी जिसकी कहानियों में कमलेश्वर की दृष्टि का

जादू सर चढ़ कर बोलता था। मेरी एक कहानी 'बोलो' उसी में छपी। लेकिन न जाने क्यों, यह पत्रिका हिंदी में ज्यादा लंबे समय तक नहीं चल पाई। जबकि इस पत्रिका के पीछे एक बेहद समृद्ध गुजराती व्यावसायिक परिवार था। तब साहित्यिक हलकों में दबी जुबान से ये चर्चा होती थी कि शायद कमलेश्वर की नज़र कहीं और है इसलिए वे श्रीवर्षा से उस तल्लीनता से नहीं जुड़ पा रहे हैं जिसकी दरकार उस पूंजीपति परिवार को रही होगी जो उसका वित्त पोषण कर रहा था। बहरहाल, बाद में दुनिया ने ये भी देखा ही कि कोई एक किनारा कमलेश्वर की नाव को हमेशा के लिए कभी भी नहीं बांध पाया।

कमलेश्वर ने डॉ. धर्मवीर भारती की तरह अपना कोई परिचयात्मक मुहावरा नहीं गढ़ा। जिस तरह भारती जी धर्मयुग के पर्याय बने और धर्मयुग भारती जी का पर्याय बना वैसा कोई अकेला किला कमलेश्वर के नाम नहीं है।

मैं याद करता हूँ कि 'सारिका' का नया अंक आया है। उसमें कहानी छपी है मेरी। मैं कुछ मित्रों को पृष्ठ खोल-खोल कर दिखा रहा हूँ। लेकिन लगता है कि कोई प्रभावित नहीं है। कोई उसे गंभीरता से नहीं ले रहा है, बस मैं अकेला अभिभूत हूँ। और तब मेरे एक मित्र संजीदगी से कहते हैं सारिका में कहानी छपना तो तब बड़ी बात मानी जाती थी जब उसके संपादक कमलेश्वर थे। मेरे चेहरे पर मायूसी है गोया कहने वाले श्रीमान कहानियों के कोई पहुंचे हुए उस्ताद हों और अब पत्रिका के संपादक के बदल जाने से उसके ज़माने के तमाम लिखने वाले बेकार हो गए हों। चाहे उस समय मुझे या मेरी कहानी को अंडर एस्टीमेट करने का मित्र का यह खुरदरा प्रयास मुझे नागवार गुजरा हो लेकिन सच यही था कि जिस जहाज से कमलेश्वर नाम का कप्तान जब भी उतर कर चला गया तब जहाज की प्रामाणिकता और स्तरीयता संदेह के घेरे में आ ही गई। और आश्चर्य की बात ये कि कप्तान का रुतबा कभी कम नहीं हुआ बल्कि और भी बढ़ कर ज़माने पर और भी सघन होकर ही छाया। देर-सवेर वह पत्रिका डगमगा कर हिचकोले खाती ही दिखाई देने लगती थी जिससे कमलेश्वर ने मुंह मोड़ लिया हो। अपवादस्वरूप भी कोई पत्रिका शायद ही हो, लेकिन मज़े की बात ये है कि कमलेश्वर का यह बदलाव कभी भी, कहीं भी उनकी नाकामयाबी के रूप में दर्ज़ नहीं है। क्योंकि वह असफलता थी ही नहीं। कमलेश्वर का कद और उनका साया इस तरह बढ़ता चला गया कि अंततः ये तमाम मुकाम उन सीढ़ियों की तरह दिखाई देने लगे जिन्हें मंज़िल नहीं, बल्कि रास्ता कहा जाता है। इन सब अनुभवों और प्रयोगों ने कमलेश्वर को मानस समृद्ध ही किया। ये सब उनकी प्रयोग शालाएं बन कर रहीं।

मैं याद करता हूँ जुहू के 'कथा यात्रा' के दफ़्तर में एक बड़ी सी खाली कुसी रखी है। कुर्सी कमलेश्वर की है। पीछे एक शफ्फाक सा टॉवल लटका है जिसकी सफेदी मानो शिकायत कर रही हो कि उसके साहेब यहां बहुत कम आते हैं। केबिन के बाहर एक स्टूल पर जो नवयुवक बैठा है वो देखते-देखते मुंबई का एक अच्छा-खासा कहानीकार बनने की प्रक्रिया में है— राइटर इन मेकिंग! पास ही बड़ी सी मेज़ पर बैठे सुदीप मुझसे कह रहे हैं कि तुम्हारी कहानी रख ली है पर कमलेश्वर जी कह रहे थे कि वैसी नहीं है जैसी श्रीवर्षा में छपी थी।

वो मुंबई के कहानीकारों के लिए कन्फ्यूज्ड होकर रहने के दिन थे, क्योंकि कमलेश्वरजी की कहानियां भी नाम बदल रही थीं, चोला बदल रही थीं। 'काली आंधी' अब आंधी हो रही थी, 'आगामी अतीत' मौसम होने लगी थी। लेकिन कहीं कोई गफ़लत या हुज्जत नहीं थी, क्योंकि उनकी कहानियों पर बनने वाली फ़िल्मों की पटकथाएं भी कमलेश्वर खुद ही लिख रहे थे। प्रेमचंद या अमृतलाल नागर जैसा असंतोष भी कहीं नहीं था, कि कहानी में तोड़-मरोड़ कर दी गई हो या मूल कहानी की आत्मा से छल किया गया। कमलेश्वर अपने उपन्यासों पर बनने वाली फ़िल्मों की पटकथाएं तो स्वयं लिख ही रहे थे, साथ में कई शुद्ध फिल्मी

कथानक भी एक सिलसिलेवार ढंग से उनकी कलम से निकलने लगे थे। एक तरह से कमलेश्वर ऐसे पहले कलमकार सिद्ध हो रहे थे जो फिल्म जगत में अपनी शर्तों पर काम कर रहे थे। वे बिल्कुल खुले तौर पर फ़िल्मों में लिखने लगे थे जबकि उनसे पहले अधिकांश छोटे-बड़े लेखक अनमने, छिपे ढंग से या आर्थिक मजबूरी के चलते इस उद्योग में दखल देते रहे थे।

मुख्य रूप से कमलेश्वर और डॉ. राही मासूम रज़ा, ये दो लोग ही कामयाबी के उस झंडे को उठाए हुए थे जिसे खालिस साहित्यकारों की गौरव पताका होने का दर्जा प्राप्त था। इनमें भी रज़ा साहब तो राजनीति के उछाले हुए छींटे अपने दामन पर लिए मुंबई आए थे। पूरी तरह कमान अपनी मनमर्जी से अपने अख्तियार में रखने वाले तो शायद कमलेश्वर अकेले एकमात्र ही थे।

मैं उन दिनों कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' और 'मांस का दरिया' से बहुत प्रभावित था क्योंकि अपने दफ्तर से रात को अपने कॉलेज जाते हुए मुझे समय बचाने के लिए एक ऐसे शॉर्टकट से गुजरना पड़ता था जो ग्रांट रोड में सरेशाम बहने वाले मांस के दरिया से गुज़रा करता था। मुझे जाने-अनजाने लोहे के जंगलों के पार से ऐसी असंख्य रानियों के दीदार करने पड़ते थे जो दर्जनों राजाओं के वंश नालियों में बहा दिया करती थीं, क्योंकि उन्हें अगले दिन की रोटी कमाने के लिए फिर अपने बदन की ज़रूरत होती थी। शायद इसीलिए तब फ़िल्मों में ऐसे गीत लिखे जाते थे। 'हर छोरी रानी यहां हर छोरा राजा, फिर भी कभी बजे नहीं यहां बैंड बाजा'!

जलती रेल अर्थात 'द बर्निंग ट्रेन' तक आते-आते कमलेश्वर जी फिल्मी लेखक के तौर पर ही ज़्यादा पहचाने जाने लगे थे और उनके साथी-अनुयायी साहित्यकार चाहे उत्सुकता वश या ईर्ष्या वश ये कहने लगे थे कि कोई धर्मयुग या सारिका जैसे मुकाम तभी छोड़ता है जब उसकी मंजिलें कहीं और हों, लेकिन नहीं! कमलेश्वर ने कभी कोई मुकाम न तो छोड़ा, और न उससे बंध कर रहे। क्योंकि वो कमलेश्वर थे। लोग उन्हें 'कलमेश्वर' भी कहने लगे थे। ध्यान दीजिए, कलम का ईश्वर।

'कितने पाकिस्तान' कमलेश्वर की उस विशद दृष्टि का हासिल था जिसने उनके भीतर बसे साहित्यकार को हर स्थिति-परिस्थिति में जिला, रखा। इस पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी हासिल हुआ, लेकिन कमलेश्वर अपनी ज़ुबान से ही अपने उस उपन्यास का किस्सा भी बयान करते थे जो एक बड़े प्रकाशक के चयन अड्डूर में बारह बरस तक उपेक्षित पड़ा रहा। बाद में छपा और जब छपा तो लोगों ने कहा कि 'एक सड़क सत्तावन गलियां' कोई कमलेश्वर ही लिख सकता है।

सचमुच कमलेश्वर को कोई ठीहा-ठिकाना रोक नहीं पाता था अगर वे खुद वहां रहना न चाहें।

एक किस्सा तो उन्होंने पुणे में एक बार खुद हमें सुनाया था। उन्होंने बताया, वे तब दूरदर्शन के महानिदेशक थे। हरियाणा राज्य विधानसभा के चुनाव होकर चुके थे। जिस दिन वोटों की गिनती हुई उस दिन शाम के समय उनके पास एक राजनैतिक दल के बड़े कद्दावर नेता का फ़ोन आया कि हमारी पार्टी को बहुमत मिल गया है, ये समाचार शाम सात बजे की न्यूज़ में चलवा दीजिए। कमलेश्वरजी ने पूरी विनम्रता से उनसे कहा कि हमारे पास उपलब्ध जानकारी के अनुसार आपकी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला है। उसे अभी चार और सीटों की ज़रूरत है। नेताजी ने कहा छह निर्दलीय विधायक भी जीते हैं, वो हमारा साथ दे रहे हैं। कमलेश्वर बोले यदि ऐसा है तो उनकी सहमति के जो पत्र आपको मिले हैं वो हमें फैक्स करवा दीजिए। हकीकत ये थी कि उनकी पार्टी को तब तक केवल दो ही लोगों के सहमति पत्र मिले थे। दो की कमी अब भी थी। पर उन्होंने दबाव डाला कि हम सात बजे के समाचार में ये खबर चला दें। न चाहते हुए भी हमें बिना सबूत के ये खबर प्रसारित करनी पड़ी कि चार निर्दलीय

विधायकों के समर्थन दे देने से उन्हें बहुमत मिल गया है। इसका नतीजा यह हुआ कि जिन विधायकों ने अब तक समर्थन नहीं दिया था वो भी ये सोच कर उनके साथ आ गए कि सरकार तो इनकी बनेगी ही। और नौ बजे की खबर में सचमुच सरकार बन गई। इस तरह कमलेश्वर ने बेमन से ही सही, पर दबाव में उनकी सरकार बनवा दी। किंतु इसके अगले ही दिन महानिदेशक के चोले के भीतर साहित्यकार कमलेश्वर के ज़मीर ने ज़ोर मारा और कमलेश्वर ने पद छोड़ने का मानस बना लिया। इस तरह लेखक, कहानीकार के स्वाभिमान ने अफ़सर की अवसरवादिता पर जीत दर्ज की।

मुझे कई साल तक कमलेश्वर जी को जानने का एक और बेहद प्रामाणिक व विश्वस्त सूत्र सहज ही हासिल रहा। मैं मुंबई में लंबे समय तक कहानी की पत्रिका "कथाबिंब" से भी जुड़ा रहा। इस पत्रिका के प्रकाशक माधव सक्सेना हैं जो गायत्रीजी (कमलेश्वर जी की धर्मपत्नी) के सगे भाई हैं। ऐसे में मुझे उनके पारिवारिक सरोकार भी यदा-कदा जानने को मिलते रहते थे। अपनी युवावस्था का ज़िक्र इसलिए कर रहा हूँ, क्योंकि वो उम्र बिना सोचे-समझे कुछ भी कह देने की होती है) के दिनों में मैंने एक बार अरविंद जी से कहा, आप जीजाजी (कमलेश्वर) की कहानी या साक्षात्कार अपनी पत्रिका में क्यों नहीं छापते? वे बोले अरे वो हमको कुछ समझते कहां हैं! घर की मुर्गी दाल बराबर।

बात आई गई हो गई। हां, इतना जरूर हुआ कि बाद में कथाबिंब ने उसमें छपने वाली कहानियों में से ही एक श्रेष्ठ कहानी को चुनकर उस पर कमलेश्वर स्मृति पुरस्कार देना ज़रूर शुरू कर दिया। आज के कई स्थापित कहानीकारों के परिचय वृत्त में ये लिखा हुआ मिलता है कि उन्हें कमलेश्वर स्मृति सर्वोत्तम कहानी के पुरस्कार से नवाजा गया। अपने बाद के दिनों में कमलेश्वर के पास मानो जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों का एक ज़खीरा इकट्ठा हो गया था और उसे अपने श्रोताओं से बांटने में भी उन्होंने कोई कोताही नहीं बरती। वे अपने अनुभव जन्य व्याख्यानों के लिए देश भर में बुलाए जाने लगे थे और इस तरह यात्राओं का एक अनवरत सिलसिला उनसे जुड़ गया था। वे केवल साहित्य ही नहीं बल्कि दर्शन, राजनीति, संस्कृति, नवाचार, प्रबंधन और पत्रिकारिता पर भी साधिकार बोलने लगे थे। उन्हें श्रोताओं से अपने अनुभव बांटना अच्छा लगता था।

एक छोटी सी बात उनके संदर्भ में पाठकों को और जाननी चाहिए। एक बार माधुरी पत्रिका के एक संवाद दाता ने उनसे पूछा हमने सुना है कि आप अब एक साथ कई फ़िल्मों की पटकथाएं लिख रहे हैं।

कहा जाता है कि आपके पीछे रखे रैक में कई बॉक्स फाइल्स रखी रहती हैं और आप उनमें से कोई भी उठा कर उस पर काम करने लग जाते हैं। ये कोई शिकायत नहीं, बल्कि हैरानी की बात है कि आप अलग-अलग कथानकों को एक साथ बढ़ाने की तन्मयता कैसे लाते हैं। कमलेश्वर बोले, फ़िल्म निर्माण एक खर्चीला उद्योग है जिसमें टीम वर्क भी है और करोड़ों का निवेश भी।

जब जिस फिल्म की शूटिंग तय होती है, उसके समय से सामंजस्य बना कर चलना होता है। ऐसे में ज़रूरत के हिसाब से काम करना पड़ता है। ये बात कमलेश्वर को उन तमाम बड़े साहित्यकारों से अलग करती है जो साहित्य को फ़िल्म की तुलना में परिष्कृत और श्रेष्ठ मानते हुए फिल्म वालों से खिन्न रहा करते थे।

उनसे बात कर रहे पत्रकार महाशय बोले, हमने सुना है कि आप अपनी कहानी में कई लेखकों का सहयोग भी ले लेते हैं। उन्हें दृश्य बांट देते हैं, जिन्हें वो डेवलप करके लाते हैं। कमलेश्वर हंसे। फिर बोले, हां मैं ऐसा करता ज़रूर हूँ मगर अपने लिखे में किसी और का लिखा कभी नहीं जोड़ता। केवल अपनी तसल्ली इस बात से करता हूँ कि मैं जो सोच रहा हूँ, दूसरे उस पर कैसे सोचते हैं? उनकी ये प्रयोग शीलता ही शायद उनकी सफ़लता का एक बड़ा कारण रही।

सब जानते हैं कि कमलेश्वर की फ़िल्में ही नहीं, बल्कि उन्होंने टीवी के लिए जो कार्य किए वे अपने आप में मौलिक और अनूठे हैं। "परिक्रमा" के माध्यम से कमलेश्वर का इस माध्यम का कौशल पूरे देश के समक्ष आया। उनके "परिक्रमा" कार्यक्रम ने लोकप्रियता के मानदंड स्थापित किए।

कहा जाता है कि कोई भी सृजन किसी मस्तिष्क की एकांतिक यात्रा होती है जिसे कोई लेखक अपने सर्वाधिक उर्वर क्षणों में कागज़ पर उतारता है किंतु प्रयोगधर्मा कमलेश्वर के नाम वह अनूठा प्रयोग भी दर्ज़ है जब उन्होंने अपने अभिन्न मित्रों राजेंद्र यादव और मोहन राकेश या अन्य समकालीनों के साथ मिलकर एक ही कथानक को आगे बढ़ाया।

एक संयोग ऐसा भी रहा कि कमलेश्वर के जन्मस्थान और मेरे अपने जन्मस्थान में चंद किलोमीटर का फासला ही रहा। फ़िर उन्हीं की तरह मेरा कार्यक्षेत्र भी दिल्ली और मुंबई रहा। और बाद में वह दैनिक भास्कर अख़बार से सलाहकार संपादक के रूप में जुड़ कर राजस्थान भी आने-जाने लगे जो दो प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के प्रशासन से जुड़ कर मेरा भी कार्यक्षेत्र हो गया।

उनके अख़बार के सलाहकार संपादक हो जाने के बाद भी जिन लोगों का वास्ता उनसे पड़ा वो इस बात पर हैरानी जताते थे कि साहित्यकार कमलेश्वर और पत्रकार या प्रबंधक कमलेश्वर बिल्कुल अलग-अलग शख्सियत हैं। उनमें बड़े साहित्यकारों वाला वीतराग या तन्मयता तब थोड़ी देर के लिए ओझल हो जाती थी, जब वो जन-सरोकारों के सवाल लेकर अख़बार की अपनी मेज पर होते थे। उनकी सरलता, सादगी, जिज्ञासा और जनपक्षधरता ऐसे में और भी मुखरा, और भी चपला हो गुजरती थी।

कमलेश्वर से अपनी आख़िरी मुलाकात का जिक्र जरूर करूंगा।

ये उनके महाप्रस्थान से ज़रा ही पहले की बात है। मैं राजस्थान के एक आवासीय महिला विश्वविद्यालय में प्रशासन और जनसंपर्क का कार्य देख रहा था। हमने कमलेश्वरजी को व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया था। दोपहर को उनका बहुत महत्वपूर्ण लेक्चर हुआ।

विद्यार्थियों ने उनसे खूब खुल कर बातचीत भी की। शाम को यूनिवर्सिटी की कुछ महिलाएं मेरे पास आईं और बोलीं, ''हमें कमलेश्वर से मिलना है। कमलेश्वर के ठहरने की व्यवस्था हमने यूनिवर्सिटी गेस्टहाउस के वीआईपी कक्ष में की हुई थी जहां प्रशासन की पूर्व अनुमति के बिना कोई शिक्षक या विद्यार्थी जा नहीं सकता था। मैंने तत्काल अपनी कार निकाली और स्टाफ की ही उन प्रोफेसर्स को साथ लेकर गेस्ट हाउस की ओर चल पड़ा। वहां पहुंच कर मैंने उन सबको बाहर ही ठहरने के लिए कहा और अकेला ही कमलेश्वर के कमरे में गया।

हम लोगों के आने का प्रयोजन जानने के बाद कमलेश्वर की खरखरी दमदार आवाज़ ने अपनी टोन को बेहद स्निग्ध बना लिया। लेकिन मैंने साथी महिलाओं को अपने साथ भीतर नहीं बुलवाया, बल्कि बाहर निकल कर मैंने उन सभी महिलाओं के सामने एक बड़ा झूठ बोला। मैंने कहा, ''वो सो गए हैं क्योंकि उन्हें सुबह जल्दी ही निकलना है।'' यद्यपि मेरे कुछ लेखक मित्र आज भी मुझसे यही कहते हैं कि तुम ढलती सांझ में उनके कक्ष में गए ही क्यों? झूठ तो तुम्हें खुद अपनी गलती के कारण ही बोलना पड़ा।

बात जब कमलेश्वर की हो तो क्या सोचना। बार-बार थोड़े ही होते हैं कमलेश्वर!!!

जिन्हें अनदेखा कर दिया गया : आचार्य जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'

डॉ. सुशील त्रिवेदी

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल से आधुनिक काल में प्रवेश एक क्रांतिकारी घटना है। आधुनिक काल के प्रारंभिक वर्षों में हिन्दी कविता राजदरबार से निकल कर जनपथ पर आ गयी, गद्य का विकास हुआ, पत्र-पत्रिकाओं का प्रसार हुआ और आधुनिक समीक्षा पद्धति का प्रारंभ हुआ। युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप स्वतः को नये प्रसंगों से सम्बद्ध करने की अनिवार्यता के कारण साहित्य-ाास्त्र के मानदण्ड परिवर्तित होते रहते हैं। हिन्दी के आधुनिक काल के प्रथम चरण का साहित्य-शास्त्र रीति कालीन परम्परा से जुड़ा हुआ है। इस काल के साहित्य-शास्त्रीय ग्रन्थों की महत्ता इस दृष्टि से आंकी जा सकती है कि उसके नये युग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया गया है या नहीं। अधिकांश इतिहासकारों और समीक्षकों ने इन प्रारंभिक प्रयत्नों को प्रायः अनदेखा कर दिया है। इस 'अनदेखेपन' के कारण ही उस काल की कुछ उल्लेखनीय कृतियां उपयुक्त सम्मान नहीं पा सकीं। आचार्य जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थ इसी कोटि में आते हैं।

आधुनिक काल में साहित्य शास्त्र के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों में पश्चिमी तत्वों की स्वीकृति क्रमशः अधिक होती गयी। पूर्व स्थापित भारतीय मानदण्डों के आधार पर समीक्षण कम होता गया। साहित्य शास्त्र के इस नये स्वरूप में समाज शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक तत्वों के सूचक बिन्दुओं का बहुत महत्व है। भानुजी के साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों में ये बिन्दु पहली बार उभर कर आये। उनसे पहले रचित ग्रन्थों में निश्चयः संस्कृत की परम्परा का दृष्टिकोण ही किया जा रहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्यशास्त्र परम्परा के अध्ययन में आचार्य भानु के ग्रंथ 'छन्दः प्रभाकर' और 'काव्य-प्रभाकर' का उल्लेखनीय महत्व है। भानुजी ने दो दर्जन से अधिक ग्रन्थों की रचना की किन्तु इन दो कृतियों द्वारा उनके आचार्यत्व की प्रतिष्ठापना होती है।

श्री भानु हिन्दी के सर्वप्रथम विद्वान हैं जिन्हें सन् 1940 में भारत के तत्कालीन वाइसराय ने 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया था। उनसे पूर्व यह सम्मान केवल संस्कृत के ब्राह्मण विद्वान को ही मिलता था। इसी प्रकार सन् 1942 में उन्हें महात्मा गांधी, डॉ. जार्ज ग्रियर्सन, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. गौरीशंकर ओझा, बाबू श्यामसुन्दर दास तथा श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के साथ 'साहित्यवाचस्पति' की सम्मानित उपाधि से अलंकृत किया गया था। इतना होने पर भी हिन्दी के इतिहास-ग्रन्थों तथा शोध प्रबन्धों में आचार्य भानु की स्थिति 'मानस की उर्मिला' जैसी है।

जीवन-रेखाएं

आचार्य भानु का जन्म 8 अगस्त, 1859 को नागपुर में हुआ था। आपके पिता श्री बखीराम भोंसले सेना में सेवा करते थे। वे कवि थे। उनके द्वारा रचित 'हनुमन्नाटक' को पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई थी। भानुजी की औपचारिक शालेय शिक्षा बहुत ही कम हुई थी, किन्तु उन्होंने स्वाध्याय से संस्कृत, हिन्दी, मराठी, उड़िया, प्राकृत, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी भाषाओं तथा उनके साहित्य का गहन अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने धर्म-दर्शन, गणित तथा काल विज्ञान का भी गम्भीर रूप से अध्ययन किया था।

सन् 1875 में उन्होंने रायपुर में मोहर्रिर के पद पर से अंग्रेज शासन के अधीन सेवा प्रारम्भ की और वे प्रतिभा तथा समर्पण से कार्य करते हुए अतिरिक्त सहायक आयुक्त (उप जिलाधीश) के पद तक पदोन्नत हुए। इसी पद से वे सन् 1912 में सेवानिवृत्त हुए। इस बीच वे बिलासपुर, खण्डवा, वर्धा, सागर तथा सम्बलपुर जिलों में पदस्थ रहे। सेवानिवृत्त होकर वे बिलासपुर में रहने लगे। यहां उन्होंने स्त्री शिक्षा प्रसार तथा सहकारी आन्दोलन प्रारंभ किया। उन्हें बिलासपुर जिले में 'सहकारी आन्दोलन का जनक' कहा जाता है।

अंग्रेजी शासन के राजस्व विभाग के यांत्रिक तथा उबा देने वाले वातावरण में कार्य करते हुए भी भानुजी महान

साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना करते रहे। प्रशंसक के रूप में उन्हें ख्याति और सम्मान मिला, जिसका प्रमाण है तत्कालीन शासन द्वारा प्रदत्त 'सर्टिफिकेट ऑफ ऑनर' कारोऩोन मैडल' सेवानिवृति पर आनरेरी मजिस्ट्रेट का पद और राय बहादुर का खिताब। साहित्य जगत की परम प्रेरणोत्पादक ज्योति के रूप में उन्हें मान्यता मिली, जिसका प्रमाण है- 'महामहोपाध्याय' 'साहित्य वाचस्पति' जैसी अनेक उपाधियां। भानुजी कर्मठ साहित्य सेवी की भांति जीवन के अंतिम क्षणों तक साहित्य साधना करते रहे। 25 अक्तूबर, 1945 को उनके निधन से हिन्दी साहित्य का एक आलोक पुंज बुझ गया।

व्यक्तित्व-रंग

भानुजी के व्यक्तित्व में विविध विरोधी तत्वों का अद्वितीय रमणीय समाहार हुआ है जो उनकी समन्वयात्मक-समाहारात्मक दृष्टि का परिचायक है। भानुजी ने ब्रिटिश सरकार की सेवा पूरे भक्तिभाव और कर्तव्यनिष्ठा से की किन्तु इस ओर ध्यान रखा कि उनके कार्यो से ऩेदी जनता का हित सिद्ध हो। शासकीय सेवा करते-करते उन्होंने साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने बिना औपचारिक शिक्षा के अनेक भाषाओं, साहित्य तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। वैष्णव धर्म का पालन करते हुए उन्होंने आधुनिकता को अपनाने के लिए ब्रह्म समाज में दीक्षा ली। अपने ग्रन्थों में भी उन्होंने पौर्वात्य और पाश्चात्य दृष्टियों का समाहार करने का प्रयत्न किया है। भानुजी की दिनचर्या, वेशभूषा, कार्यप्रणाली, आचार व्यवहार सभी में यह समन्वय उभरा हुआ दिखता है। भानुजी के व्यक्तित्व का एक और दृष्टव्य पक्ष है—सिद्धांत तथा व्यवहार में अद्वैत। वे जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन करते थे, उनका व्यवहार भी करते थे। चाहे ये सिद्धांत शासकीय नियम से सम्बद्ध हों या सामाजिक विधि से अथवा साहित्य परंपरा से।

कर्तत्व-परिचय और समीक्षा

भानुजी को प्रारम्भिक ख्याति कवि के रूप में मिली थी। उनकी पैतृक सम्पत्ति कविता ही थी। वे मनीषी थे, अर्जित ज्ञान और गम्भीर अध्ययन द्वारा उन्होंने अपनी प्रतिभा का आत्यंतिक विकास किया था। उनकी प्रारम्भिक कृतियों से तत्कालीन विद्वत समाज बहुत प्रभावित हुआ था और सन् 1885 में उन्हें 'भानु' की उपाधि मिली।

'छन्दःप्रभाकर' भानुजी की सबसे पहली कृति है जिसकी रचना सन् 1893 में हुई और प्रकाशन सन् 1894 में (अनेक ग्रन्थों में ये तिथियां गलत दी हुई हैं)। इस ग्रन्थ में हिन्दी छन्दशास्त्र का पहली बार विस्तृत, सुचिंतन और वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। इसमें छन्द लक्षण, मात्र वर्ण, प्रत्यय, छन्दों के वर्गीकरण, भेदों का विशद वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं। इसमें छन्दों की परिभाषा नियत की गयी जो पारंपरिक छन्दों के लिए आज भी वैज्ञानिक रूप से सत्य है। इसमें छन्दशास्त्र शब्दावली के 100 से अधिक पदों को स्पष्ट किया गया है। और छन्द रचना के लगभग 400 नियम प्रदर्शित किये गये हैं। गद्य के प्रयोग के कारण इसमें गम्भीरता और विश्लेषणत्मक वैज्ञानिकता आ गयी है। इसके अतिरिक्त, जिस छन्द का वर्णन किया गया है उसके लक्षण तथा उदाहरण उसी छन्द में बताये गये हैं। यथा चौपाई के लक्षण चौपाई छन्द में ही बताये गये हैं। इस तरह वह छन्द एक साथ लक्षण तथा उदाहरण दोंनों का ही कार्य सिद्ध करता है। साथ में सुकवियों की रचनाओं के उदाहरण भी दिये गये हैं। स्थान-स्थान पर संस्कृत, मराठी तथा उर्दू के छन्दों का हिन्दी छन्दों के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है परवर्ती संस्करण में भानुजी ने तुकान्त का अध्ययन भी इसमें संलग्न कर दिया और उर्दू, फारसी के छन्द शास्त्र का हिन्दी शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन किया। इस सन्दर्भ में उनके निष्कर्ष ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय महत्व के हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि फारसी के अरकान को उर्दू में ग्रहण किया गया है और उर्दू के बहर हिन्दी के मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत आ जाते हैं। भानुजी ने अंग्रेजी के 'मीटर' (छन्द) का भी हिन्दी के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया है। इसके साथ-साथ उन्होंने हिन्दी छन्दों का अंग्रेजी में संक्षिप्त रूप में स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत किया है। शास्त्रीय दृष्टि से इस ग्रन्थ के सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो बिन्दु हैं। पहला तो यह कि इसमें छन्द शास्त्र के गणित पक्ष का जितना विस्तृत और प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया

हें, वह न तो उसके पहले और न बाद में किया गया है। दूसरा यह कि भानुजी ने छन्दों का सम, अर्धसम और विशम तथा सम का साधारण और दण्डक के रूप में विभाजन कर जो वर्गीकरण किया है—वह पूरी तरह वैज्ञानिक विश्लेषण के रूप में है। उनके समान हिन्दी में इतना वैज्ञानिक अध्ययन किसी ने नहीं किया था। इस तरह भानुजी के इस ग्रन्थ में जहां छन्दशास्त्र की समस्त प्राचीन परम्परा का समाहार और विश्लेषण हो गया है वहां पहली बार हिन्दी के छन्द शास्त्र का नयी आवश्यकताओं के अनुरूप निरूपण भी हो गया है। छन्दःप्रभाकर के परवर्ती छन्द विषयक प्रायः समस्त ग्रन्थ उसी के आधार पर प्रणीत किये गये हैं।

सन् 1909 में 'काव्य प्रभाकर' का प्रकाशन हुआ। इस ग्रन्थ का लेखन सन् 1905 में सम्पन्न हो गया था (अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों में काव्य प्रभाकर की प्रकाशन तिथि सही नहीं दी गई है)। इस ग्रन्थ का प्रकाशन साहित्य जगत में एक ऐतिहासिक घटना है। 'काव्य-प्रभाकर' में पहली बार हिन्दी साहित्य शास्त्र को सर्वांग विवेचित किया गया है। छन्द, ध्वनिभेद, काव्य गुण, काव्य भेद, गद्य, पद्य, नाटक, संगीत, नायक-नायिका भेद, अनुभाव, उद्दीपन, संचारीभाव, स्थायी भाव, नौ-रस, अलंकार, काव्य दोष आदि विविध शास्त्रीय अंगों की गद्य के माध्यम से सम्पूर्णता के साथ व्याख्या की गयी है। इस ग्रन्थ में शब्द कोश तथा वाक्यकोश भी है। वाक्य कोश के रूप में पन्द्रह सौ लोकोक्तियों का संग्रह किया गया है। काव्य प्रभाकर में साहित्य शास्त्र के उस स्वरूप को देखा जा सकता है जो रीतिकाल से आधुनिक काल में संक्रमण कर रहा है। इसमें आगामी युग में विकसित, पल्लवित होने वाली शैली के प्रारंभिक स्वरूप को देखा जा सकता है। पाद टिप्पणी, सूचना, टिप्पणी, प्रश्नोत्तर आदि का आश्रय लेकर उन्होंने विवेचन की नयी शैली के विकास बिन्दुओं का परिचय दिया है। विद्वानों ने इस ग्रन्थ को प्राचीन काव्यशास्त्र का वृहदकोश कहा है किन्तु पूर्व आचार्यो के मतों का खण्डन-मण्डन कर भानुजी ने अपरी मौलिकतापूर्ण नवीन दृष्टि का परिचय भी दिया है। इस सन्दर्भ में सैद्धांतिक शब्दावली दृष्टव्य है। वह पूरी तरह से न तो संस्कृत की परम्परा का अनुमोदन करती है, न रीत्याचार्यों की भांति भ्रमजाल में भ्रमित होती है, और न ही पश्चिमी प्रभाव में पूर्णतः रंगी हुई है। वह यथार्थ में हिन्दी के निर्माणाधीन नये साहित्यशास्त्र की शब्दावली का प्राथमिक स्वरूप निर्दिष्ट करती है। यह कृति रीतिकालीन साहित्यशास्त्र परम्परा से आगे की रचना है। इसमें परम्परा ही नहीं आधुनिकता भी है।

भानुजी के अन्य साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में छन्दःप्रभाकर तथा काव्य-प्रभाकर में प्रस्तुत सिद्धांतों का अधिक विश्लेषणात्मक किन्तु सुगम अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ये कृतियां हैं—छन्दः सारावली, अलंकार प्रश्नोत्तरी, हिन्दी काव्यालंकार, रस-रत्नाकर, काव्य प्रबन्ध आदि और नायिका भेद शंकावली।

गोस्वामी तुलसीदास को भानुजी सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे और उनके ग्रन्थ सभी दृष्टियों से पूर्ण बतलाते थे। वे मानते थे कि तुलसीदासजी साहित्य शास्त्र के महान ज्ञाता थे। 'नव पंचामृत रामायण' भानुजी ने तुलसीदास जी के छन्दज्ञान को प्रदर्शित किया है और अलंकार दर्पण में अलंकार ज्ञान को। इसके अतिरिक्त, भानुजी ने 'तुलसी तत्वप्रकाश' और 'तुलसी भाव प्रकाश' नामक ग्रन्थों में 'मानस' के अनेक महत्वपूर्ण स्थलों को लेकर उनकी सैद्धांतिक तथा भावात्मक व्याख्या की है। 'रामायण वर्णावली' और रामायण-प्रश्नोत्तर माला 'स्फुट कृतियां हैं जिनमें मानस की अर्द्धनलियां संकलित की गई हैं। इस साहित्य के संबंध में यह कहा जा सकता है कि भानुजी ने मानस का समग्र रूप में अध्ययन करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। उनके इस अध्ययन में भक्त और भावुक कवि की दृष्टि को प्रधानता है। हां उनकी इस समग्र चेष्टा में अध्ययन की गम्भीर दृष्टि से सामंजस्य और समन्वय करने का आभास मिलता है।

भानुजी की गणित तथा काल विज्ञान संबंधी कृतियों

को भी बहुत सम्मान मिला है। इन कृतियों के अंक विलास, काल विज्ञान तथा काल प्रबोध बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस संबध में कुछ अन्य कृतियां अंग्रजी में भी हैं।

'तुम्हीं तो हो' तथा 'जय हरि चालीसी' भानुजी द्वारा भक्तिभाव से लिखी गई काव्य रचनाएं हैं, जय हरिचालीसी का मराठी अनुवाद भी उन्होंने किया था। उन्होंने छत्तीसगढ़ी में नवदुर्गा के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का संकलन -सम्पादन शीतला माता भजनावली में किया है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, भानुजी कई भाषाओं के ज्ञाता थे। वे फैज़ उपनाम से उर्दू में कविता किया करते थे। गैलजारे फैज़ में उनकी उर्दू रचनाएं संगृहीत हैं, जो शृंगार प्रधान हैं। उन्होंने 'गुलजारे सखुन' में उर्दू के प्रसिद्ध रचनाकारों के पदों का संग्रह किया है ओर उर्दू रचना-पद्धति का परिचय दिया है।

साहित्य प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं के महत्व को ध्यान में रखकर उन्होंने दो साहित्यिक मासिक पत्रिकाओं का भी प्रकाशन किया था। इनमें से 'काव्य कला निधि का प्रकाशन मिरजापुर से और 'काव्य सुधा निधि' का जबलपुर से प्रकाशन हुआ था। विभिन्न असुविधाओं के कारण ये दो साल चलकर बन्द हो गयीं।

भानुजी ने किसी नये वाद या नये शास्त्र की उद्‌भावना नहीं की किन्तु हिन्दी छंदशास्त्र को सबसे पहली बार उपयुक्त रीति से व्यवस्थित करने, उसे वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करने तथा युगानुकूल परिष्कृत करने के कारण और हिन्दी साहित्य शास्त्र का सबसे पहली बार आधुनिकता की ओर बढ़ती हुई शैली में सर्वांग विवेचित करने के कारण भानुजी का प्रदेय अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से बिल्कुल भिन्न कोटि का है। उनमें उद्‌भावक और व्याख्याता आचार्यो के गुणों का अद्‌भुत समन्वय है। भारतेन्दु युग और उसके बाद खड़ी बोली को साहित्यिक आधार प्राप्त हो गया था, किन्तु उसे शास्त्रीय आधार प्राप्त नहीं था। भानुजी ने 'छन्दःप्रभाकर' और 'काव्य प्रभाकर' के माध्यम से उसे शास्त्रीय आधार देने का उपक्रम किया। इस सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि आज की कविता का लयात्मक तथा रूपात्मक विवेचन करने की दृष्टि से भी 'छन्दःप्रभाकर' का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता है और उसकी प्रासंगिकता की परीक्षा की जा सकती है। रीतिकाल के तुरन्त बाद आधुनिक काल में साहित्यशास्त्र को हिन्दी कविता और गद्य के अनुकूल विकसित करने और व्याख्यापित करने की दृष्टि से भानुजी का प्रदेय महत्वपूर्ण है। वे एक अन्तदृष्टि सम्पन्न समीक्षक थे। हिन्दी साहित्य शास्त्र में आधुनिकता का आनयन भानुजी के ग्रन्थों से प्रारम्भ होता है। उनके समकालीन या उनसे पूर्व के साहित्य शास्त्रियों के कृतित्व में वह विशदता या नवोन्मेषपूर्ण दृष्टि नहीं है जो भानु जी की कृतियों में हैं।

कविता

थर्मामीटर

किशोर दिवसे

माथे पर रखकर हथेली
चीख पड़ी थी माँ यकायक
उफ़! कैसे तप रहा है बदन
मेरे कलेजे के टुकड़े का!

फ़ौरन भागकर लाई वह
कबर्ड में रखा थर्मामीटर
102 डिग्री था बुखार तेज
एजी चलिए! ज़रा जल्दी
जल रहा है बच्चे का जिस्म
हो गए मिनटों में वे तैयार
थर्मामीटर रखने से पहले
वापस उस कबर्ड में
माँ को क्या नज़र आया था
गैलीलियो का चेहरा
जिस वैज्ञानिक ने किया था
थर्मामीटर का आविष्कार!

तर्क के योद्धा : दिखावा भरपूर यथार्थ से दूर

राजेन्द्र मोहन शर्मा

हम क्या पढ़ते हैं यही निर्धारित करता है हमारी सोच। इससे भी ज्यादा जरूरी यह है कि हम बच्चों को क्या पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं, क्योंकि इसी से निर्धारित होता है हमारे जीवन में आने वाले कल की रूपरेखा। आज हम अपने चारों तरफ जो कमअक्ली का जलालत भरा माहौल देख और झेल रहे हैं उसके पीछे एक बड़ा कारण यह भी है कि हमने अपनी अगली पीढ़ी को उनके हाल पर सोशल मीडिया और एन्टी सोशल मीडिया के हवाले छोड़ दिया है।

सरकारों की भूमिका वही पुलिस मैन वाली बरकरार है, अगर सोशियल मीडिया से परेशानी हुई तो उस पर घोषित, अघोषित बैन ठोक दो, भले ही इससे हजारों-लाखों लोगों की रोजी-रोटी खराब हो जाए भले ही इससे देश की अर्थव्यवस्था गर्त में बैठ जाए। सरकार भी क्या करे, जो समाज अफवाहों का चबीना करता हो। वाट्सएप पर कानून को चुनौती देता हो, अपनी रोटी की चिन्ता किए बिना दूसरों पर नुक्ता चिनी में मशगूल रहता हो और बिना सोचे-विचारे बिना ही बात आहत हो जाता हो और भीड़ की शक्ल अख्तियार करने को सड़क पर झुण्ड में तब्दील होकर खुद को फ़ना होने को मारा मारा फिरता हो उसे कौन समझाए।

समय रहते यदि हमने बच्चो के हाथ मे मोबाइल थमाने के साथ-साथ यदि दो-चार किताबें भी थमा दी होती तो आज के समय ये दिमाग़ी दिवालियेपन से शायद बच सकते थे। आज का नौजावन ऊर्जा से उतना ही भरा है जितना भरा होना चाहिए। अपने देश, समाज और संस्कृति के प्रति उसकी ललक और तड़प भी कम नही दिखती। पर उनका रास्ता आगे की ओर ना जाकर संदिग्ध रूप से दिशा विहीनता की ओर मुड़ गया है। यूं तो भूत के पांव पीछे होते हैं लेकिन प्रगतिशील पीढ़ी की दकियानूसी सोच देखिए, वे वहां खड़े हैं जहाँ भविष्य के पांव भी पीछे की ओर मुड़ रहे हैं। वह युवा जिसे भविष्य की रुनझुन के साथ कदमताल करनी थी वो मुर्दे उखाड़ रहा है गड्ढों में दबे बुत खोजने में समय जाया करते हुए, वह मुर्दा परस्त हो गया। शिवत्व की साधना को शव साधना ने अतिक्रमित कर दिया है। देश के युवा मोबाइल, कम्प्यूटर, लेपटॉप लेकर सायबर पर सवार होकर नवोन्मेषी नही बल्कि पाषाण युग से लेकर संकीर्ण मध्य युग में प्रवेश कर रहा है।

जिस तरह हमारे पुरखें घर मे गीता-रामायण ज़रूरी किताब की तरह रखते थे हमें भी अपने घर में भगत सिंह, राहुल सांकृत्यायन, मानवेन्द्र नाथ राय, बी आर अंबेडकर, पेरियार रामास्वामी और गांधी का साहित्य रखना चाहिए, ताकि कभी तो बच्चों की नज़र से वो गुज़रे और बच्चों के ज़ेहन में रोशनी का सफर जारी हो। शायद ये किताबें ही कुंद ज़ेहनी, कूप मंडुकता सहित कम अक्ली से हमारे भविष्य को बचाएंगी।

इन दिनों एक ऐसी ही किताब अभी अभी पढ़कर समाप्त की। 'तर्क के योद्धा' सम्पादक विद्या भूषण रावत प्रकाशक दानिश बुक्स। यह किताब भारत में मानव वादए भौतिकवाद, तर्क वाद की परम्परा को समझने में सहायक है। बाबा साहेब आंबेडकर, राहुल सांकृत्यायन, भगत सिंह, ज्योतिबा फुले, पेरियार, मानवेन्द्र नाथ रॉय के लेखों के साथ अंत मे कबीर, रविदास अवतार सिंह पाश, शैलेन्द्र, साहिर लुधियानवी की रचनाएँ संकलित हैं। इसमें संकलित लेख और रचनाएं हमारे विवेक को जागृत करते हुए सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करने को प्रेरित करती हैं। वे तर्क की भारतीय परंपरा की याद दिलाती हैं, ताकि हम और हमारी आने वाली पीढ़ी यह न समझे कि धर्म निरपेक्षता, वैज्ञानिक चिंतन हमारी भारतीय परंपरा का हिस्सा नहीं है।

आज हमें यथा स्थितिवाद के विरुद्ध तर्क और वैज्ञानिक

चिंतन से समाज को जोड़ना फौरन जरूरी है। बुद्ध के दर्शन से शुरू हुई बदलाव की धारा को मध्यकाल में कबीर, नानक और रैदास आदि ने विस्तृत किया। आधुनिक भारत में उसे ज्योतिबा फुले, पेरियार, बी. आर. अम्बेडकर, भगत सिंह, मानवेंद्र नाथ राय और महात्मा गांधी आदि ने आधुनिक सन्दर्भों और नवीनतम ज्ञान के साथ नवीन आयाम दिए।

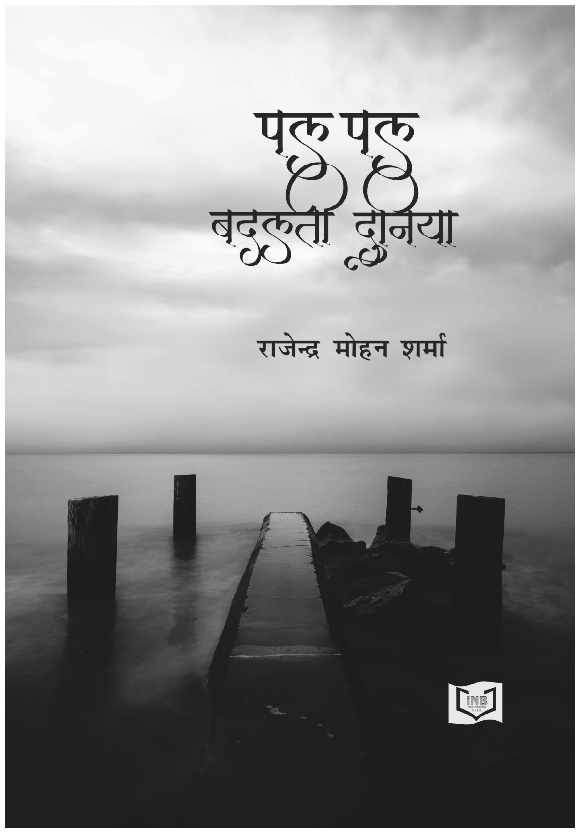

यह अंत नहीं हैं विचार, और चिंतन की धारा इसके भी आगे पहुंची है, पहुंचनी भी चाहिए, किन्तु वैज्ञानिक चिंतन के इन अग्रजों को पढ़ना और गुनना आगे पहुंचने के लिए अपरिहार्य रूप से सहायक है। सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन के आंध्र प्रदेश के विश्वविद्यालय के छात्रों की विदाई के समय दिए गए वक्तव्य को इस संदर्भ में देखिए—'हमें अपने निर्दयीऔर अन्यायी भूतकाल से हर हालत में छुटकारा पाना है।'

हम भूत-प्रेत, पिशाचों के उत्पीड़न, झूठ भ्रम और फरेब से छुटकारा पाएं। धर्म द्वारा पोषित सामाजिक विषमताओं ने लाखों लोगों का जीवन अर्थहीन बना दिया है। अगर वह ऐसे धर्म को सुविधा के रूप में छोड़ दें तो उन्हें माफ किया जा सकता है।

आगे उन्होंने ने बहुत ही दर्द भरी अपील की 'हमें हर कीमत पर आर्थिक और धार्मिक निर्दयता का सामना करना चाहिए और हर देशभक्त का कर्तव्य है कि वह इसका मुकाबला करें और अपने देश के हर क्षेत्र में स्वेच्छाचारी का और अत्याचार का विरोध करें। आप इसे किसी क्रांतिकारी के मुख से निकली विनाशकारी डींग कह कर नहीं टाला सकते, न ही उसे समाजवादी प्रचार की गैर जिम्मेदाराना बात कहकर टाल सकते हैं। यह एक महान चिंतक का मत है। उनके द्वारा बुराइयों की भर्त्सना हमारे सामाजिक वातावरण को दिशा देने की कोशिश है। किसी भी अतार्किकता को केवल सामाजिक और वैचारिक क्रांति से ही मिटाया जा सकता है।

पारंपरिक-दकियानूसी और अवैज्ञानिक विचारों को छोड़ना होगा। अंधविश्वासों को आलोचनाओं का विषय बनाना होगा। हमें समुन्नत भारत के सुनहरे भविष्य के लिए कट्टर और गैर जिम्मेदार राष्ट्रवादी गलाफाड़ू और प्रतिक्रियावादी दर्शन की जगह सुविचारित और सुक्रांतिकारी दर्शन को अपनाना होगा।

लोकतांत्रिक आज़ादी के प्रवक्ता, सांस्कृतिक प्रगति के प्रवक्ता, समाज सुधारक, वफादार मानवतावादी, सत्य अहिंसा प्रेम व शांति के पुजारी और वे सभी लोग जो सामाजिक समरसता को असलियत में आगे ले जाना चाहते हैं उन्हें इसी रास्ते पर चलना होगा। आज भौतिकवादी दर्शन माने

हैं अंधी और अतार्किक आस्था की जगह ज्ञान, जड़ता की जगह बुद्धि, अप्राकृतिक की जगह प्राकृतिक, अस्वाभाविक की जगह स्वाभाविक, मनगढ़ंत की जगह तथ्य और तर्कों को स्थापित करना होगा। यही सब मिलकर हमें न केवल राजनीतिक आजादी और आर्थिक सम्पन्नता तथा सामाजिक उत्कर्ष की ओर ले जाएंगे, बल्कि आध्यात्मिक सुचिता की ओर भी अग्रसर करेंगे।

इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के अहर्निश उपयोग/दुरुपयोग ने हमारी जीवन शैली को आमूलचूल प्रभावित और परिवर्तित कर दिया है। वैज्ञानिक तकनीक के द्वारा अंधविश्वास एवं पाखंड सुनियोजित तरीके से फैलाया जा रहा है। निश्चित तौर पर 'तर्क के योद्धा' जैसी पुस्तकें नई पीढ़ी का आजीवन मार्गदर्शन करेंगी। राहुल सांकृत्यायन की 'तुम्हारी क्षय', भगत सिंह की 'मैं नास्तिक क्यों' ज्योतिबा फुले की गुलामगिरी एवं कबीर, नानक, रविदास आदि संतो की रचनाएं निःसंदेह हमारी आंखे खोलती हैं। आज यही सबसे अधिक सामयिक और सटीक है, लेकिन वर्तमान में जैसा अन्तर्जाल बुना जा चुका है उस के चंगुल से निकलना आपके लिए आसान भी नहीं है। लेकिन वो सनातन समाज ही क्या जो पराजित या हताश हो कर बैठ जाए।

आज ही नहीं हमें निरन्तर भूख, भूमि, छुआछूत और जातीय उत्पीड़न, महिला अनाचार, धार्मिक विद्वेष, आय की भीषण असमानता और मानव गरिमा के सवालों को उठाते रहने की आवश्यकता है। आज के युवा को लगातार भ्रमणशील रहते हुए जनांदोलनों सहित व्यक्तिगत अपेक्षाओं और उपेक्षाओं पर नजर रखनी होगी।

आपको जो कुछ सार्थक हो रहा है उसमें योगदान देने की बहुत बड़ी आवश्यकता है तो नकारात्मक है उसे छोड़ना होगा। हमारे देश की सामान्य बस्तियों के बीच एक प्रेरणा केंद्र खुलें जहां पुस्तकालय, सांस्कृतिक प्रस्तुतियों हेतु मंच फिर सजे हों। बहस मुहासों के बीच शिक्षा, समझ के विकास के लिए काम करने की जरूरत है। बाबा साहब अम्बेडकर, फुले और गांधी, विवेकानंद, महर्षि अरविंद के विचारों के साथ सामाजिक परिवर्तन के लिए कार्यरत रहते हुए ही हमारी युवा पीढी को रूढ़ियों को नकारते हुए, विचारों की संकीर्णता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हुए आजकल के तमाम बहुजन विचारकों को परखना होगा।

वंचित समाज के लिए काम करते समय, जातीय पार्टियों का अंधभक्त बनना उतना ही घातक है, जितना फासिस्टों की गोदी में बैठना। बहुजनों की वैचारिकी में दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों सहित सबसे तारतम्य बनाने की जरूरत है। न कि समाज को जाट, ब्राह्मण, राजपूत, यादव, कुर्मी, कोइरी, राजभर, केवट, गोंड़, भील, संथाल में बंटने की।

जातीय नायकों को मात्र सामाजिक अगुवे के रूप में लेने की जरूरत है न कि उनके महिमामंडन की। यह महिमामंडन ऐसे लोगों को पौराणिक कथाओं के नायकों के समान गल्प में पहुंचा देता है जहां सामाजिक संघर्ष, रूढ़ियों में कैद होकर चाटुकारिता या निजी हितों में सिमट जाते हैं। स्मरण रहे जिस किसी देश और समाज नें बौद्धिक कसौटी पर निर्ममतापूर्वक तर्कों को कसौटियों पर परखना छोड़ कर अविवेकी अवसरों के साथ कदमताल किया है समझ लीजिए उसने स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है।

संवाद

खुद को खँगालना लेखन की पहली शर्त

पत्रकार एवं आलोचक डॉ. सत्यवीर सिंह की संतोष श्रीवास्तव से बातचीत

1. जन्म स्थल पारिवारिक परिवेश तथा शिक्षा आदि का संक्षिप्त परिचय दें।

उत्तर : 23 नवंबर को मंडला मध्य प्रदेश में माँ को अपार पीड़ा देकर पैदा हुई। वह कसक आज भी मेरे वजूद से टकराती रहती है। तब मेरे पिता गणेश प्रसाद वर्मा जिला मजिस्ट्रेट थे। हम बहुत बड़े सरकारी बंगले में रहते थे। बाबूजी ने जबलपुर से प्रशिक्षित डॉ. बुलवाए थे।

मेरा जन्म होते ही तीस पुलिसकर्मियों ने बंदूक चला कर सलामी दी थी। घर में अम्मा (श्रीमती सूरतवंती वर्मा) बाबूजी, बड़े भाई विजय वर्मा और छोटी बहन प्रमिला वर्मा सभी लेखक। मंडला से रिटायर होकर बाबूजी जबलपुर में एडवोकेट यानी प्राइवेट प्रैक्टिस ताउम्र करते रहे। अम्मा समाज सेविका थीं। जबलपुर की मेयर भी रह चुकी हैं। विजय वर्मा नवभारत में जो जबलपुर का दैनिक समाचार है, समाचार संपादक थे।

साथ ही नाट्यकर्मी भी। कवि-कथाकार तो थे ही। उनके द्वारा खेला गया नाटक 'मैन विदाउट शैडोज' जबलपुर में आज भी याद किया जाता है। परिवार में मैं पहली लड़की थी जिसने एम.ए. किया था। शादी के बाद मैंने B.Ed भी किया और पत्रकारिता का डिप्लोमा भी लिया। पत्रकारिता और लेखन जुनून हैं मेरे। पत्रकारिता की ओर झुकाव विजय भाई के कारण भी हुआ। नाटक, चित्रकला, नृत्यकला में भी अम्मा-बाबूजी ने हमें माहिर कर दिया था। बाबूजी स्त्री शिक्षा और स्त्री स्वतन्त्रता के हिमायती थे। यही वजह है कि हम बहनों में आत्मविश्वास और जिंदगी का सामना करने का हौसला कूट-कूट कर भरा है। अम्मा-बाबूजी स्वतंत्रता सेनानी भी रहे। यह सब हमारे जन्म से पहले की बातें हैं लेकिन उसका असर आज तक हमारे अंदर विद्यमान है।

2. आपके कृतित्व की संक्षिप्त रूपरेखा तथा उल्लेखनीय कार्य।

उत्तर : समाज की विसंगतियां, पितृसत्ता की कठोरता और लड़के लड़की में भेदभाव की घटनाएं मन को उद्वेलित करती थीं। बाबूजी का दफ्तर घर के बाजू में होने के कारण मैं ध्यान पूर्वक उनके मुकदमे सुनती। जिनमें स्त्रियों पर हुए अत्याचार की पराकाष्ठा का बयान होता था।

मैं स्कूल में सातवीं कक्षा में पढ़ती थी लेकिन मेरे अंदर का उबाल घटनाओं से प्रेरित होकर बाहर आने लगा। बचपना जरूर था लेखन में...उन दिनों की डायरी के पीले पड़ चुके पन्ने आज भी मेरे लेखन में घुसपैठ कर खुद को लिखवा लेते हैं मुझसे। मेरी पहली कहानी 16 वर्ष की उम्र में मुंबई से निकलने वाले प्रतिष्ठित पत्र धर्मयुग में प्रकाशित हुई तो आज तक पीछे मुड़कर नहीं देखा। पत्रकारिता मुम्बई से आरंभ हुई।

डेस्क वर्क करना नहीं था। फ्री लांस ही किया। उन दिनों मुम्बई लेखकों, पत्रकारों और प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन का गढ़ था। 'धर्मयुग' के संपादक डॉ. धर्मवीर भारती ने मुझे 'धर्मयुग; के लिए बाल मनोरोग का स्तंभ अंतरंग लिखने को दिया था। तब 'धर्मयुग' साप्ताहिक था, लेकिन अंतरंग हर पखवाड़े छपता था। इस स्तंभ को लिखने में मैंने बहुत मेहनत की।

मुझे मनोरोग स्पेशलिस्ट डॉक्टरों के पास जाना पड़ता था। जिनसे केस हिस्ट्री लेकर मैं लिखती थी। यह कॉलम बहुत चर्चित हुआ और लगातार दो साल तक चला। फिर स्त्री मनोरोग का स्तंभ भी मैंने साल भर लिखा। उन्हीं दिनों नवभारत टाइम्स में भी विश्वनाथ सचदेव ने मुझसे स्त्री विषयक स्तंभ मानुषी के लिए लिखवाया। भोपाल से निकलने वाली त्रैमासिक पत्रिका समरलोक में 'मेरा अंगना' कॉलम आज तक जारी है। यह कॉलम मैंने सन् 2000 में लिखना आरंभ किया था। इस कॉलम के लिए भी मैंने आंकड़े जुटाकर स्त्री-विषयक लेख लिखे। जिनका संग्रह "मुझे जन्म

दो मां" नाम से सामयिक प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक पर राजस्थान के डीम्ड विश्वविद्यालय से मुझे पीएचडी की मानद उपाधि भी मिली तथा यह पुस्तक शोधार्थियों के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों में रेफरेंस बुक के रूप में मान्य है।

3. मूलतः आपकी कहानियों ने देश-दुनिया में धूम मचाई है। एक कहानी लेखक के लिए कौन-कौन सी बातें ध्यातव्य हैं।

उत्तर : मेरे कहानी-संग्रह, उपन्यासों पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से एमफिल हुए और बिहार सासाराम से तथा राज ऋषि भृर्तहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर-राजस्थान से कहानी और उपन्यास दोनों पर संयुक्त रूप से पीएचडी हो रही है। मेरी आत्मकथा "मेरे घर आना जिंदगी" पर भी लखनऊ विश्वविद्यालय से पीएचडी हो रही है।

साथ ही मेरी कहानी 'एक मुट्ठी आकाश' एस.आर. एम विश्वविद्यालय चेन्नई में इं. के कोर्स में तथा लघुकथाएं महाराष्ट्र राज्य के ग्यारहवीं के (युवक भारती) कोर्स में लगी है। ये सारी उपलब्धियां मेरी कहानी लेखन की मेहनत है। मैं मानती हूँ कि अलग हटकर कथानक पाठकों को आकृष्ट करता है। विषय वस्तु कहानी को अर्थ देने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कहानी में जिज्ञासा बनी रहनी चाहिए। लेखक कहानी की रचना करते हुए यथार्थ जीवन की प्रासंगिकता के द्वारा पाठकों तक अपनी पहुंच बना लेता है। मुझे उपदेशात्मक कहानियां पसंद नहीं। उसके लिए पंचतंत्र किस्सा तोता मैना काफी हैं। प्रेमचन्द आज भी प्रासंगिक हैं, जबकि उनकी कहानी में वर्णित माहौल लगभग बदल चुका है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की "उसने कहा था" कहानी जैसी प्रेम कहानी मैंने दूसरी नहीं पढ़ी।

4. आपके लेखन के प्रेरणा स्रोत तथा सृजन की भूमिका।

उत्तर : मेरे लेखन के प्रेरणा स्रोत मेरे बड़े भाई विजय वर्मा और मेरी माँ थीं। मैं रजिस्टर में कहानियां लिखती थी। एक दिन मेरा रजिस्टर विजय भाई के हाथ लगा। उस समय मेरी उम्र 14 वर्ष थी। वैसे भी घर में विजय भाई का बड़ा रुतबा था। सुनवाई हुई "यह सब तुमने लिखा है?"

मैंने आंखें झुका लीं। दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। अब पड़ी डांट...लेकिन।

"कब से लिख रही हो? बताया क्यों नहीं कि लिखती हो, इतना अच्छा लिखा है तुमने। कलम में दम है तुम्हारी। अब यह वाली जो कहानी है इसमें मैं थोड़े सजेशन लिख देता हूँ। इसे रीराइट करो।"

मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था, लेकिन 45 वर्ष की अल्पायु में वे दुनिया से चले गए और मेरा मार्गदर्शक मुझसे छूट गया। लेकिन इतना अवश्य कहूँगी कि मुझे मांजा उन्होंने। माँ स्वयं गीत लिखती और गाती थीं। वे उर्दू-फारसी की अच्छी जानकार थीं। हमेशा कहतीं, "एक दिन तू सूरज सी चमकेगी।" उनकी इस सोच को यथार्थ रूप देने में जी जान से जुटी हूँ। उनका आशीर्वाद सदा मेरे साथ रहा। यही वजह है कि राही सहयोग संस्थान रैंकिंग 2018, 2019 में वर्तमान में विश्व के टॉप 100 हिंदी लेखकों में मेरा नाम शामिल है। और भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा विश्व भर के प्रकाशन संस्थानों को शोध एवं तकनीकी प्रयोग हेतु देश की उच्चस्तरीय पुस्तकों के अंतर्गत मेरे उपन्यास 'मालवगढ़ की मालविका' का चयन हुआ।

मेरी रचनाओं के सृजन में हर बार मैं स्वयं मौजूद रही। अपनी रचनाओं के चरित्रों के संग हँसना, रोना, दर्द महसूस करना मेरे रचनामय होने के आयाम रहे।

5. आपके कहानी-संग्रहों के नाम तथा उनकी संक्षिप्त विषय वस्तु।

उत्तर : मेरा पहला कहानी-संग्रह या यूं कह लीजिए कि पहली प्रकाशित पुस्तक "बहके बसन्त तुम" कहानी-संग्रह है जो 1996 में यात्री प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। ब्लर्ब में श्रीकांतजी ने लिखा है कि संग्रह की कहानियाँ एक जिंदगी को दूसरी जिंदगी से ठीक वैसे ही जोड़ती हैं जैसे पुल नदी के दो किनारों को जोड़ता है। पुल खुद आवाज नहीं करता। नदी कल-कल करती बहती है। हाँ पुल से कोई भारी वाहन गुजरे तो पुल धमकता है वैसी ही इस संकलन की कहानियाँ हैं।

दूसरा कहानी-संग्रह है "बहते ग्लेशियर" जो 1999 में

यात्री प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। प्रसिद्ध आलोचक भारत भारद्वाज ने इसका ब्लर्ब लिखते हुए लिखा कि संतोष की कहानियाँ निराशा एवं डिप्रेशन में लिखी कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि नाजुक संबंधों के बारे में बहुत करीब से लिखी गई कहानियाँ हैं जो हमारे अंतर्मन को गहराई से झकझोरती हैं। इसमें कुल 20 कहानियाँ हैं।

तीसरा कहानी-संग्रह प्रेम संबंधों की कहानियाँ हैं जो नमन प्रकाशन दिल्ली ने "प्रेम संबंधों की कहानियाँ" शृंखला के अंतर्गत इसे 2012 में प्रकाशित किया। नमन प्रकाशन ने देश के प्रतिष्ठित कहानीकारों की कहानियों की 20 पुस्तकें इस शृंखला के अंतर्गत प्रकाशित कीं। जिसमें मेरी भी यह पुस्तक शामिल है। इस संग्रह में उन कहानियों को लिया गया है जो जीवन में प्रेम के विभिन्न पक्षों, रिश्ते आदि पर लिखी गई हैं।

चौथा कहानी-संग्रह "आसमानी आंखों का मौसम" भी नमन प्रकाशन दिल्ली से 2014 में प्रकाशित हुआ। मेरी कहानियों के फैन प्रसिद्ध रंगकर्मी तथा थिएटर आफ रेलेवेंस के प्रणेता मंजुल भारद्वाज ने इस पुस्तक के ब्लर्ब में लिखा— "संतोष जी के पास कथ्य और कहन का अपना नजरिया है लेकिन वह हमारे आसपास का ही है। उनकी तमाम कहानियाँ जीवन को उसके विभिन्न कोणों से पकड़कर गहरी पड़ताल करती हुई एक ऐसा रचना संसार रचती हैं जिसमें चुनौती है, संघर्ष है और संवेदनाओं का महीन ताना-बाना है। पाठक को मोहविष्ट कर अनुभूतियों, द्वंद्व, चेतना, रस, रूमानियत और रोमांस की समग्रता में समेटने की क्षमता है लेखिका में।

6. आपका सृजन समकालीन समाज का दर्पण है। आपके विचार।

उत्तर : साहित्य समाज का दर्पण ही होता है। हां, जब फेंटेसी, तिलिस्म, भूत-प्रेत की रचनाएं लिखी जाती हैं तो वह केवल मनोरंजन के लिए होती है। साहित्य मनोरंजन नहीं है। उसमें अनुभूति की तीव्रता और भावना की प्रधानता होनी चाहिए। श्रेष्ठ साहित्य एक सार्थक, स्वतंत्र एवं संभावनाशील विधाओं से जीवन के यथार्थ, अंश, क्षण, खंड, प्रश्न, केंद्र बिंदु, विचार या अनुभूति को गहनता के साथ व्यंजित करता है। संवेदना ही एक ऐसी चीज है जो साहित्य और समाज को जोड़ती है। साहित्यकार के अंतस में युगचेतना होती है। दूर क्यों जाएं मेरे उपन्यास "मालवगढ़ की मालविका" को ही लीजिए। वर्षों पहले कानूनी रोक लगा दी गई। सती प्रथा की इक्का-दुक्का घटनाएं समाज में घटित होती ही रहती है। मैंने इसे आधार बनाकर एक ऐसी स्त्री की रचना की है जो आज के संदर्भ में भी इससे जुड़े सवालों से दो-चार होती है।

मंगल पांडे फिल्म में भी उपन्यास का एक अध्याय फिल्माया गया है। जब नायिका को सती होने ले जाया जा रहा है और पति की चिता पर बैठते ही एक अंग्रेज हवा में गोलियां दागता आता है और चिता से नायिका को उठाकर घोड़े पर बिठाकर ले जाता है। वह विरोध करती है। गांव वाले अंग्रेज के बंगले पर पत्थर बरसाते हैं पर अंग्रेज यही वाक्य दोहराता है कि वे तुम्हारा मर्डर कर रहे थे।

इसी तरह "लौट आओ दीपशिखा" उपन्यास में मैंने पाश्चात्य संस्कृति लिव इन रिलेशन के गुण-दोष बताए हैं। यह उपन्यास फिल्म अभिनेत्री परवीन बॉबी के जीवन पर केंद्रित है। हालांकि उपन्यास की नायिका अभिनेत्री नहीं चित्रकार है लेकिन परवीन बॉबी के जीवन की सारी सच्चाईयाँ उस पर केंद्रित हैं। तो निश है ही मैं कह सकती हूँ कि मेरे लेखन ने समकालीन समाज से जुड़ने की कोशिश की।

7. आपके लिए साहित्य साध्य है या साधन।

उत्तर : निश्चय ही साध्य है। मैंने अपने विचारों को मूर्त रूप देने के लिए कलम को साधन बनाया, जिसके जरिए मैं अपने लक्ष्य पर पहुंचती रही। जब मैं अपने उपन्यास "टेम्स की सरगम" की रचना कर रही थी तो वर्षों तक मैं उपन्यास की कथा भूमि में स्वयं को आरोपित करती रही। अगर ऐसा नहीं करती तो रचना कर्म होना असंभव था। संयुक्त उपन्यास "ख्वाबों के पैरहन" (प्रमिला वर्मा, संतोष श्रीवास्तव) लिखते समय भी मैं पूरी तरह उपन्यास की कथाभूमि और कथा पात्रों में डूब चुकी थी। उपन्यास के अंतिम अध्याय तक कथानायिका रेहाना ने मुझे चैन नहीं लेने दिया और जब उसकी मृत्यु हो गई तो मुझे लगा मेरा अपना ही कोई मुझसे बिछड़ गया है। मैं हफ्तों डिस्टर्ब रही। इस उपन्यास के 8 अध्याय प्रमिला वर्मा और 8 अध्याय मैंने

लिखे हैं। इसके अब तक दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और उर्दू में अनुवाद भी हो चुका है।

8. आप के समकालीन महिला कथाकारों के नाम जिन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया।

उत्तर : अपनी समकालीन महिला लेखिकाओं के लेखन के बारे में तो जानती हूँ पर उनके उल्लेखनीय कार्यों से परिचित नहीं हूँ। दो ही नाम स्मृति में कौंधते हैं। मृणाल पांडे जो एक पत्रकार और भारतीय टेलीविजन की जानी-मानी हस्ती हैं। वे दैनिक हिंदुस्तान वामा पत्रिका की संपादक भी रह चुकी हैं। आकाशवाणी प्रसार भारती में भी उनके उल्लेखनीय कार्य रहे। विभा रानी नाट्यकर्मी भी हैं। उन्होंने स्वरचित सोलो नाटकों में अपने अभिनय के चुनौतीपूर्ण कार्य में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

9. आपके जीवन का वह वाकया जिसने आपको लेखन की तरफ प्रेरित किया।

उत्तर : इस प्रश्न का उत्तर मैं दे चुकी हूँ।

10. साहित्य का भविष्य और भविष्य के साहित्य पर आपके विचार।

उत्तर : इन दिनों साहित्य के साथ और भी विधाएं जुड़ गई हैं। नृत्य, नाटक, मूर्तिकला में भी साहित्यकार रुचि ले रहे हैं। फिल्म के लिए संवाद लिखना, स्क्रिप्ट लिखना आदि कामों में यश और धन मिलने से उनका लेखन प्रभावित हो रहा है। अब पर्यटन भी मानो एक जरूरत बन गया। पिछले कुछ सालों से यात्रा वृतांत और यात्रा संस्मरणों की बाढ़ सी आ गई है। कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक ही नहीं अब डायरी, जीवनी या आत्मकथाओं पर भी लेखक की कलम खूब चल रही है। इन विधाओं की वजह से कविता, कहानी, उपन्यास प्रभावित हो रहे हैं। दरअसल ऐतिहासिक, पौराणिक, आधुनिक, उत्तर आधुनिक से होते हुए हम आज जिस दौर में हैं उसमें पूरे समाज की पड़ताल करते हुए विस्तृत परिसर को खंगालने का काम निरंतर जारी है। भविष्य में इसमें और तेजी आ सकती है।

वैसे साहित्य में बदलाव तो होता रहता है। देखते ही देखते हम टेक्नोलॉजी के युग में पहुंच गए। ई-बुक्स, यूट्यूब, वेब पत्रिकाएं तरह-तरह के साहित्यिक ऐप पाठक कम, लेखक ज्यादा। एक होड़ सी लगी है खुद को स्वयं ही साबित करने की। स्वयं के खर्च से किताबें प्रकाशित कर मुफ्त में किताबें बांटना। एक तरह से खरीदकर पढ़ने की परंपरा ही समाप्त होती जा रही है। किंडल, आमेजान में किताबें बेशुमार हैं।

गूगल विश्व साहित्य परोस रहा है। डाउनलोड करिए और पढ़िए। यह तो हुई वर्तमान के साहित्य की बात। भविष्य में अतीत के ग्रंथों को पुनर्नवा किया जाएगा। रामायण महाकाव्य के कथानक लेखकों की अपनी दृष्टि से लिखे जा रहे हैं। भविष्य में रामायण महाकोश की तैयारी है जो विभिन्न भाषाओं में होगा।

मैं सोचती हूँ अतीत के साहित्य का भविष्य में एक नए तरह का अध्ययन इंटरप्रिटेशन जारी रहेगा और ऐसा केवल साहित्य में नहीं, बल्कि अन्य कलाओं में भी होगा। शेक्सपियर और कालिदास पर काफी काम हो रहा है। भविष्य में भी होगा। रतन थियाम की ऋतुसंहार, कावलम नारायण पणिक्कर द्वारा भास के नाटकों की प्रस्तुति, मुम्बई में अतुल कुमार द्वारा शेक्सपियर के नाटक की प्रस्तुति पिया बहुरूपिया। यानी तकनीकी प्रयोगों द्वारा उच्च स्तरीय कामों की हम उम्मीद कर सकते हैं। वैसे अमीश त्रिपाठी ने शिव पुराण को तीन वॉल्यूम में लिख कर शिवजी को साधारण पुरुष बता दिया है। अब यह बात किसी को मान्य है किसी को अमान्य पर अमीश त्रिपाठी ने शिवपुराण के बहाने लाखों कमा लिए।

11. कविता लेखन गद्य लेखन के सूत्र अलग-अलग हैं उनके मूलभूत अंतर और साधारण समय पर आपके विचार।

उत्तर : भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरतमुनि से समझा जा सकता है। कविता छंदों की शृंखला में विधिवत बंधी रस, अलंकार और भावों को लिए मानो चित्र सा रचती पाठक को रसास्वादन कराती है। कालांतर में कविता का स्वरूप बदलता गया। अब तो कविता गद्य में भी लिखी जा रही है। छंद मुक्त लिखी जा रही है। लेकिन कविता का एक धर्म होता है और उस धर्म को कवि को निभाना होता है। अपने

समय को गहराई से व्यक्त करना, समकालीन दुनिया के संकट के बारे में चिंतित होना, अभिव्यक्ति के संकट के इस दौर में कवि उन लोगों की वाणी बनते हैं जो बोल नहीं सकते।

यही बात गद्य में भी लागू होती है। यहां प्रेमचंद की कहानी "दो बैलों की कथा" को याद किया जा सकता है। मराठी के कवि नामदेव ढसाल ने गोलपीठा पुस्तक में (वेश्याओं और उनकी बस्ती पर लिखा काव्य ग्रंथ) दबे कुचले पीड़ित मनुष्य के पक्ष में अपनी कविता में प्रतिबद्ध तरीके से आवाज उठाई। कविता में जो घटता है वह बाद में अवधारणा बन जाता है। और गद्य में जो रचित होता है वह धरोहर हो जाता है। कविता कहीं से भी शुरू हो सकती है। एक बिंदु से, रूपक से, घटना से, बिंब से, प्रतीक से कवि के हृदय से गुजरकर कलम में उतरती है। कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का उत्तम साधन है। गद्य ठहरकर सोचने के लिए पाठकों के मन में सीधे उतर जाता है। लेकिन जमीनी सच्चाईयों से जुड़ा गद्य हो तब...क्षणिक मनोरंजन किसे याद रहता है।

12. आज काव्य और कवि हाशिये पर हैं इसके लिए जिम्मेदार कौन है? कौन सी शक्तियों का हाथ है?

उत्तर : 21वीं सदी का कविता संसार बहुत विस्तृत है। कवि और कविताओं की बाढ़ सी आ गई है। सुनने और पढ़ने से अधिक सुनाने और पढ़वाने की चिंता है। कवि स्वयं अपने प्रचार का माध्यम बनता जा रहा है। आत्ममुग्धता भी पराकाष्ठा पर है। यह सवाल केवल साहित्य से जुड़े लोगों में ही नहीं दिखाई देते, बल्कि साधारण पाठक भी ऐसी चिंता जताते हैं। आप चाहे चौपाल में बैठे हों या कॉफी हाउस में या साहित्यिक समारोह में। निचोड़ यही उभरता है कि हिंदी कविता के नाम पर जो कुछ लिखा जा रहा है, उसकी भाषा शैली आखिर क्यों पाठकों तक नहीं पहुंच पा रही है? स्कूल और कॉलेज के दिनों में हमें कबीर का रहस्यवाद, तुलसीदास की अवधी, रीतिकाल की रचनाएं जो उस समय बेहद कठिन लगती थीं पर आज भी उनका प्रभाव हमारे जीवन पर है। उनमें से कुछ तो आज भी कण्ठस्थ हैं। पर आज की कविताएं साहित्यिक समारोह से बाहर आते हैं हम भूल जाते हैं। क्या इसकी वजह उनका छंदात्मक नहीं होना है। या उसमें गेयता, पठनीयता, संगीतमयता, तारतम्यता, सुरुचि और रस ग्राह्यता नहीं है या कोई अन्य कारण है।

लेकिन मुझे लगता है कि आज की कविता जो हाशिए पर नजर आती है उसका कारण है उसका आलोचना से दूर होना। कविता अब सिर्फ वाहवाही चाहती है। यही चाहत मारक है। वैसे भी नई पीढ़ी में विचारों का संकट है। कविता लिखते समय युवा पीढ़ी को टॉलस्टॉय याद आते हैं या गोर्की। किसी को केवल सामाजिक विसंगतियां ही नजर आती हैं। कोई सत्ता की धज्जियां उड़ाने में ही विश्वास रखता है। कोई मार्क्सवाद को अपने जीवन का आदर्श बना लेता है। कई अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो पाते। कवि ने स्वयं खुद को हाशिए पर ढकेला है और इस स्थिति से वह स्वयं ही उबर सकता है।

13. काव्य प्रसारण में दृश्य-श्रव्य माध्यमों की भूमिका पर आपके विचार।

उत्तर : आजकल यूट्यूब चैनलों की भरमार है। जिससे नए नए कवि अपनी कविताओं को स्वयं के वीडियो में प्रस्तुत कर लाइक, कमेंट और सब्सक्राइब की मांग करते हैं। अपने ही सृजन पर याचना की यह प्रवृत्ति से वह स्वयं तो पोषित होते हैं पर कविता पोषित नहीं होती। श्रव्य माध्यमों की बहुत बड़ी भूमिका है। अपनी कविता जन-जन तक पहुंचाने का यह एक सशक्त माध्यम है। मीरा बाई, कबीर के समय कहां प्रेस थी पर उनकी बात श्रव्य माध्यम से ही हम तक पहुंची। इस दिशा में बुक्स इनवॉइस डॉट कॉम बेहतर काम कर रहा है। उनकी टीम लेखकों की पुस्तकों को अपनी आवाज दे रही है जिसे आप ऑनलाइन आराम से सुन सकते हैं। मेरी लगभग सभी कहानियों को इनवॉइस डॉट कॉम ने आवाज दी है। अब मेरे उपन्यासों पर काम चल रहा है जिससे वे पार्ट वाइज डब कर रहे हैं। इसके अलावा विभिन्न संचार कंपनियां भी इस दिशा में कार्यरत हैं।

14. आप नवीन जन माध्यमों पर निरंतर सक्रिय हैं। इन माध्यमों पर प्रस्तुत कविताओं पर आपके विचार।

उत्तर : यह जमाना डिजिटल और संचार माध्यमों का है और संचार क्रांति ने हिंदी साहित्य का वैश्विक रूप गढ़ने

में बहुत बड़ा योगदान दिया है। भाषाएं संस्कृति की वाहक होती हैं और संचार माध्यमों जैसे ई पत्रिकाएं, विभिन्न साहित्यिक ऐप एब्लॉग, फेसबुक, ट्विटर। इन पर प्रस्तुत किया गया साहित्य केवल क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है।

वह पूरे विश्व में पढ़ने के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है। यही वजह है कि हिन्दी साहित्य प्रचुर रूप में लोगों तक पहुंच रहा है, लेकिन इस साहित्य की गुणवत्ता में गिरावट आई है। कविता पर ही बात करें तो उसे लिखकर जांचे-परखे बिना, प्रतिष्ठित कवियों का मार्गदर्शन लिए बिना तुरंत उसे प्रकाशित होने भेज देना और संपादकों की भी इस सामग्री के प्रति उदासीनता हल्की-फुल्की रचनाओं को पाठकों तक पहुंचा रही है। हमारे समय में संपादक रचना को पढ़कर स्वीकृति, अस्वीकृति, रचना में संशोधन की जानकारी देते थे। अब तो जो भेजा जाता है तुरंत स्वीकृत।

हफ्ते भर में ई-पत्रिका का पीडीएफ आपकी मेल पर। और जब से कोरोना महामारी ने वैश्विक स्तर पर पांव पसारे हैं अपनी कविताओं को सुनाने के लिए कवि फेसबुक लाइव होते हैं। गूगल मीट पर आते हैं जबकि उन कविताओं में एकाध कवि ऐसा होगा जिसकी कविता असरदार हो। यूट्यूब चैनलों की भरमार, लाइक, सब्सक्राइब और कमेंट की अपेक्षा। श्रोताओं से एक सस्ता साहित्यिक बाजारवाद जन मानसिकता में घुसपैठ किये है। अपने प्रस्तुतीकरण की बड़ी-बड़ी न्यूज़ फोटो सहित समाचार-पत्रों में कवि स्वयं ही भेजता है, छपता है खुश होता है। कविता पर यह बड़ा भारी संकट है।

15. ऑनलाइन पत्रिकाओं की आजकल भरमार है। क्या में रवनतदंस प्रिंट पत्रिकाओं का विकल्प हो सकती है।

उत्तर : वैसे तो में रवनतदंस शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।जर्नल ऑफ हिंदी रिसर्च पत्रिका का प्राइम फोकस हिंदी की पढ़ाई से संबंधित लेख प्रकाशित करने के लिए है। यह पत्रिका हिन्दी अनुसंधान में छात्रों और कर्मियों को प्रेरित करने के उद्देश्य से मंच प्रदान करता है। इसमें हिंदी साहित्य के महाकाव्य, व्याकरण, इतिहास, भारतीय सौंदर्य, धर्म, वैदिक अध्ययन, बौद्ध साहित्य, भारतीय और पश्चिमी तार्किक सिस्टम, भारतीय दर्शन, प्रवचन और ज्योतिष शास्त्र जैसे विषयों के जर्नल काफी लोकप्रिय हैं। ऑनलाइन पत्रिका चाहे जितनी भी संख्या में निकल रही हों पर प्रिंट मीडिया का अपना ही वर्चस्व है। इसकी जगह कभी ई-पत्रिका नहीं ले सकती। हालांकि ई पत्रिकाओं में काफी काम हो रहा है पर उसे लंबे समय तक कहां सुरक्षित रखा जा सकता है इस बात पर भी विचार करना होगा।

16. नवोदित नवांकुर लेखकों-कवियों को आपका संदेश।

उत्तर : मेरी संस्था 'अंतरराष्ट्रीय विश्व मैत्री मंच' साहित्य की विभिन्न विधाओं तथा नाटक और चित्रकला में योग्यता रखने वाले नवांकुरों को मंच प्रदान करती है। हम ऐसी प्रतिभाओं को, जिन्हें न तो उभरने का माहौल मिला और न ही उनके पास आगे आने का कोई साधन है, तलाशते हैं। एक तरह का टैलेंट हंटिंग का काम करते हैं। जिन नवांकुरों को हमने सपोर्ट दिया वे आज पुष्पित, पल्लवित होकर छतनारा वृक्ष बन चुके हैं। नई पीढ़ी में उत्साह बहुत है। वह कल्पना में नहीं जीता यथार्थ में और वर्तमान में जीता है। मेरा उनसे यही आग्रह है कि वह अपने इन गुणों में धैर्य और जोड़ लें। पहली सीढ़ी से अंतिम सीढ़ी पर छलांग न लगाएं। खुद को खंगाले। जितना खुद लिखें उससे दुगना पढ़ें। पढ़ने से ही लेखनी में निखार और प्रौढ़ता आती है।

17. आप स्वयं काफी पुरस्कारों से सम्मानित हैं और अपने पुत्र की स्मृति में कविता सम्मान प्रदान करती हैं, क्या पुरस्कार लेखक की श्रेष्ठता का प्रमाण है?

उत्तर : पुरस्कार लेखक की श्रेष्ठता का प्रमाण है ऐसा मैं नहीं मानती। आजकल पुरस्कारों की पारदर्शिता पर वैसे भी सवाल उठ रहे हैं। एक लेखक जिसे हम जानते तक नहीं अपने 50 वर्ष के जीवन काल में 100 किताबें लिख लेता है और कोई एक संस्था उसे मूर्धन्य साहित्यकारों के नाम के पुरस्कार प्रदान कर देती है। पुरस्कार रेवड़ियों की तरह बांटे जा रहे हैं। कुछ तो प्रायोजित भी होते हैं।

अपने कवि पुत्र 23 वर्षीय हेमंत की स्मृति में प्रतिवर्ष हेमंत स्मृति कविता पुरस्कार के आयोजन में मैंने इन

स्थितियों को बारीकी से जाना-समझा। हेमंत स्मृति कविता सम्मान अपनी पारदर्शिता की वजह से ही राष्ट्रीय स्तर का पुरस्कार माना जाता है। उसे राष्ट्रीय स्तर का दर्जा प्रसिद्ध आलोचक-कवि डॉ नामवर सिंह ने ही दिया है।

अगर मैं खुद की बात करूं तो इतने सारे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार पाकर मैं जितनी आनंदित हूँ उतनी ही सचेत भी। कि कहीं ऐसा न हो कि अब जो मेरी रचना आए वह पाठकों की दृष्टि में कमजोर साबित हो। तो पूरी लगन से जुटी रहती हूँ। मेरे लेखन के लिए पुरस्कार हमेशा चुनौती रहे हैं।

18. आपने तो विश्व के अनेक देशों की यात्रा की है और वहां से सम्मान भी प्राप्त हैं। विश्व में हिंदी की वास्तविक स्थिति कैसी है?

उत्तर : जी डॉक्टर सत्यवीर सिंह जी मैंने 26 देशों की यात्रा की है। लेकिन 22 देशों की यात्रा मैंने भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा स्थापित संस्था 'अंतर्राष्ट्रीय पत्रकार मित्रता संघ' की ओर से की, जिसकी मैं सन् 2000 से 2010 तक मनोनीत सदस्य थी।

यह संस्था भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य करती है। मेरी पहली यात्रा जर्मनी की थी जहां हाइडल बर्ग यूनिवर्सिटी में विद्यार्थियों के लिए कार्यशाला आयोजित की। उपहार स्वरूप हम अपने साथ पौराणिक ग्रंथ और सरस्वती की कांस्य प्रतिमा ले गए थे, लेकिन मैं यह देखकर दंग रह गई कि वहां वेद उपनिषद, पुराण, महाकाव्य सूर तुलसी मीरा जायसी पहले से ही पुस्तकों में उपलब्ध हैं।

हिंदी-संस्कृत के इंस्टीट्यूट डिपार्टमेंट भी हैं और उन्हें पढ़ाने वाले जर्मन प्रोफेसर भी हैं। जर्मनी विद्वानों को लेकर ही भारत के साथ एक सूत्र में बंधा है। संस्कृत साहित्य में छिपी हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता और संस्कृति को विश्व मंच पर लाने का श्रेय जर्मन विद्वानों को ही है। मैं जिन देशों में गई जापान, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, वियतनाम, कंबोडिया, दुबई, उज्बेकिस्तान, थाईलैंड आदि देशों में मैंने वहां हिंदी नाटकों के मंचन का अद्भुत कार्य देखा। रामलीला तो वहां हर साल खेली जाती है साथ ही शकुंतला दुष्यंत विश्वामित्र मेनका गौतम अहिल्या आदि नाटक भी हिंदी संवादों सहित खेले जाते हैं।

ऑस्ट्रेलिया के सिडनी शहर में वहां की नाटक मंडली ने 100 साल के भारतीय और ऑस्ट्रेलियाई इतिहास को मंचित किया। एक महीने तक प्रतिदिन इसके शो होते रहे। मैंने सिडनी में नाडिया के जीवन पर आधारित नाटक भी देखा। जिसमें अमेरिका और मॉरिशस से भी लेखक शामिल हुए थे। नाडिया ऑस्ट्रेलिया में जन्मी भारतीय हिंदी फिल्मों की अभिनेत्री थी; जिसने हिंदी फिल्म निर्देशक होमी वाडिया से बहुचर्चित इश्क किया और उनसे शादी कर मुंबई में जा बसी और होमी वाडिया के प्रोडक्शन तले फिल्मों में अभिनय किया। उनकी फिल्म 'हंटरवाली' आज तक लोगों के जहन में जिंदा है।

इटली के रोमा खुद को भगवान राम की संतान मानते हैं और राम-सीता के उपासक हैं। रामचरितमानस की चौपाइयां उन्हें कंठस्थ हैं। इसी तरह इंग्लैंड और अमेरिका से कृष्ण भक्ति धारा इस्कॉन के जरिए विश्व के कई देशों तक पहुंची। इस्कॉन की पूरे विश्व में 450 शाखाएं हैं और अमेरिका में लॉस एंजेल्स के पास पूरा वृंदावन ही बसाया गया है। कई देशों में उनके मंदिर उनके अनुयाई भजन रथयात्रा सड़कों पर हरि कीर्तन करते ढोल-मजीरे बजाते भक्तगण दिखाई देते हैं। कहना न होगा कि कृष्ण ने सरहदें मिटाने में बड़ी भूमिका अदा की है।

पूरे विश्व के अधिकतर देशों में छोटा भारत बसता है और इसका श्रेय प्रवासी लेखकों को ही मिलना चाहिए। उन्होंने साहित्य, नाटक, धर्म, संस्कृति पर जमकर कलम चलाई है और विदेशियों को भारत की महानता से परिचित कराया है। वह प्रवासी लेखक ही हैं जिन्होंने भारत के लज़ीज़ भोजन की पहचान अपने साहित्यिक कार्यक्रमों में शामिल

होने वाले विदेशी मेहमानों को कराई। अब तो आलम यह है कि भारत के हर प्रदेश का भोजन वहां पसंद किया जाता है और भारतीय रेस्त्रां में टेबल की बुकिंग एडवांस में करानी पड़ती है। जापान में रहने वाले प्रवासी साहित्यकार जापानियों द्वारा बेहद पसंद किए जाते हैं। उनके साहित्य में जापानियों को जिस भारत के दर्शन होते हैं उसे उन्होंने विश्वविद्यालयों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सम्मिलित किया है। विश्वविद्यालयों में संस्कृति दिवस मनाते हैं। इस दिन जापानी लड़कियां साड़ी पहनकर विश्वविद्यालय आती है और कैंपस में भारतीय पकवानों के जगह जगह स्टाल लगाए जाते हैं। भारतीय संगीत नाटक आदि के शो करके मानो भारत को जापान में जीवंत कर देते हैं। वहां हिन्दी साहित्य पंचतंत्र-महाभारत खूब प्रचलित हैं और उनका जापानी भाषा में अनुवाद भी हुआ है। लंदन में जितना अधिक साहित्य लिखा जा रहा है, उतनी ही तेजी से साहित्यिक संस्थाएं भी स्थापित हो रही है। पुरस्कार आयोजित किए जा रहे हैं। खासकर भारत से जब कोई साहित्यकार वहां पहुंचता है तो उसके सम्मान में इन संस्थाओं द्वारा आयोजन किए जाते हैं। यह स्थिति कमोबेश हर जगह मौजूद है।

मॉरीशस में हिन्दी साहित्य संचार माध्यम और प्रवासी लेखकों द्वारा पूरी शान से प्रतिष्ठित है।

हॉलैंड यानी नीदरलैंड में हिंदू ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन ओहम है जिसके रेडियो टेलीविजन नेटवर्क और पत्रिकाएं प्रकाशित प्रसारित होती हैं। ओहम डच सरकार का मीडिया है जो हिंदी भाषा साहित्य और रचनाकारों पर फिल्में बना रहा है। मेरी रचना भी ओहम से प्रसारित की गई।

फीजी में खूबसूरत हरे-भरे जंगल में पौधों के नाम भी भारतीय हैं। तुलसी-चंदन-आम-नींबू-इमली-सिरसा-बेल अमरूद साथ में सब्जियों के नाम भी भारतीय यानी की गली कूचे, बाजारों में हिंदी की धारा बही चली जा रही है। बलगारिया के बलगारीय अध्ययन के भारतीय केंद्र के द्वारा हिंदी को नई दिशा गति मिल रही है। बौद्ध धर्म दर्शन से प्रभावित बल्गारिया भारतीय भाषाओं और साहित्य इतिहास और संस्कृति के प्रति गहरी रुचि रखता है। वहां संस्कृत और हिंदी दोनों के अध्ययन केंद्र हैं।

यह युग कंप्यूटर का युग है। कंप्यूटर के क्षेत्र में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएं भाषाई दीवार को कब का लांघ चुकी हैं। हिन्दी ने विश्व स्तर पर जो अपना मुकाम बनाया है वह हमें गौरवान्वित करता है।

कविता

मकर में...

व्यास मणि त्रिपाठी

मकर में जा रहे इस सूर्य से,
परम् तेजस्व के इस तूर्य से
यही बस माँगता हूँ मैं
यही बस चाहता हूँ मैं
खिली सरसों सदृश हो मन
कली जस कुन्द के हो तन
सरस गुड़ सा बने जीवन
सुगन्धित तिल करे नन्दन
धरा स्वर्णिम प्रभा के पूर्य से
मकर में जा रहे इस सूर्य से
यही बस माँगता हूँ मैं
यही बस चाहता हूँ मैं
प्रखरता पूर्ण हो उष्मन
सहजता को छुए दर्पन
मधुरता पूर्ण हृत्कंपन
सुनाये राग पिक उन्मन
सजगता के उषः के पुष्य से
मकर में जा रहे इस सूर्य से
यही बस माँगता हूँ मैं
यही बस चाहता हूँ मैं ॥

कथा-कहानी

अंतर

राजा सिंह

वह सो रही थी। वह गहरी नींद में थी आवाज सिसकती हुईए कानों में घुसती हुई झिंझोड़ती है। उस आवाज के साथ ही, वह उठ बैठी चारों तरफ धुप्प अंधेरा था। उसने बेड पर टटोल कर देखा न वों था न उसकी आवाज कहाँ गया होगा अर्पित शायद बाथरूम वह कुछ देर वैसे ही बैठे-बैठे अंधेरे में प्रतीक्षा करती है। बेहद छनी हुई सिसकियों की आवाज बंद थी, फिर भी...!

बिस्तर से उठकर बिजली का स्विच ऑन करती है। रात में सोते समय के अलावा उसे अंधेरा बर्दाश्त नहीं है। बाथरूम, किचन देखती हुई वह बरामदे में आकर खड़ी हो गई सोचती है आसार डराने लगे फिर माँ के कमरे में आकर खड़ी हो गई।

धुंधले प्रकाश में एक नजर से तौलते हुए उसने माँ को देखा माँ पेट दर्द से कराह रही थी। वह अपने पलंग पर बेचैनी से करवट बदल रहीं थी। वह कराह रही थीं और वह पलंग के पास में जमीन में बैठ, घुटनों पर ठुड्डी टिकाए, टांगों को बांहों में घेरे था शायद वही सिसक रहा होगा अनुमान सही था उसने पलट कर गरदन उचकाई दरवाजे पर ताकने लगा था।

अचरज हुआ। उसने पूरी सावधानी बरती थी कि काव्या को पता न चले वह जानता था कि उसे नींद बहुत पसंद है वह उसे सीधी आँखों से नहीं देख पाने के बावजूद उसे साफ दिखाई दी।

उसका सिर घूमने लगा। वहाँ का सारा दृश्य देखकर अबूझ सी ठिठक गई। उसकी आँखें गीली थीं। फिर भी उसे लगा कि कोई अनहोनी बात नहीं है।

बजाय माँ को सम्हालने के वह उसके पास आई। उसकी व्यथा से वह विचलित हो आई थी। उसके काँधे पर हाथ-रखकर ढाँढ़स बढ़ाया। विवश-अवश घुटनों से मुंह मोड़, साँसें खीचता फफक पड़ा। उसका पसीने से लथपथ चेहरा थर्राने लगा। बल्कि पूरी देह पत्ते की तरह कांपने लगी। उसने उसे गले लगाकर आश्वस्त किया

वह अपने कमरे जाकर लौटी और कोई टैबलेट और पानी के साथ थी। उसने खुद माँ को जाकर आहिस्ता से उठाया और उन्हें खिलाकर धीरे से लिटा दिया।

माँ दर्द के मारे रात भर सोई नहीं थी। थोड़ी ही देर में उन्हें आराम मिला और वह सो गईं।

अविश्वास से भरा उसका भावुक हृदय कृतज्ञता से अवनत उसके पर झुक गया। विह्वल उसे यही प्रतीत हुआ कि क्षण भर पूर्व उससे डग भर दूर वह नहीं कोई सिद्ध खड़ी है।

गली में अभी सवेरा नहीं हुआ था। वह उसे बेडरूम में ले जाकर सो गई।

माँ को उसने बहुत पहले से ही अपना प्रशंसक कर रखा था। घर आए एक दो दिन ही बीते थे कि उसने पहले बेड टी देनी शुरू की फिर उसने सुबह का नाश्ता और कुछ दिनों के बाद ही उसने रात का खाना खुद बनाना प्रारंभ कर दिया था। माँ कृतकृत्य सी अकसर कहती आजकल की नौकरी करने वाली लड़कियां खाना कहाँ बनाती हैघ् किन्तु मेरी बहु ऐसी ही है। एकदम अस्मी बेटी जैसी।

बाथरूम से निकलते हुए काव्या को उसने कुछ झिझकते हुए रोक लियाए “सुनो!”

“कहिएघ्” उसने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

“मेरा मतलब है।“

“मैं खूब तुम्हारा मतलब समझती हूँ। मैं आज छुट्टी नहीं ले सकती।“

“छुट्टियाँ तो काफी बची है।'' वह परेशान दिखा।

‘तो क्या घ” व्यस्त भाव से वह लहराती हुईए तैयार होने चल दी।

वह एकदम से सामने आ गया। तय करना जरूरी था।

पास के नर्सिंग होम का डॉक्टर उसका परिचित था। वह रुक नहीं सकती।

"बैंक में अचानक छुट्टी नहीं ले सकते। मैंने डॉ सक्सेना को फोन कर दिया है। वह देख लेंगे।" उसने कहा और बिना उसकी प्रतिक्रिया देखे-सुने चल दी।

परंतु इससे अधिक गिड़गिड़ाना उसके बस में नहीं था। आखिर में उसे पति की बात माननी चाहिए थी। व्यर्थ ही रहाए उसका काव्या को रोकना। उसे लगा कि वह उसकी सहयोगी नहीं बल्कि प्रतिस्पधी है।

अर्पित के उदास चेहरे पर सघन होती उसके असहयोग की कालिख गहरा गई। वह कहना चाहती थी, "रुक न पाने के लिए क्षमा कर देना अर्पित!" किन्तु कह नहीं पाई।

उसे रुकना पड़ा, हालांकि वह जानता था कि प्राइवेट स्कूल में छुट्टी पूछना, मांगना और लेना काफी महंगा पड़ता है। कभी-कभी तो नौकरी जाने की हद तक घातक। उसका प्रवन्धक, मालिक बड़ी ऊंची पहुँच का है, भूतपूर्व विधायक। किन्तु माँ को वह इस हालत में बिना इलाज के छोड़ नहीं सकता था। काव्या की दी हुई टैबलेट से तत्काल राहत जरूर मिल गई थी, किन्तु इस समय पुनः दर्द चालू हो गया था।

तनाव से उसकी नसें तड़कने लगीं। भावी अनिष्ट की आशंका से उसका जी धड़कने लगा, क्या होगा माँ का" सोचकर वह जड़ हो गया। उसे लगा कि वह मूर्छित हो रहा है...।

वह माँ को लेकर पास वाले नर्सिंग होम में गया। जहां डॉ सक्सेना ने पहुँचते ही इलाज चालू कर दिया। नर्सिंग होम से ही उसने स्कूल फोन किया और माँ की स्थिति के विषय में बताया और ना आने की असमर्थता व्यक्त की। "तुम्हारी पत्नी भी तो है!" फिर विधायक जी ने कुछ नहीं कहा। उनका मौन उसे अखर गया। पता नहीं उनकी चुप्पी क्या कहर बरसाए। हे! भगवान सिर्फ वेतन कटौती से ही मामला सुलट जाए।

काफी तरह के टेस्ट करने के बाद डॉ ने भती करने को कहा। माँ को अपेंडिक्स का ऑपरेशन करना पड़ेगा। वह माँ को दाखिल-वाखिल करने की मूर्खता नहीं करना चाहता था। कौन रहेगा माँ के पास कम से कम तीन-चार दिन तो लगेंगे ही। उसने डॉ. से ऐसे ही इलाज करने को कहा। डॉ माँ का तेज बुखार देख कर घबरा गए और तुरंत इलाज करने लगे। डॉक्टर की दवाई असर करने लगी थीं। माँ का पेट-दर्द कम से कमतर होने लगा। उन्होंने कठिनाई से आंख खोलकर निष्प्रभ दृष्टि से देखते हुए उसकी बात का अनुमोदन किया।

डॉ सक्सेना ने काव्या को फोन किया। उसे सारी परिस्थिति समझा दी। मिस्टर अर्पित भर्ती करने को राजी नहीं। उसने डॉ को रुकने और रोकने को कहा।

एक क्षण के लिए वह विचलित सा हो गया। बाहर आकर वह एक सिगरेट लेता है। यह उसके निराश होने की शुरुआत है।

बहुत छोटा था वह जब उसके पिता गुजर गए थे। शायद ग्यारह साल का और उसकी बहन अस्मिता नौ साल की थी। वह प्राथमिक स्कूल के अध्यापक थे। क्षतिपूर्ति आधार पर उसकी माँ की नियुक्ति चपरासी के पद पर हुई थी। क्योंकि माँ बहुत कम पढ़ी थी सिर्फ पाँचवां दर्जाए जिसका भी उसके पास कोई सबूत नहीं था। माँ सब कुछ खुद देखती थीं घर-बाहर और स्कूल। वे दोनों अच्छे बच्चे से उसकी हर बात मानते थे। पढ़ लिखकर बड़े होने पर वह नौकरी में लग गया, और अस्मिता की शादी कर दी। असी खुशी और प्रसन्न है। यह सोचकर वह और माँ भी प्रसन्न रहते कि उसे ठीक घर और अच्छा लड़का मिला है, किन्तु वह जल्दी घर नहीं आ पाती। वह माँ को छोड़कर बाहर नहीं जाना चाहता था। इस कारण यहीं इसी शहर में नौकरी की तलाश में रहता था, क्योंकि माँ जीते-जी पिता का घर छोड़ना नहीं चाहती थी।

काव्या भी माँ की ही पसंद थी। उसे ऐसी बहूँ चाहिए थी जो चंद्रमा की तरह खूबसूरत हो और पीढ़ियाँ सुधर जाएं, घर रोशन कर दे। अर्पित साधारण रंग-रूप का सामान्य लड़का था।

विवाहोपरांत उसने काव्या से स्पष्ट कहा था कि वह अपनी माँ के लिए ही जीता है और उसकी देखभाल, उसकी पसंद सर्वोपरि है। यही उसका संकल्प है, उद्देश्य है और उसके जीवन की सार्थकता। अपनी पसंद-ना पसंद गौण है।

"तुम मुझे अपने मायने की परिभाषा मेरे ऊपर लाद नहीं सकते।" तब तुरंत प्रति उत्तर में उसने यही कहा था।

"यह आपकी ज्यादती है!" आप मेरी स्थिति देखना नहीं चाहतीं।"

"मेरे लिए इन बातों का कोई महत्व नहीं है।" उसने निरपेक्ष भाव से कहा। काव्या ने विवाह पूर्व एकांत में मिलने पर उसने उसे उकसाया था कि वह इस संबंध को मना कर दें, किन्तु वह उसके माँ की पसंद थी और उसकी। यही है राइट चॉइस बेबी! का शोर हृदय से उठता हुआ उसके कानों को मीठे मीठे स्वर में गूंजने लगा था और अब तक स्थायी भाव धारण किए रह रहा था। उसे अपनी माँ की पसंद पर गर्व हुआ था। वह उसकी कमनीय, एकहरी और सुंदर काया पर रीझ उठा था और उसके मुंह से बेसाख्ता निकल गया, ''मुझे तो तुम बेहद पसंद हो।। और तुम्हें मैं?"

"मुझे तुम पसंद नहीं हो।" किन्तु उसके स्वर में तिरस्कार नहीं था।

उसका दिमाग सन्न से चौंका। मस्तिष्क पर पड़ी चोट ने संभ्रम पैदा किया। वह स्वतः बुदबुदाया, "तो मना करोगी"

"नहीं यह काम तुम करोगे"

"क्यों? जबकि मुझे तुम पसंद हो और क्या मैं तुम्हारी नापसंदगी की वजह जान सकता हूँ"

"तुम उस तरह के व्यक्ति नहीं हो जिस तरह के जीवन साथी की कल्पना मैंने की थी।"

"यह आपके कारण है, मेरे नहीं!"

उसे याद है तब उसने कहा था, ''जानते हो मैं तुमसे 6 वर्ष बड़ी हूँ। तुम्हारी माँ को मेरी उम्र गलत बताई गई थी। इस आधार पर तुम मना कर सकते हो!"

''नहीं, कोई फर्क नहीं पड़ता! सफल जीवन जीने के लिए किसी एक का छोटा, बड़ा या बराबर होना मायने नहीं रखता है, गांधी, सचिन, मैक्रो इन सब की पत्नी काफी बड़ी हैं और फिल्मी प्रियंका, फरहा के पति भी 11 साल छोटे हैं और वे सुखी हैं।"

फिर उसने कहा, "मेरे कई प्रेम-प्रसंग रहे हैं।"

"क्या फर्क पड़ता है। वह आपका भूत है, वर्तमान में आप मुझे ही चाहोगी।"

"अगर ऐसा ना हुआ तो"

"अगर तुम वह नहीं रही हो तो तुम्हारे कुछ और होने की कोई संभावना नहीं है। वरना आप यहाँ तक ना आतीं।"

"ऐसे कैसे हो सकता है" ऐसा कदापि नहीं होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। उसने कहा।

"यह आप कैसी बहकी-बहकी बातें कर रही हैं? आप होश में हैं" वह तीक्ष्ण हो उठा।

फिर वह अनायास अपने चेहरे पर फैलती अर्थपूर्ण मुस्कुराहट को बड़ी देर तक खुद ही महसूस करती रही। अपने पर विश्वास करने के लिए उसने अपने मन और शरीर को सप्रयास समेटा और अपनी जिद्द को। वह शांत, सौम्य, साफ-सुथरे मनुष्य अर्पित को मना नहीं कर पाई। अन्यों की तरह वह उसे अस्वीकृत करने का प्रयास निष्फल रहा।

अर्पित को चुनकर उसने एक फैसला रख लिया था और अपनी भावनाओं को अप्रकट रहने देकर उसे अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया था। तुम पाओगी वह जो कुछ कह रहा है मात्र उसका सोचना भर नहीं है, ना कोरी भावुकता की उड़ान। यह जीवन की हर पक्ष की भागीदारी का ऐलान है। आदमी बदलता है, जब परिस्थितियाँ बदल जाती है।। उसने मन ही मन आश्वस्त किया स्कूल-कॉलेज या पहले दिनों के संपर्क, संबंध शायद स्थायी प्यार नहीं होतेए क्योंकि वह भावना, स्वार्थ और प्रतिस्पर्धा के बीच पनपते है। बाद के दिनों के प्यार ही समय की कसौटी पर वास्तविक और चिरस्थायी होते हैं।

प्रथम दिवस ही वह उसके आधिकारिक रवैये से खफा हो गया था। वह कभी-कभी ही पान खाता था जब वह अत्यधिक प्रसन्न होता है और सिगरेट जब वह अत्यधिक तनाव में। आज वह बेहद प्रसन्न था। परंतु उसे पान खाए व्यक्ति सामंती मानसिकता के लगते थे। उससे बात करने की अनिच्छा जाहिर की। टालने की अनिच्छा से मुंह घुमा लिया। शायद। कुछ कहा भी। जो बेहद धीमा और अस्पष्ट था। उसे बुरा लगा था। कहीं भीतर खटकने लगा था। फिर, उसकी लगातार चुप्पी से उसे गहरी ठेस लगी। उसने पूरी कोशिश की इस अकल्पनीय दृश्य और वाक्य की वास्तविकता

को तौलने-परखने की।

वह समझ गया था। उसकी बात जायज थी। वह मान गया था। उसने उसके बाद कभी पान का सेवन ही नहीं किया।

बीच एक रात को वह सो रही थी। उसने उसे झिंझोड़ा। उसकी आवाज के साथ वह उठ बैठी। चारों तरफ अंधेरा था, घुप्प अंधेरा। हड़बड़ाकर उठ बैठी और विमूढ़ भाव से उसे खोजने लगी। सिर्फ आकृतियाँ थीं। उसकी आँखें अजीब सी आतंकग्रस्त और प्रश्नाकुल लगीं। उसे पास पाकर वह आश्वस्त होती है।। वह कुछ नहीं जानता। पहल करते सदैव वह डरता। अस्वीकार का दंश उसे प्रताड़ित करता है। वह जल्दी से निर्णय नहीं कर पा रहा था कि कैसे अपने को प्रस्तुत करे। काव्या ने फौरन उसका संकोच ताड़ लिया। मुलायम स्वर में बोलीए "संकोच करोगे तो किसी नतीजे पर पहुँच पाना मुश्किल होगा। वह दुहराती है। उसे तसल्ली आती है। फिर वे खाली होते हैं। बेमन से वह परहेज करती। अब जब वह उसके साथ होती है, तब उसका प्रतिरोध नगण्य रहता है।

आज रविवार है। कुर्सी पर अधलेटी सी। उसने आँखें बंद कर रखी थीं। वह उसी के विषय में सोच रही थी कि इतना अच्छा एकडेमिक कैरियर होने के बावजूद वह अभी तक क्यों साधारण सी प्राइवेट नौकरी कर रहा है। उसे यह तो पता चल गया था कि वह अपनी माँ की खातिर दूसरे शहर की पोस्टिंग के लिए अनिच्छुक है और माँ इस घर को मरते दम तक छोड़ने के लिए राजी नहीं है। क्या ऐसा किया जाए कि वह सम्मान जनक नौकरी में आ सके। मैं कुछ कर सकती हूँ क्या ण्घ्

"अंदर आ सकता हूँ...काव्या" उसे हँसी सूझी।

चौककर वह सीधी हो आई। उसने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"लगता है। किसी पुराने को याद कर रही हो।"

"क्यूँ प्राण लेना चाहते हो?" वह अपने पर नियंत्रण खो बैठी।

"तुम्हारा भूत क्यों नहीं पीछा छोड़ता?"

"गलत है, यह सब तुम्हारी सोच और मानसिकता।"

"मगर क्यूँ अकसर तुम ख्वाबों और ख्यालों में खोई दिखती हो।" उसने तंज कसा।

"सब्र की भी एक सीमा होती है।"

"होती है निश्चित! और मेरे भीतर वह अब चूक गई है।"

"यह सब तुम्हारे संशय की अनगिनत दीवालें है जिन्हें तुम अभी तक कायम रखे हो।"

"क्या बकती हो" उसका स्वर अत्यधिक तेज हो गया था।

"एक बार और कहो।" उसने कहा।

"क्या?"

"जो अभी कहा था।" एक फुफकारती-सी आवाज।

वह डर गया। कुछ देर तक चुपचाप उसे घूरता रहा। उसने कभी इस तरह नहीं सोचा था। उसने सोचा, चुपचाप उठकर चले जाना चाहिए।

लेकिन वह रुक जाता है, न डर नहीं वह शांत है।

वह कुछ हैरान होकर हवा में ताकती रही। फिर, विस्मय से उसे देखती है।

"तुम मुझे बाहर आने को कह रहे हो! यही सच है! जो व्यक्ति मेरे जीवन से निकल गये हैं, उनका दुबारा प्रवेश नामुमकिन है। हकीकत तो यही है कि तुम मेरी साफगोई को अभी तक पचा नहीं पाए हो। शक नाम का कीड़ा जो तुम्हारे भीतर स्थायी रूप से स्थापित हो गया है। वो अकसर तुम्हें कोंचता रहता है।"

"मेरा आशय यह नहीं था" किन्तु वह रुकी नहीं

"सत्य कहने के लिए जितना साहस जुटाना होता है, सुनने वाले को उससे कहीं अधिक झेलना दुष्कर होता है।"

बड़ी मुश्किल से वह अपने को समेटकर वहाँ से अपने को निकाल पाया। एक तरह से उसके वाक्य बाणों के अनवरत प्रहार से रण छोड़ आया। परंतु उसने।

उस दिन से उसने बोलना बंद कर दिया। पिछले दो हफ्तों से बोलचाल बंद, लेकिन उसकी पूरी सतर्कता और संकोच के बावजूद स्थिति ठीक नहीं हो रही थी। उसने कई बार कोशिश की, किन्तु असफल रहा।

सोने की तैयारी में वह पलंग पर अधलेटी हो पत्रिका

के पन्ने पलट रही थी। अर्पित ब्रश करने गया था।

अर्पित ने निरीहता झटकी। उससे प्यार का इजहार भी एक चुनौती है। उस दृष्टि से आमंत्रित निमंत्रित करते हुए जी से भरकर उसे निहारा। उसके प्रति उसके चेहरे पर अलिप्तता स्थायी हो आई थी, जिसे उसने दूर करने की कोई कोशिश नहीं की। काव्या ने उसे टालने की अनिच्छा से मुँह और पत्रिका में घुसा लिया। काव्या अजनबी नहीं रही है, उसे उससे डरना नहीं चाहिए। कितना आसान है...? गर्मी अचानक बढ़ गई थी। वह उसके पास जाने का इरादा कर ही रहा था कि तभी उसे आभास हुआ कि वह अकेला नहीं है, उसकी तरफ से हल्की सी सरसराहट हुई है। वह पास आकर लेट जाता है और पत्रिका को परे कर देता है।

उसे देखती है जो उसके अंदर है।

वह सुन्न-सा होकर उसकी तरफ देखने लगता है। उसके सुन्न हो जाने से वह डरने लगती है। उसे डर लगता है कि कहीं वह उसे खो न दे जैसे उसने अन्यों को खोया है। तब तक वह और पास खिसक आयाए इतना कि उसकी प्रेम साँसें उससे टकराने लगीं।

"तुम ऐसे ही ठीक हो!" वह धीरे से फुसफुसाती है। ...और वह उसे खींच लेता है। बच्चों सी निरीह देह जो विवाहित होने पर भी कुंवारी जान पड़ती है। वे एकाकार हो गए। उसके चेहरे पर शर्म और सहानुभूति के अजीब से घुले मिले भाव थे, सहानुभूति उसके लिए और शर्म खुद के लिए। प्रत्युत्तर में वह कृतज्ञता से दोहरा होने लगा।

उसके भीतर मचलती, उबलती, खौलती, तमतमाती और धमकाती कई ऐसी स्थितियाँ की भीड़ इकट्ठा हो गई थी। वे सब उसे ललकार रही थीं, धमका रही थीं, धिक्कार रहीं थीं, चुनौती दे रहीं थीं, उसके पत्नी होने का मकसद तलाश रहीं थीं। जिन्हें उसने अपने से बाहर किया।

उसकी कॉल आई कि, "वह आ रही है।"

"घर बंद है। अभी वह नर्सिंग होम में ही है। अभी छुट्टी नहीं मिली है।" अर्पित ने कहा।

"अभी रुकिएए मैं आ रही हूँ प्रतीक्षा करिए।"

काव्या आई और सब कुछ बदल गया। उसने बताया कि मैं बैंक से एक हफ्ते की छुट्टी लेकर आई हूँ। उसने तुनक कर अपना तर्क प्रस्तुत किया। "माँ अब यहाँ से पूर्णतया ठीक होकर ही जाएंगी। मैं देख लूँगी। तुम अपने स्कूल जाते रहिए!"

चार रोज में सब कुछ हो गयाए ऑपरेशन और माँ ठीक होकर घर भी आ गई। इस बीच वह भी स्कूल नहीं गया और ना ही काव्या ने कुछ कहा। घर में आकर माँ भली-चंगी लग रहीं थीं। उन्होंने ढेरों आशीषों से उन दोनों पर वर्षा कर दी।

वह एक हफ्ते बाद अपने स्कूल जा रहा था। वह वहाँ लिपिक था। घर से निकलने के पहले ही काव्या ने उसे पकड़ा। उसने बेहद बिंदास अंदाज में उसे हिदायत दीए "ज्यादा गिड़गिड़ाने और दबने की जरूरत नहीं है। अभी तुम ओवरऐज नहीं हुए हो। अभी बड़ी अच्छी सरकारी सम्मानजनक नौकरी मिल सकती है। तुम्हारे पास तीन वर्ष अब भी बाकी हैं। उसमें ध्यान दो और प्रयत्न करो।" यह कहकर वह उसे टोहने लगी।

"मगर... माँ...छोड़कर...? मैं नहीं जा सकता।"

"मैं यहीं रहूँगी माँ के लिए। तुम मेरा इतना विश्वास नहीं करते" इस बार उसके होंठ अप्रत्याशित हँसी में फैल गए। अर्पित खड़ा रहा। फिर उसकी ओर देखा। काव्या की तरफ से उठती आवाजों की लहरें उठ कर, उससे टकराकर उसे बेहतर गंतव्य की तरफ ठेल रहीं थीं। घनिष्ठता अधिकार को साथ लाती है। उसे यह सोचकर विस्मय होता है कि वे इतने दिन से साथ है, लेकिन अभी तक आपस में खुले नहीं। वह एक-दूसरे के लिए बंद लिफ़ाफ़े की तरह हैं जिनका पता तो पढ़ा जा सकता है, किन्तु भीतर क्या है सिर्फ अनुमान ही लगाया जा सकता, और अनुमान विपरीत भी हो सकता है। उस दिन के बाद पहली बार लगा कि वह उम्र में हास्यास्पद रूप में न केवल छोटा है, बल्कि अनजान भी। उसे आज भी यह सोचकर हैरानी होती है कि वह क्या उसे जान पाया है। वह चलने लगा। बाहर निकल कर उसने फ्रेश होने के लिए अपने चेहरे पर अनायास हाथ फिराया। उसे कुछ गीला लगा। अरे! यह क्या आँसू थे सहसा उसे विश्वास नहीं आता है। उसे लगा कि वह बहुत ही जटिल रहस्यमय ढंग से उस पर आश्रित है, जैसे उसके न होने से वह सब कुछ खो देगा।

एक पैसे की कीमत

डॉ. रमाकांत शर्मा

"पापा सौ रुपये दो ना," यतीश ने कहा।

"कल ही तो तुम्हें दो सौ रुपये दिए थे। क्या किया उनका।"

"स्कूल में दोस्तों के साथ समोसे और चाय ली थी बस। बचे हुए बीस रुपये मेरे बैग में पड़े हैं।"

"अच्छा, ये सौ रुपये किसलिए?"

"कहा ना मेरे पास बीस रुपये ही बचे हैं। सौ ही मांग रहा हूँ। आपको तो पता है सौ रुपये में आता ही क्या है" स्कूल में भूख लगी तो कुछ खा पी लूंगा।"

"देखो, आज दे रहा हूँ। ये हर दिन सौ-दो-सौ रुपये मांगोगे तो कैसे चलेगा? थोड़ा देखभाल कर खर्च किया करो, समझे?" हमारे जमाने में तो हमें एक पैसा भी बड़ी मुश्किल से मिलता था।

एक पैसा? यतीश ने अविश्वास से कंधे उचकाए और सौ का नोट पकड़ते हुए मुंह बिचका कर बैग संभालता हुआ स्कूल के लिए निकल गया।

वह बेटे को जाते हुए देखता रहा। सबकुछ कितना बदल गया है, उसने सोचा। उसकी आंखों के सामने लगभग उतनी ही उम्र का वह लड़का घूम गया जो स्कूल के लिए घर से निकल रहा है। उसके कंधे पर कपड़े से बना बस्ता टंगा है, एक हाथ में वह छोटी सी पोटली है, जिसमें माँ ने रोटियां और अचार बांधकर दिये हैं और दूसरा हाथ कमीज को खींच-खींच कर निकर के उस भाग को ढंकने में लगा है जहां से वह थोड़ा सा फट गया है। उसने सिर झटक कर उस दृश्य को अपने मस्तिष्क से निकालने की कोशिश की, पर वह तो अंगद के पांव की तरह जम सा गया है।

उसका बचपन उसकी आंखों में घूमने लगा है। बाबूजी की जी-तोड़ मेहनत के बावजूद चार बच्चों का परिवार पालना कितना मुश्किल था। महीने का आखिरी हफ्ता निकालना तो बहुत कठिन हो जाता। बस महीना ठीक तरह से निकल जाए और किसी से उधार लेने की नौबत ना आए, संभवतः यही सोचकर बाबूजी ने किसी तरह का कोई शौक नहीं पाला था। उनका खुद का खर्चा तो कुछ था ही नहीं, ना बीड़ी, ना सिगरेट और ना पान। उसके जेहन में कहीं पढ़ी गुलजार की पंक्तियां घूम गईं, "धूप में बाप और चूल्हे पर माँ जलती है, तब कहीं जाकर औलाद पलती है।" उसे लगा माँ और बाबूजी उसके पास ही खड़े हैं, अनजाने में उसकी आंखों में नमी तैर गई।

कैसे दिन थे वे! बाबूजी के पास सिर्फ दो पैंट और दो कमीजें थीं, जिन्हें वे अदल-बदल कर पहनते और ऑफिस चले जाते। उनके जूते एड़ी की तरफ से घिसे रहते जिसकी वजह से चलते समय उनका पैर थोड़ा एक तरफ झुक जाता।

माँ के पास घर में पहनने के लिए दो सूती धोतियां थीं। वे नहाते समय एक को धोतीं और उसे सूखने डालकर दूसरी पहनकर घर के काम में लग जातीं। उसे याद है उनके पास दो रेशमी साड़ियां भी थीं जिन्हें वे बहुत संभालकर रखतीं। कहीं आते-जाते समय उनमें से कोई एक संदूक से निकालतीं और आते ही उसे तह करके वापस संदूक में रख देतीं। अच्छी सी कोई कीमती साड़ी ना होने के कारण वे कई बार शादी जैसे समारोह में जाना टाल जातीं। जब घर-परिवार में शादी होती और वहां जाना टाला नहीं जा सकता तो ऐसे समय पड़ोस की आंटी बहुत काम आतीं। वे अपनी एक-दो अच्छी साड़ियां और कुछ आभूषण माँ को दे देतीं। माँ से उनकी दांत-काटी दोस्ती थी। माँ लौटते ही उनका सामान वापस कर देतीं और शादी-ब्याह से मिले पकवान और लड्डुओं में से कुछ उन्हें भी साग्रह दे आतीं। आंटी के उपकार का बदला इससे बेहतर तरीके से माँ चुका भी तो नहीं सकती थी।

जहां तक कपड़ों का सवाल है, उन बहन-भाइयों के पास भी सामान्यतः दो-दो जोड़ी कपड़े ही होते। वह किसी हमउम्र को अच्छे से सुंदर कपड़े पहने देखता तो कल्पना में

खो जाता कि अगर उसने वे कपड़े पहने होते तो कैसा लगता! खुद को उन कपड़ों में देखता तो शर्मा जाता, कितना सुंदर दिखता है वह!

उनके पास स्कूल की यूनिफॉर्म अलग से थी जिसे वे सोमवार से शनिवार तक पहनकर स्कूल जाते। इतवार को माँ सबकी यूनिफार्म धोती और सोमवार को उसे पहनाते समय यह हिदायत देना नहीं भूलती कि इसे गंदा मत करना और आते ही उतारकर रख देना। स्कूल की यूनिफॉर्म का खाकी निकर और सफेद कमीज उसे अभी तक याद है। जब तक कमीज या निकर इस हद तक फट नहीं जाते कि उन्हें सीना मुश्किल हो जाए, तब तक उन्हीं से काम चलाना होता।

जब भी कपड़ों की बात उठती है, अनायास उसे वह प्रसंग याद आ जाता है, जब उन्हें अपनी बुआ की बेटी की शादी में जाना था। बुआ जी का विशेष आग्रह था कि उनकी इकलौती बेटी की शादी में उनका पूरा परिवार जरूर शामिल हो। वे सब शादी में जाना तो चाहते थे पर किसी के पास भी ढंग के कपड़े नहीं थे। हांए माँ के लिए ऐसी कोई समस्या नहीं थी, उसके लिए तो पड़ोस की आंटी थी ही। माँ की जिद के चलते पिताजी ने अपने लिए एक नई पेंट और कमीज सिलने डाल दी। रहे बस एक-एक दो-दो साल के अंतर वाले चार बच्चे। तय यह हुआ कि कम से कम शादी वाले दिन के लिए उन सभी के लिए एक-एक नई ड्रेस सिलवा दी जाए।

माँ सबके लिए कपड़े खरीदने गई। हरेक के लिए अलग-अलग थानों में से कपड़े सिलवाना बजट में नहीं बैठ रहा था। उस मुश्किल घड़ी में खुद कपड़े वाले ने सुझाया कि यदि एक ही थान में से सबके लिए कपड़ा ले लिया जाए तो वह काफी सस्ता पड़ जाएगा। माँ ने एक कपड़ा पसंद किया और दजी को नाप देने के लिए उन सभी को बुला भेजा। उसी कपड़े में से उसके और छोटे भाई के लिए कमीजें बनीं और दोनों बहनों के लिए फ्रॉकें।

जब वे सब बिलकुल एक जैसे कपड़े पहनकर शादी में शामिल होने के लिए घर से निकले, तो ऐसा लग रहा था जैसे किसी पल्टन के सिपाही कदमताल करते जा रहे हों। कहना ना होगा कि शादी में जिसने भी उन्हें देखा उसने ही उनके खूब मजे लिए। कुछ लोग मुँह दबाकर हंस रहे थे, तो कुछ लोग खुल्लमखुल्ला। नए कपड़े पहनने का उनका सारा उत्साह काफूर हो गया और वे भाई-बहन शर्म के मारे पूरी शादी में एक-दूसरे से भरसक दूर रहने की कोशिश करते रहे।

घर के काम बड़े कस के चलते। जब अचानक कोई मेहमान आ जाता तो घर का बजट और भी बिगड़ जाता। बजट तो बिगड़ता ही, विशेषकर सर्दियों की रात में सोने की समस्या उठ खड़ी होती। उनके पास कोई अतिरिक्त रजाई नहीं थी। जो थीं उनसे चारों बच्चे और मां-बाबूजी भी बड़ी मुश्किल से काम चलाते। सर्दियां आने से पहले घर में हर बार यह बात चलती कि इस बार एक गद्दा और एक रजाई और बनवा ली जाएगी, पर यह कभी संभव नहीं हो पाया।

दूसरों के घरों की रजाइयों पर कवर चढ़े रहते, पर उनकी रजाइयां बिना कवर की थीं। उन पर कवर चढ़ाना काफी महंगा जो था। बिना कवर की रजाइयां साल-दर-साल बराबर इस्तेमाल के कारण अंदर और बाहर से मैली हो गई थीं। जब भी उसे रजाइयों का ध्यान आता है, उसे वह वाकया याद आ जाता है, जब उसे रजाइयों को लेकर बहुत शर्मिंदगी महसूस हुई थी।

कड़कड़ाती सर्दियों के दिन थे। वह रजाई में दुबका पड़ा था। तभी उसके साथ छठी कक्षा में पढ़ने वाला उसका एक दोस्त मिलने आ गया। वह अच्छे खाते-पीते घर का था। माँ उसे उसके पास अंदर छोड़ गई। सदी इतनी ज्यादा थी कि रजाई में से निकलने का उसका मन ही नहीं कर रहा था। उसने अपने दोस्त से कहा "यार, सर्दी बहुत है, आजा तू भी रजाई में आ जा।"

"नहीं यार, मैं ऐसे ही ठीक हूँ।"

"ऐसे ही कैसे ठीक है। ठिठुरा देने वाली सर्दी है, कम से कम पैरों पर तो डाल ले रजाई।"

"कहा ना यार, मुझे...।"

"क्यों क्या बात है, तुझे ठंड नहीं लग रही!"

"ऐसा कुछ नहीं है, पर मुझे यह रजाई अच्छी नहीं लग रही। देख, अंदर और बाहर से कितनी मैली हो रही है। मैं

इसे नहीं ओढ़ सकता...।"

उसकी बात सुनकर वह सन्न रह गया। शर्म के मारे कुछ बोल नहीं पाया। फिर खुद भी रजाई से बाहर निकल आया और उसे लेकर दूसरे कमरे में चला गया जहां बैठकर वह पढ़ा करता था। उसने कई बार यह बात माँ को बताने की सोची पर पता नहीं वह माँ से कुछ कह क्यों नहीं पाया।

त्योहार के दिनों में माँ और बाबूजी की कोशिश रहती कि बच्चे किसी बात की कमी महसूस ना करें। पर, जब वे भाई-बहन दूसरों के घरों में त्योहारों की चमक-दमक देखते और बच्चों को खुलकर खर्च करते देखते तो सोचते! काश वे सब भी उनकी तरह से त्योहार मना सकते। पर, उन्हें इस बात का कोई ज्यादा मलाल नहीं रहता, जो कुछ मिलता वे उसी में खुश हो जाते। सीमित साधनों में मनाए जाने वाले त्योहारों में भी उनका उत्साह कभी कम हुआ हो, ऐसा उसे याद नहीं।

अभी कुछ समय पहले ही उसके चाचा जी ने बातों ही बातों में उसे जब उस दीवाली की याद दिलाई तो उसका मन ना जाने कैसा हो आया। चाचा जी एम.ए. की पढ़ाई पास के शहर में रहकर कर रहे थे, क्योंकि तब उनके शहर में बी.ए. तक की ही पढ़ाई होती थी। बड़े भाई होने के नाते उनका सारा खर्चा जैसे-तैसे बाबूजी ही उठा रहे थे। दीवाली की छुट्टियों में चाचा जी जब घर आए तो वे सभी बहुत खुश हुए। संग-साथ में त्योहार मनाने का मजा ही कुछ और होता है।

इस बार दीवाली महीने के अंतिम सप्ताह में पड़ी थी। माँ इधर-उधर जो कुछ बचाकर रखती, वह सारा उसने दीवाली की तैयारी में लगा दिया। तैयारी भी क्या, बेसन के कुछ लड्डू बनाए, मिट्टी के कुछ खिलौने और दीए खरीदे और दीयों में भरने के लिए तेल लाकर रख लिया। बच्चों के लिए कुछ फुलझड़ियां और खील-बताशे भी वह ले आई। इस सबके बाद घर में सिर्फ एक रुपया ही बचा रह गया। दीवाली का त्योहार और हाथ में बचा सिर्फ एक रुपया। तय यह हुआ कि वे सब शहर की रोशनी और सजावट देखने के लिए मुख्य बाजार का चक्कर लगा कर आएंगे। बच्चों को अच्छी तरह समझा दिया गया कि वे बाजार से कुछ भी खरीदने की कोई जिद नहीं करेंगे।

शहर की जगमगाहट देखकर और रास्तों पर बिकने वाली चीजों को ललचाई नजरों से देखकर जब वे मन मसोसे घर की तरफ लौट रहे थे, तभी किसी ने बाबूजी के कंधे पर हाथ रखा और पूछा "कैसे हो, रघुवंश।"

बाबूजी ने मुड़कर देखा तो वे चौंक गए "अरे, जीजाजी? आप।"

"हां, भाई। जब से तुम्हारी बहन भगवान को प्यारी हुई है, तब से तुम लोगों ने तो मेरी खैर-खबर लेना ही छोड़ दिया।"

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। आफिस और घर-गृहस्थी के कामों में इतना उलझकर रह गया हूँ कि समय ही नहीं मिलता। लेकिन, आपने भी तो दीदी के जाने के बाद कोई संपर्क नहीं रखा।"

"क्या करूं? परेशान रहता हूँ। कोई आस-औलाद भी तो नहीं। दुकान के काम में अपना मन लगाता हूँ। सच कहूँ तो कहीं आने-जाने का जरा भी मन नहीं करता।''

"हम सब हैं ना, आप जब मन करे हमारे घर आ जाया करें।"

"जाने दो, आज दीवाली के दिन कहां की बातें ले बैठे। वैसे मेरे लिए तो त्योहार भी एक आम दिन की तरह निकल जाता है। घर में बैठे दम घुट रहा था तो बाहर घूमने निकल आया। बड़ा अच्छा लगा तुम सभी का अचानक यूं मिल जाना।"

"हां, हमें भी बहुत अच्छा लग रहा है। चलें, आप हमारे साथ घर चलें। साथ बैठकर लक्ष्मी जी की पूजा करेंगे।"

उन्होंने कुछ क्षण सोचा, फिर बोले "ठीक है, चलता हूँ तुम्हारे साथ।"

वे उनके साथ ही घर चले आए। उन्हें देखकर माँ के चेहरे पर खुशी के बजाय चिंता की लकीरें उभर आईं "अरे, जीजाजी? आज कैसे रास्ता भूल गए।"

जवाब बाबूजी ने दिया "रास्ते में मिल गए हमें। साथ में लक्ष्मी पूजन के लिए इन्हें घर ले आए।"

"बड़ा अच्छा किया। आइये, बस में तुलसी चौरे पर दीया रखकर अभी आई। पूजा करते हैं, फिर खाना लगाती

हूँ।"

उन सबने साथ पूजा की और फिर माँ के हाथ का बना स्वादिष्ट खाना खाया। बच्चे पटाखे चलाने घर से बाहर चले गए। बहुत दिन के बाद मिले अपने जीजाजी से बाबूजी और चाचाजी बहुत देर तक बातें करते रहे।

रात जब गहराने लगी तो जीजाजी ने उठते हुए कहा, "बहुत अच्छा लगा। कई साल बाद दीवाली मनाई और वह भी अपने लोगों के साथ बैठकर। अब मैं चलता हूँ।"

तभी माँ ने हाथ के इशारे से बाबूजी को अंदर बुलाया और कहा "दीदी के जाने के बाद आज जीजाजी पहली बार और वह भी त्योहार के दिन हमारे घर आए हैं, उन्हें विदा तो करना होगा। मेरे पास तो सिर्फ एक रुपया बचा है।"

बाबूजी कुछ देर सोचते रहे फिर बोले "कम से कम सवा रुपया तो होना चाहिए। लेकिन, क्या करें? ऐसा करो, तुमने जो लड्डू बनाए हैं, उनमें से चार लड्डू निकालो और उनके ऊपर एक रुपया रखकर दे दो, उसी से उन्हें विदा कर देते हैं।"

"वह तो ठीक है, पर अभी तनख्वाह मिलने में तीन दिन बचे हैं और मेरे हाथ में एक पैसा भी नहीं बचेगा।"

"कल की कल देखेंगे। अभी तो उन्हें विदा करना है। जाओ, रोली-चावल और लड्डू लेकर आ जाओ जल्दी से।"

बाबूजी के जीजाजी तो विदा हो गए। पर, वह कैसी दीवाली थी जब उनके पास एक पैसा भी नहीं था। कितनी अजीब बात थी, लक्ष्मी पूजन करने के बाद खाली हाथ और कल की चिंता में गुजर गई थी वह पूरी रात।

बाबूजी अपनी पूरी पगार माँ के हाथ में लाकर रख देते। फिर उन मुट्ठी भर पैसों में घर चलाने की पूरी जिम्मेदारी माँ के कंधों पर आ जाती। माँ के लिए यह काम बहुत कठिन होता, पर वह इस जिम्मेदारी को निभाने में अपनी पूरी ताकत लगा देती।

उसे याद आया, स्कूल में कुछ खाने-पीने के लिए माँ से पैसा निकलवाना कितना कठिन होता था। कभी-कभी वह माँ के बहुत पीछे पड़ता तो वह एक पैसा उसके हाथ पर रख देती। कितनी सारी चीजें आ जाती थीं उन दिनों एक पैसे में। अगर एक पैसा जेब में हो तो वह उससे लाल बेर, नारंगी वाली लेमनचूस की गोलियां, बुढ़िया का बाल, चटपटा चूरन, खूनी कटारे, आलू की चाटए अमरूद, केला या फिर दाल पकवान खरीद सकता था। और हां, वह आइस केंडी या डंडी में लगी कुल्फी का भी मजा ले सकता था। किसी दिन माँ दो पैसे दे देती तो वह खुद को रईस समझने लगता।

उस दिन सुबह से ही उसका मन कर रहा था कि वह स्कूल में रेस्ट के दौरान कुल्फी खाए। इसके लिए उसे एक पैसे की जरूरत थी। वह सुबह से माँ के पीछे पड़ा था "मां, मुझे स्कूल के लिए दो पैसे दे दो ना।"

"बेटा, तुझे तो पता है महीने का आखिरी दिन है, मेरे पास दो पैसे तो क्या एक पैसा भी नहीं है।"

"चलो, दो नहीं तो एक पैसा ही दे दो...।"

"कहा ना, नहीं है मेरे पास। होता तो दे नहीं देती।"

"आप छुपाकर भी तो रखती हो ना, उसमें से दे दो।"

"कहां छुपाकर रखती हूँ।"

"रसोई में दीवार पर जो छोटा सा आला बना है, वहां रखती होए मुझे मालूम है।"

"हां, कभी-कभी एक दो पैसा बच जाता है, वहां रख देती हूँए पर आज वहां भी कुछ नहीं है।"

"जरूर होगा, आप देना ही नहीं चाहतीं बस...।"

"ठीक है, अगर तुझे लगता है कि वहां है तो तू खुद ले ले।"

"सच्ची? पर मेरा हाथ नहीं पहुंचता वहां, बहुत ऊंचा है।"

"अब मुझ पर तुझे विश्वास नहीं है तो मैं क्या करूं।"

"रुको, मैं देख लेता हूँ।"

उसने रसोई में रखा पटरा उठाया और उसे आले के नीचे रखकर उस पर चढ़ गया। फिर भी उसका हाथ वहां तक नहीं पहुंचा। झल्लाई हुई माँ को भी हँसी आ गई। वह झेंपता हुआ उतरा और एक खाली डिब्बा पटरे पर रखकर उस पर चढ़ने लगा। माँ ने कहा, "देख, गिर मत पड़ना।"

"नहीं गिरूंगा चिंता मत करो।"

अब उसका हाथ उस आले तक पहुंच गया। उसने हाथ फिरा कर अच्छी तरह देखा, सचमुच वहां कुछ नहीं था।

गहरी निराशा लिए जब वह नीचे उतरा तो माँ ने कहा "देख लिया? नहीं है ना कुछ भी। मैं झूठ क्यों बोलूंगी। चल, जिद मत कर, बाबूजी की तनख्वाह आते ही तुझे एक नहीं दो पैसे दे दूंगी, बस'

वह कुछ नहीं बोल पाया और मुंह लटकाए स्कूल के लिए निकल गया।

रेस्ट में उसने माँ की दी हुई रोटियां अचार के साथ खाईं और फिर यूंही इधर-उधर चक्कर लगाने लगा। स्कूल के मेनगेट से निकलते ही दाहिनी ओर एक मंदिर था। उसके सामने एक बड़ा मैदान था। इस मैदान में स्कूल के बच्चे खेलते। मैदान के तुरंत बाद सड़क थी। सड़क तक जाने के लिए पुराने समय का एक बड़ा दरवाजा बना हुआ था। इसी दरवाजे के दोनों ओर बच्चों का मन लुभाने वाली चीजें बेचने वालों की रेहड़ियां या खोमचे लगे होते। रेस्ट में बच्चे वहां भागकर पहुंचते, जेब से पैसे निकालते और अपनी मनपसंद चीजें चटखारे ले-लेकर खाते।

वह घूमता हुआ उस तरफ निकल आया। बच्चों को तरह-तरह की चीजें खाते देख उसके मुंह में पानी भरने लगा। वहीं रोज की जगह कुल्फी वाला भी खड़ा था। गर्मियों के दिन थे, वहां बच्चों की भीड़ लगी थी। उसके मुंह में कुल्फी का स्वाद उतर आया। उसने वैसे ही अपनी खाली जेबें टटोलीं और मायूसी से भर उठा। काश, सिर्फ एक पैसा होता उसके पास तो वह भी कुल्फी का मजा ले रहा होता। उसे अपनी बेबसी पर तरस आने लगा और वह वहां से तुरंत लौट आया और मंदिर की सीढ़ी पर आकर बैठ गया।

उसे बहुत बुरा लग रहा था। रह-रह कर ठंडी-मीठी कुल्फी उसकी आंखों के सामने नाच उठती और वह मन मसोस कर रह जाता। इस चिलचिलाती गर्मी में अगर वह कुल्फी खा सकता तो...। वह आगे कुछ सोच नहीं पाया। रेस्ट का समय खत्म होने में दस मिनट ही बचे थे। उसने सोचा, यहां से उठकर क्लास में चले जाना चाहिए। जब तक वह यहां बैठा रहेगा उसकी जबान पर कुल्फी का स्वाद आता रहेगा।

वह उठने को ही था कि उसकी क्लास में उसके साथ पढ़ने वाले लड़के कपूर चंद की आवाज ने उसे चौंका दिया "तू यहां बैठा है यार, मैं तुझे कबसे ढूंढ़ रहा हूँ।"

"क्यों क्या हुआ?" उसने सशंकित मन से पूछा।

"हुआ कुछ नहीं। तुझे याद है, काफी दिन पहले मैंने तुझसे एक पैसा लिया था। उसके बाद मैं अपने मामा की शादी में चला गया, कल ही लौटा हूँ। बहुत देर हो गई यार तेरा पैसा लौटाने में, ले यह पैसा पकड़।"

पैसा पकड़ते हुए उसका हाथ कांप रहा था। उसे याद आया, उस दिन माँ ने उसे दो पैसे दिए थे। उनमें से एक पैसा कपूर चंद ने उससे यह कहते हुए लिया था कि वह कल लौटा देगा। फिर कपूर चंद कई दिन से स्कूल नहीं आया तो वह भूल ही गया कि उससे एक पैसा वापस लेना है।

"अच्छा हुआ तू यहां मिल गया, चल मैं चलता हूँ।", कहकर कपूर चंद वहां से तुरंत चला गया।

वह उस छेद वाले पैसे को हैरत से देख रहा था। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि उसके हाथ में एक पैसा है। वह सीढ़ी से उठा और तेजी से कुल्फी वाले की तरफ चल पड़ा।

उसे याद आया, जब उसने कुल्फी वाले को पैसा पकड़ाया तो उसने उसके आगे एक छोटा सा डिब्बा बढ़ा दिया और कहा "बच्चे एक पर्ची उठा इसमें से।"

"यह क्या है, उसने पूछा।"

"आज से मैंने लॉटरी शुरू की है। इस डिब्बे में से एक पर्ची उठा ले। पची पर जो नंबर लिखा आएगा, उतनी कुल्फी मिलेंगी तुझे। समझा?"

उसने डिब्बे में हाथ डालकर एक पर्ची निकाली। अरे वाह उसकी पर्ची पर "दो" लिखा था। वह खुशी से झूम उठा। उसके एक हाथ में नहीं, दोनों हाथों में एक-एक कुल्फी थी। उस दिन उसे जो तृप्ति मिली उसे वह कभी नहीं भूल पाया।

अनायास उसके मुंह से निकल पड़ा, "एक पैसे की कीमत तुम क्या जानो यतीश बाबू।"

नई सरहद का अनुभव

अनिता कपूर

अपने अमेरिका में विगत वर्षों में प्रवासकाल के दौरान हुए एक खास अविस्मरणीय अनुभव को आपसे सांझा करने से पहले एक बात बताना चाहूँगी, कि 'वर्ल्ड गिविंग इंडैक्स' के मुताबिक किसी अजनबी की मदद करने में अमेरिकियों का स्थान दुनिया में पहला है। ऐसी कितनी ही बातें हैं, जो अमेरिकी मानसिकता को भारतीयों से भिन्न बनाती हैं। ज्यादातर भारतीयों की तरह वे मेहनती होते हैं पर आसान रास्ता नहीं अपनाते।

नए आईडियाज़ नई सोच डैवलप करने, नई सोच सामने रखने या फिर चीजों को नए तरीके से करने का प्रयास करने में अमेरिकी नहीं हिचकते और अक्सर परिणाम आश्चर्यजनक निकलते हैं। आपको जानकर हैरानी होगी कि अमेरिका में आज जिन्हें श्वेत या व्हाइट अमेरिकन कहा जाता है वो अमेरिका के मूल निवासी नहीं हैं। अमेरिका के मूल निवासियों को अमेरिकन इंडियन्स या रेड इंडियन्स कहा जाता है। वर्षों पूर्व पहले फ्रांस फिर ब्रिटेन के लोग (अंग्रेज़ लोग) वहाँ बसने आए और यहीं रह गए। वो ही स्थानीय अमेरिकन कहलाते हैं। काम के प्रति उन का जुनून और सकारात्मक प्रवृत्ति देखते ही बनती है।

साथ ही आम धारणाओं के विपरीत अमेरिकी लोग स्वभाव से काफी विनम्र होते हैं। लेकिन कोशिश करें कि आप उनसे कोई व्यक्तिगत सवाल न पूछें। जब तक आप उनके साथ या वो आपके साथ बेहद सहज न हों, तब तक आप उनके साथ प्रोफेशनल रवैया अपनाए रखें और बेवजह ही अगर उनके साथ कोई बात शेयर करेंगे तो मिश्रित प्रतिक्रिया आपको मिल सकती है। और स्थानीय अमेरिकियों की यही बात से मैं अवगत थी।

इसीलिए अपने पड़ोसी निकोल पीटरसन से इसी सोच की पटरी पर चलते हुए हाय-हैलो तक ही सीमित रही। हाँ कभी लिफ्ट में या कार पार्किंग में एक साथ आमना-सामना हो गया तो हमारी बातचीत का अगला पड़ाव होता था, उस दिन का मौसम या कुछ और सहज और पर्सनल हुए तो "आज क्या खाया।" इसके आगे और व्यक्तिगत न हो इसके लिए अमेरिकी लोग आपको मौका ही नहीं देते इसी के चलते मुझे भी अब सरहद में रहना आ गया था। चूंकि मैं अकेली रहती हूँ यह वे जानती थी और मुझे हमेशा कहती थी कि, "कभी भी किसी चीज की जरूरत हो तो अवश्य बताना" और मैं मन ही मन उसके अनकहे को समझ हँसती थी जैसे वो कह रही हो की हाँ, सिर्फ खास एमरजेंसी में ही बताना, पर वैसे अपनी सरहद में ही रहना।

यहाँ के स्थानीय लोग रिश्तों में करीबी होने पर भी ज्यादा व्यक्तिगत नहीं होतेए और हम भारतीयहमें तो पहली मुलाक़ात में ही सामने वाले की पूरी जन्म कुंडली जब तक खंगाल न लें तब तक मुलाक़ात अधूरी सी लगती है। और फिर अगली मुलाक़ात में और जानने हेतु सवालों की लिस्ट भी मन ही मन तैयार होने लगती है। खैर मैं अपने उस अनुभव को आपसे पहले बाँट लूँ जिसने मेरा दिल छू लिया और मुझे पुनर्जन्म मिला।

कुछ दिन से मैं काफी बीमार-सा थका-सा कमजोर महसूस तो कर रही थी, पर हालत ऐसी हो जाएगी सोचा न था। सुबह से बेहद चक्कर आ रहें थे साथ ही छाती में भारीपन था। अपने देसी टोटके सारे आज़मा चुकी थी, पर हालत सुधरने का नाम नहीं ले रही थी सब देवी-देवताओं को भी याद कर चुकी थी।

अपनी एक दो सहेलियों को भी फोन मिलाये फिर अपनी बिल्डिंग के ऑफिस में भी फोन किया की शायद कोई फोन उठा लें, तो अपनी स्थिति से अवगत कराऊँ, शायद कोई सहायता आ जाए। पर उस दिन तो जैसे शनि की साढ़ेसाती ही लगी हुई थी। हर फोन सिर्फ वॉइसमेल पर ही जा रहा था। जैसे-तैसे खुद को संहालने की कोशिश में यह याद ही नहीं रहा की एम्बुलेंस बुला सकती थी। एक अनजाने भय के कारण और पराये देश में अंतिम समय आने

जैसे खौफ़ में, दिमाग और सोच ने काम करना ही बंद कर दिया था। इसी बीच अचानक साथ वाले अपार्टमेंट का दरवाजा खुला तो यकायक निकोल पीटरसन की याद आई। सोचा इसी से बात करती हूँ। पर अगले ही क्षण लगा कि यह तो सिर्फ हाय-हैलो ही करना जानते हैं, बस उतने तक ही सीमित रिश्ता रखते है। यह मेरी क्या मदद करेगी। काश कोई अपना भारतीय होता यहाँ। उस पूरी बिल्डिंग में कोई भी भारतीय परिवार नहीं रहता था...थे तो बस स्थानीय, एशियन और मेक्सिकन लोग।

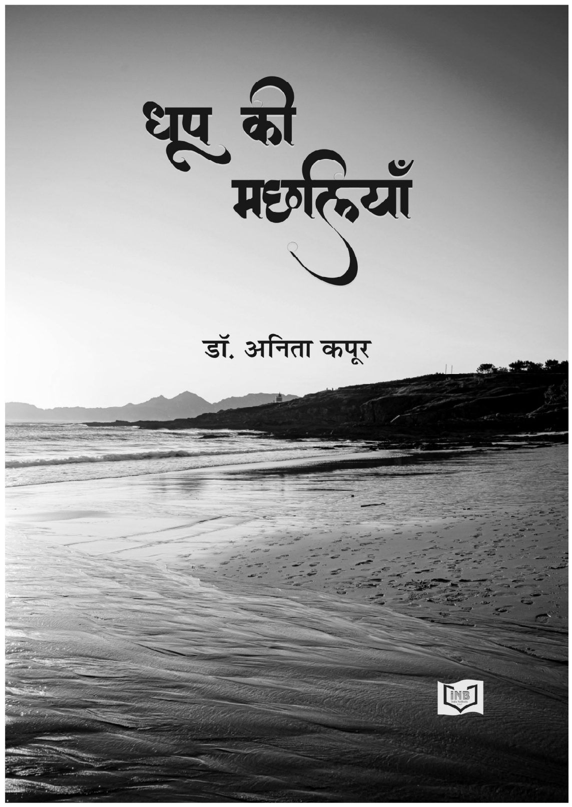

अब तक मुझे साक्षात काल सामने दिखने लगा था। पर मन को समझाया कि अरे यमलोक तो हमारे शास्त्रों और धर्म में बताया गया है। यहाँ अमेरिका में, इनका भी तो कोई मृत्युलोक होगा ही और वहाँ के यम को शायद मुझ पर तरस आ जाए, क्योंकि मैं भी अमेरिकन सिटिज़न हूँ न। और अगर वो मुझे इस धरती पर और कुछ जीवन दान देना चाहे तो यकीनन मेरी गोरी पड़ोसन के दिल में मेरे पुकारने पर सरहद के पार भेज ही देगा। और ऐसा ही हुआ।

जैसे ही मैंने गिरते-पड़ते अपना दरवाजा खोल बाहर झाँका तो निकोल को बाहर खड़े देखा और तुरंत बिना हैलो किए सीधा उससे मेडिकल मदद के लिए पुकारा। तब तक मेरी सोचने समझने की शक्ति जवाब दे चुकी थी। मैं सिर्फ उस सरहद की लकीर को ही देख पा रही थी कि वो उसे पार करेगी या नहीं, और मैं बेहोश हो गयी।

अगले दिन जब आँखें खुलीं तो स्वयं को अस्पताल के बिस्तर पर पाया। अभी डॉक्टर से पूछ ही रही थी मुझे यहाँ कौन लाया और मुझे क्या हुआ? इतने में निकोल को अस्पताल के कमरे के दरवाजे से अंदर आते हुए देखा। उसके हाथ में जूस भी था, और इधर मेरी आँखों में बहते आंसुओं ने उसे बिना कुछ बोले ही कृतज्ञता के भाव दिखा दिये थे। निकोल ने तुरंत नजदीक आ कर मेरे हाथों को सहलाया और सांत्वना दी। उसके हाथों में मेरे घर की चाबियाँ भी थी। उसने बताया की कैसे तुरंत मेरे बेहोश होने के बाद उसने तुरंत अस्पताल से एम्बुलेंस बुलाई और इसी समय दौड़ कर मेरे बेडरूम में जा कर मेरे बैग से घर की चाबियाँ और मेरा पर्स निकाला। जरूरत की दो-चार वस्तुएँ इकठ्ठा कर मेरे साथ अपनी कार में एम्बुलेंस के साथ-साथ यहाँ आ कर सारी औपचारिकता पूरी कर मुझे एडमिट कराया। डॉक्टर के हाथ सौंप कर अपने पति को फोन कर हालत बताई और पति को घर जा कर बच्चों को खाना दे, उनका खयाल रखने को कह दिया। मैं निकोल की इस आकस्मिक पर अनुभवी दक्षता को आँखों में अश्रु लिए निहारती ही रह गयी और उन दिन पहली बार उसके परिवार और बच्चों के बारे में जाना तो सरहद की लकीर मिटने लगी। मुझे महसूस हुआ, मेरी अकस्मात बीमारी ने एल ओ सी, की लकीर को हल्का करने में खूब रोल निभाया हो। मुझे अपनी बीमार हालत से जैसे प्यार होने लगा था। मुझे एक सप्ताह अस्पताल में रहना पड़ा। इस बीच निकोल बराबर प्रतिदिन मेरा हाल-चाल

पूछने आती रही।

अस्पताल से छुट्टी होने पर जब मैं घर वापस पहुंची, तो अंदर घुसते ही मेज पर मेरे पूरे आठ दिनों की डाक पड़ी दिखी। मेरी आँखों में सवाल देख निकोल ने तुरंत बताया कि मेरी चाबी के गुच्छे में लेटर बॉक्स की चाबी देख वो रोज़ डाक निकलती रही थी। वो जानती थी हमारे लेटर बॉक्स अनुपात में छोटे हैं और दो-तीन में खाली करने ही पड़ते हैं। वरना उसके भरे होने पर, डाकिया फिर उसमे और डाक नहीं डाल पाने के कारण डाक बाहर ही रख जाता है। उसकी इस सोच के पार मुझे सिर्फ मनुष्यता ही दिख रही थी, न की अमेरिकी और भारतीय होने का अंतर। पर यहाँ यह तो कहना ही होगा कि अगर, कोई मेरा अपना भी इस समय यहाँ होता तो यह सब इतनी दक्षता से न कर पाता।

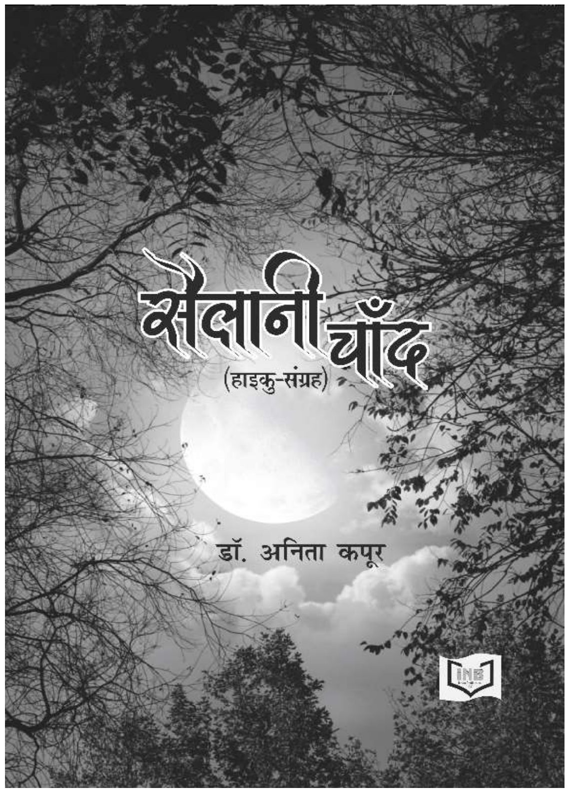

घर आने पर मुझे पूरी तरह से स्वस्थ होने में पंद्रह दिन लग गए। इन पंद्रह दिनों में निकोल लगातार मेरे खाने -पीने, मेरी डाक और दवाइयों का बराबर खयाल रखती रही। धीरे-धीरे बिल्डिंग के बाकी निवासी जो एशिया और मेक्सिकन मूल के थे, पर अब तो वे भी स्थानीय निवासियों की श्रेणी में आते थे, जिनमें से कुछ ग्रीनकार्ड होल्डर और कुछ अमेरीकन सिटिज़न बन चुके थे, मिलने आते रहे, पर निकोल उन्हें भी मेरे पास ज्यादा देर बैठने और बोलने नहीं देती थी अब वो मेरी सरहद के अंदर आ चुकी थी।

मेरे स्वस्थ होने तक मैं इसी गुमान में रही कि सरहदें मिल चुकी हैं, पर मैं यहाँ भारतीय होने के कारण बहुत संवेदनशील हो, गलत सोच बैठी थी। जैसे ही निकोल ने महसूस किया कि मैं अब स्वस्थ हो कर अपनी पुरानी दिनचर्या में लौट रही हूँ। वैसे-वैसे ही उसकी तरफ की सरहद की धुंधलाई रेखा वापस अपने रूप-रंग में लौटने लगी थी। सरहद की लकीर के उस गहरे होते हुए रंग को मैं अपने अंदर वापस समाहित कर दोबारा ही पहले वाली निकोल को देखने चाहती थी और उस पुराने हाय हैलो तक सीमित वाली अपनी पहचान को पुनर्जीवित रखने की चाहत में, एक मानसिक यंत्रणा से गुज़र रही थी। जिसका अहसास निकोल तक नहीं पहुँच रहा था। कहीं पढ़ा था कि "अपेक्षा दुख -तकलीफ की जननी है," पर हम भारतीय बस ऐसे ही होते हैं न।

पहले बार एक नए मजबूत एहसास के साथ रिश्तों के बारे में, एक नए दृष्टिकोण से यह सीखा कि अकेलेपन के साथी, उन तमाम बिना सरहदों वाले रिश्तों से तो, यह सरहद वाले रिश्ते ही बेहतर हैं। जिन्हें अमेरिका के स्थानीय निवासी खूब निभाना जानते हैं।

कुदरत

हरिप्रकाश राठी

चांद को विदा कर सूरज पूर्वी छोर से उठा तो समूचा जगत् क्षणभर में क्रियाशील हो गया। मनुष्य ने सूर्य नमस्कार कर उसका अभिनंदन किया तब भी वह चुप देखता रहा। अन्य सभी तो अपने कार्यों पर लग गए, कुछ बूढ़े उससे उलझ पड़े, "देव! अभिनंदन का प्रत्युत्तर दीजिए, यूं गूंगा होकर चुप देखने का अर्थ क्या है?'' सूरज ने इधर-उधर देखा, किंचित् मुस्कुराया एवं निष्प्रभावित आगे बढ़ गया। क्या सूरज सचमुच गूंगा है अथवा उसके पास भी कोई जुबान है?

कट्टाजी ने नित्य की तरह बॉथरूम में आकर बाल्टी में पानी भरा। उसके ऊपर एक मग्गा रक्खा एवं चुपचाप बालकनी में चले आए। उनके दिमाग में तैरते विचारों की तरह मग्गा बाल्टी में हिलने लगा। बालकनी में आकर उन्होंने उगते सूर्य को देखा, बाल्टी नीचे रखकर दोनों हाथ ऊपर किए एवं आलस्य तोड़ते हुए रोजमर्रा के कार्य में लग गए। पौधों एवं उनके मुख पर पड़ने वाली सूर्य किरणों से पौधों एवं उनके चेहरे दोनों का तेज बढ़ने लगा था। घर में उन्हें आवंटित कार्यों में नित्य पौधों को पानी पिलाना भी था। बालकनी के ठीक आगे ऊपर की ओर अन्दर आते हुए एक ग्रिलप्लेट बनी थी जिसमें गमले रखने के सांचे थे। इन्हीं गमलों में पांच पौधे रखे थे जिनमें बांये छोर से पहला गुलाब, उसके आगे कैक्टस, तीसरा मोगरा एवं चौथा पांचवां क्रमशः गेंदा एवं रातरानी का था। पांचों पौधे सुन्दर मिट्टी के गमलों में लगे थे जिन पर कुछ माह पूर्व ही कट्टाजी ने घर के रंगरोगन के साथ हल्का टेरीकोटा पेंट करवाया था। कट्टाजी इन पौधों में समय-समय पर खाद आदि देते, इनकी ठीक से रखरखाव भी करते। धीरे-धीरे उनका इन पौधों से ऐसा अंतरंग रिश्ता बन गया कि वे इन्हें देखते ही खिल उठते।

मग्गे से गुलाब के पौधे में पानी डालते हुए उन्होंने इधर-उधर देखा एवं मन ही मन बोले, "कैसा है तू?'' गुलाब ने भी उन्हें देखा, अभिवादन में टहनी झुकाई एवं मुस्कुराकर बोला,'' अच्छा हूँ पापा! '' अरे! तो क्या कट्टाजी के पौधे बोलते भी हैं। उसकी टहनी सहलाते हुए कट्टाजी ने उसे क्षणभर देखा, फिर बोले, '' बधाई गुलाब! यह देख तेरी दूसरी डाली पर एक कली चटकी है।'' कहते-कहते उनके चेहरे पर एक विचित्र विनोद उभर आया। उन्होंने होले से उस कली को हाथ में लेकर सहलाया। "आपके पोती हुई है हुजूर!" उत्तर देते हुए गुलाब ठठाकर हँस पड़ा। कट्टाजी झेंपे पर वे कौन-से रुकने वाले थे, ''ज्यादा दाँत मत दिखाए अभी थोड़े दिन में झरता नजर आएगा।'' उन्होंने उसी अंदाज में उत्तर दिया। उन्हें लगा जैसे गुलाब ने व्यंग्य किया।

"पापा! आप भी कमाल करते हो। मैं आपका बेटा हूँ तो यह आपकी पोती हुई ना। झर भी गया तो क्या, मुझे पूरा विश्वास है आप इसे पाल लेंगे।" कहते हुए गुलाब जरा आगे की ओर झुका, मानो कहना चाह रहा हो पापा बुरा न मानना जो सूझा वही जवाब दे दिया। कट्टाजी ने कोई उत्तर नहीं दिया एवं कैक्टस के पास आ गए। यह एक राजस्थानी डेजर्ट कैक्टस था जिसे कुछ समय पूर्व उनके एक वन अधिकारी मित्र ने भेंट किया था। ऐसा कैक्टस हल्के हरे रंग का होता है, लंबा बढ़ता है एवं इसके कांटे तीखे होते हैं। कैक्टस से उन्होंने दुकान की कुछ समस्याओं के बारे में बात की, उसकी सलाह ली एवं आगे बढ गए। तत्पश्चात् पानी देते हुए उन्होंने मोगरे, गेंदा एवं रातरानी से भी बात की एवं चुप भीतर चले आए। सुबह-सुबह उनके दिमाग में असंख्य विषय तैरते, पौधों से अलग-अलग मुद्दों पर बात कर कट्टाजी एक विशिष्ट लोक में खो जाते। वे भीतर आए तब तक उनका चेहरा प्रसन्नता से सराबोर था। क्या कट्टाजी इन पौधों से वार्ता करते हुए किसी रहस्य की थाह पा गये थे। भीतर आते ही रेणु ने उन्हें लताड़ा, "पानी देने का काम पांच मिनट का है। पचास मिनट लगाते हो। जाने इन पौधों से क्या बातें करते हो'' रेणु से विवाह किये अब उन्हें दो दशक बीत चुके थे।

"एक बार तू भी करके देख, मजा आ जाएगा। आधी समस्या तो इनसे बात करके ही समाप्त हो जाती है।" उन्हें पता था रेणु गुस्से में और कुछ कहेगी। यही सोचकर वे सीधे अपने कमरे में आये एवं टॉवल लेकर बाथरूम में घुस गए।

कट्‌टाजी जिनका पूरा नाम कमलेश कट्‌टा है, अब चालीस पार है। साढ़े पांच फुटे होंगे। सर पर खिचड़ी बाल, निर्मल दार्शनिक आंखें एवं उस पर लगा गोल्डन फ्रेम का चश्मा उन्हें जिम्मेदार गृहस्थियों के वर्ग में खड़ा करता है। उनका पारदर्शी चेहरा उनके उजले अंतस की गवाही देता है। अपने परिवार से बेहद प्यार करते हैं। अंतर्मुखी इतने कि मित्र रिश्तेदारों तक से मन की बात नहीं कहते। हां, कॉलोनी के कुत्ते, गायों, पेड़ों को अक्सर सहलाते हुए दिख जाते हैं। एक बार तो कॉलोनी का एक आदमी बता रहा था कि वे चांद-तारों तक से बातें करते हैं। उसने स्वयं कट्‌टाजी को मुंह ऊंचा किये ऐसा करते देखा था। उनकी इन्हीं आदतों के मद्देनजर लोग कभी-कभी उन्हें क्रेक-सिरफिरा भी कह देते हैं। दो लड़कियां हैं जिनके कैरियर की चिंता उन्हें अक्सर सताती है। दोनों जुड़वाँ हैं एवं दोनों ने कुछ समय पूर्व स्कूल पूरी कर सीपीटी की परीक्षा दी थी एवं उत्तीर्ण भी हो गई हैं। सीपीटी का परिणाम सुनकर कट्‌टाजी खुशी से फूले नहीं समाए थे। कट्‌टाजी का स्वप्न है कि दोनों बच्चियां सी, करें। कट्‌टाजी पूरे प्रकृति प्रेमी भी हैं तथा हर साल परिवार के साथ किसी हिल स्टेशन पर जाते हैं। पिछले माह ही वे सपरिवार नैनीताल होकर आए हैं।

कट्‌टाजी की यहीं मुख्य बाजार से हटकर एक गली में स्वर्णाभूषणों की दुकान है। वे सोने के बने जेवरात बेचते हैं एवं मरम्मत भी करते हैं। धनी नहीं हैं पर इतनी गुजर हो जाती है कि उनका परिवार खर्च मस्ती से निकल जाए। दुकान खोले बीस वर्ष होने को आए अब तो शहर में अनेक लोग उन्हें नाम से जानते हैं। बात के धनी हैं एवं बाजार में उनकी ईमानदारी की तूती बोलती है। लोग कहते हैं कट्‌टाजी उतने ही खरे हैं जितना उनका सोना। जहां अन्य दुकानों पर मिलावट आम है, कट्‌टाजी के माल की गुणवत्ता असंदिग्ध है। वे जो कहते हैं वही देते हैं। कुल मिलाकर अब तक ईश्वर ने लाज रक्खी है लेकिन अच्छे दिन भी सदैव कहां रहते हैं।

आज सुबह दुकान आए तो वहां का दृश्य देखकर उनके पांवों तले जमीन सरक गई। उनका दिमाग चकरा गया, पांव कांपने लगे मानो उन पर आसमान टूट पड़ा हो। बात भी कुछ ऐसी ही थी। बीती रात चोर उनकी दुकान के ताले तोड़कर माल साफ कर गए। दुकान में खाली डिब्बे पड़े थे एवं तिजोरी खुली थी। देखते-देखते वहां भारी भीड़ इकट्‌ठी हो गई। आनन-फानन पुलिस को सूचित किया गया, पुलिस ने आकर मौका-ए-तफ्तीश की एवं कट्‌टाजी को साथ लेकर थाने में एफआईआर दर्ज करवाई। कट्‌टाजी का मुंह लटक गया। वे थाने से सीधे घर चले आए। रेणु, बच्चे समाचार जानकर स्तब्ध रह गए।

रात में कट्‌टाजी रेणु के समीप कटे वृक्ष की तरह पड़े थे। उनके चेहरे का रंग उड़ गया। ओह! अब वे ग्राहकों को क्या जवाब देंगें। रेणु ने उन्हें सांत्वना दी तो वे बच्चे की तरह फफक पड़े, "रेणु! अब क्या होगा? पूरे जीवन की बचत क्षणभर में काफूर हो गई। ओह! अब इन बच्चियों का विवाह कैसे करूंगा? कैसे इनके अरमान पूरे होंगे इतनी बड़ी हानि की भरपाई करते हम बर्बाद हो जाएंगे।" मन का दुःख प्रकट कर वे कुछ हल्के हुए। देर रात तक नींद नहीं आई। चेहरे पर एक रंग आता, दूसरा जाता। इस दुरूह दुःख के चलते उनका हृदय कांपने लगा, दिमाग की नसें खिंच गई। वर्षों संघर्ष के बाद आराम के दिन आए थे। अभी तो गुलशन महका ही था और खाक उड़ गई। भोर के पूर्व कुछ उनींदे हुए तो उन्हें राहत मिली। सुबह उठकर वे नित्य की तरह बाल्टी भरकर पौधों के समीप आए। उनका गुमसुम, मलिन मुख उनकी अंतर्दशा का बयान कर रहा था। इन पौधों के अतिरिक्त अब उनकी सुनने वाला भी कौन था? गुलाब को पानी देते हुए बोले, "बेटे गुलाब! मैं तो लुट गया।" कहते-कहते उनके कपोलों से अश्रुओं की अजस्र धार फूट पड़ी। "हां पापा! मुझे पता है। कल ड्राईंगरूम में आप मम्मी से बात कर रहे थे, तभी मैं समझ गया आप पर कोई भारी विपत्ति आई है।" कहते हुए गुलाब उदास हो गया। उसके गुलाबी रंग में एक अजीब सा काला रंग घुल गया। यही हाल इस बात को सुनकर अन्य पौधों का था। सभी पौधों

का स्वाभाविक रंग ऐसे बदल गया मानो उन पर बिजली गिर गई हो। "क्या बताऊँ तुझे! ऐसा उलझा हूँ कि कोई रास्ता नजर नहीं आता। अब तो फाकों के दिन आ गए।" यह कहते हुए उन्होंने बुदबुदाते होंठों से उसे सारा घटनाक्रम बताया।

"पापा! आप आगे से ध्यान रक्खा करें। अब जमाना बहुत खराब है। खैर! अब मैं भी मोर्चा संभालता हूँ। आज मैं हवा मौसी को जवाबदारी देकर कहूँगा तुम तो जगतभर में डोलती हो, तुम्हें तो पता ही होगा चोर कहां है? तुम चाहो तो उसका पता अवश्य लगा सकती हो। तुम कहां नहीं हो। पापा! आप चिन्ता न करें, मैं सच कहता हूँ, हवा मौसी ठान ले तो क्या पता नहीं लगा लेती। वह तो बंद तिजोरियों तक में घुस जाती है।'' कहते हुए गुलाब किंचित् आगे झुका तो कट्टाजी ने नित्य की तरह उसे सहलाया, लेकिन रोज के सहलाने एवं आज के सहलाने में फर्क था। आज उनकी अंगुलियां कांप रही थीं। उन्हें इस दशा में देख गुलाब रुआंसा हो गया। उसके ऊपर बिखरी ओस की बून्दें उसकी अन्तर्वेदना एवं विलाप की कथा कह रही थीं।

कट्टाजी उसे पानी देकर कैक्टस के पास आए। कैक्टस ने उनका एवं गुलाब का वार्तालाप सुन लिया था।

"ओह पापा! यह तो बहुत बुरा हुआ, लेकिन आप हिम्मत न हारिए। जगत् में कौन है जिसके बुरे दिन नहीं आते। यहां रात है तो दिन भी है। अन्धेरा है तो उजाला भी है। आप धैर्य रखिए। आप को उच्च रक्तचाप की बीमारी है, फ़िक्र करने से बात और बिगड़ जाएगी। आप चिन्ता न करें। धूपरानी मेरी प्रेयसी है। आज मैं उसे सख्त हिदायत दूंगा कि चोरों का पता लगाए। चोर उससे बचकर कहां जाएंगें? पाप किया है तो उल्टे मुंह गिरेंगें।'' कहते-कहते कैक्टस गम्भीर हो गया।

उदास मन कट्टाजी अब मोगरे के पास आए।

"पापा! आप दिन-रात इतनी मेहनत करते हैं एवं कमीने चोर हमारा सब कुछ ले उड़े। चोरों ने अभी मेरा गुस्सा कहां देखा है। आज मैं तितली को कहकर शहरभर में फैले मेरे मोगरा भाईयों को सूचित करूंगा कि वे निगाहें तेज कर ध्यान रक्खें कि चोर किधर से भाग रहे हैं। आप निश्चिंत रहें। कुछ तो पता चलेगा ही। किसी ने तो उन बदमाशों को देखा होगा। पुलिस उन्हें जरूर पकड़ लेगी। हड्डी-पसली ढीली होगी तब अकल आएगी कि पापा का माल चुराने का हश्र क्या होता है।" मोगरे का सफेद रंग गुस्से के मारे हल्का लाल हो गया।

कट्टाजी अब गेंदे के आगे खड़े थे। आज उसका भी मुंह लटका हुआ था। लगभग रोते हुए वह भी फूट पड़ा, "पापा मैं अभी चिड़िया को कहता हूँ वह अन्य पक्षियों को साथ लेकर चोरों का पता लगाए।'' कहते हुए गेंदा भावुक हो गया। कट्टाजी अब रातरानी के आगे खड़े थे। उसकी दशा देखते बनती थी। वह सुबक रही थी। जस-तस संयत होकर बोली, "मधुमक्खी हमसे रस लेकर शहरभर में मंडराती है। आज मैं उसे स्पष्ट कह दूंगी आगे से रस चाहिए तो जाओ चोरों को ढूंढ़ो और उनकी ऐसी फजीती करो कि नानी याद आ जाए।" कहते हुए रातरानी का भी गला भर आया।

कट्टाजी इस वार्तालाप के पश्चात् फूल से हलके हो गये। उन्हें लगा किस तरह दुःख बांटने से आधा हो जाता है। क्या खामोशियों की जुबां इतनी शक्तिशाली होती है?

सच्चे लोगों का आर्त्तनाद कायनात तक को हिला देता है। एक आश्चर्य घटित हुआ। मात्र एक दिन बाद दोपहर पश्चात् चोर जब अवसर पाकर शहर से बाहर निकल रहे थे, उनकी कार का एक हथठेले से एक्सीडेंट हुआ। कहते हैं कार चलाते हुए ड्राइवर को एक मधुमक्खी ने काट खाया एवं यकायक ध्यान भंग होने से यह दुर्घटना हो गई। आनन-फानन पुलिस आई तो यह जानकर दंग रह गई कि कार के भीतर बैठे वही चोर हैं जिन्होंने कट्टाजी के यहां चोरी की। पुलिस ने चोरों को गिरफ्तार कर सभी आभूषण कब्जे में लिए। कट्टाजी ने थाने पहुंचकर उनके माल की पुष्टि की। कट्टाजी थाने से निकले तब तक सांझ हो चुकी थी। शहर के उस पार डूबता हुआ सूरज सवेरे प्रश्न करने वाले बुजुर्गो को प्रत्युत्तर दे रहा था, "बात करने के लिये जरूरी नहीं है मुंह से बोलो। प्रकृति की खामोशियां उससे कई अधिक वाचाल होती हैं। कुदरत चुप होकर भी बोलती है।'' यह भी सुनने में आया कि जिस ठेले से कार का एक्सीडेंट हुआ उसमें कुछ पौधे रक्खे थे। कुछ लोग यह भी कहते हैं कट्टाजी ने स्वयं ठेले वाले के घर जाकर नुकसान की भरपाई की थी।

केवल पत्र नहीं है यह

अनिता रश्मि

इस घर के दरवाजे, खिड़कियाँ, बरामदे जितने खुले-खुले थेए दिल भी उतना ही खुला था।

उस घर के बंद दरवाजे की ओर ताकते हुए सुकेश अक्सर सोचता, 'कभी कोई फेंस के पास, खिड़कियों के पार या बरामदे में दिखलाई क्यों नहीं देता?'

बेटा रौनक भी प्रायः पूछता–

"पापा! उनके घर के दरवाजे हमेशा बंद क्यों रहते हैं, वहाँ कोई नहीं रहता है क्या?"

आगे-पीछे के दोनों दरवाजे कभी-कभार ही खुलते हैं।

शाम को इस घर का मालिक सुकेश बेटे के साथ खेलने के बाद लॉन चेयर पर सुस्ताते हुए नजर आ जाता। उसकी निगाहें अनायास उठ जातीं। वह उत्सुकता से उधर देखता रहता। शाम ढले शायद किसी की परछाईं ही सही। शाम रात में बदल जाती, दरवाजा नहीं खुलता। कभी चाँदनी रात, तो कभी अमावस्या का घनघोर अँधेरा। लेकिन वहाँ हमेशा अँधेरा ही छाया रहता। सुकेश मच्छर मारना छोड़ अंदर चला आता। उस मकान के दरवाजे पर लगा बड़ा सा ताला रात गहराने पर लगभग नौ बजे खुलता भी। सवेरे दस बजे बाहर से बंद होता। सुकेश की ड्यूटी आठ बजे से ही शुरू होती थी। वह सात पंद्रह तक निकल जाता अपने विद्यालय के लिए। सर्दियाये दिन में आठ बजे से क्लास चलती थी। अन्य समय और पहले जाना पड़ता था। तीन बजे तक छुट्टी। बच्चों के बीच रहते हुए सुकेश बच्चों की मासूमियत को बेहद प्यार करने लगा था। सब बच्चे उसे अपने से लगते। बच्चों के प्रति वह बहुत संवेदनशील था। छोटे बड़े फूल से कोमल बच्चे उसके मन को हरा-भरा रखते थे। पैंतालीस की वय में भी खिचड़ी बालोंवाला सुकेश उनके बीच अपने को युवा महसूस करता।

वह समझ भी नहीं पाया, वे आखिर कैसे, कौन लोग हैं? कितने लोग हैं? रौशनी की लकीरें बंद दरवाजे के पार से झाँक किसी की उपस्थिति की चुगली खाती रहतीं।

शुरू-शुरू में सुकेश सोचता, झिर्रियों से झरती रौशनी की इन लकीरों के लिए उन्हें जाकर टोके–

"दिन भर क्यों लाइट जलाते हैंघ् सेव पावर।"

एक बार गया था मिलने। बेल बजाई थी, तो अंदर से ही किसी ने कितनी रूखाई से कहा था,

"कौन है? क्या चाहिए।"

"कुछ नहीं चाहिए। मैं आपका पड़ोसी। बस, मिलना है। दरवाजा खोलेंगे"

"मुझे नहीं मिलना। जाइए वापस। न जाने कहाँ-कहाँ से...। दूसरे के घरों में ताक-झाँक करने की आदत अच्छी है।"

प्रतिप्रश्न से उदास, अपना सा मुँह लेकर उसका मिलनसार मन लौट गया था। आते ही रिया से कहा था,

"कैसे हैं ये अजनबी लोग! घर आए अतिथि के साथ कोई ऐसे बिहेव करता है। इतना रुखा स्वर!"

उसी दिन उसने लॉन चेयर को दूसरे ढंग से सजा लिया था। तीनों कुर्सियों की बैक उस मकान की ओर।

पर उसके कान जैसे पीछे भी थे। उसे अक्सर आवाजें परेशान कर डालतीं। रौनक के साथ खेलते हुए भी–

"गों ऽऽ! गों ऽऽऽ!!"

"अरे! कोई तो अंदर छूटा रह जाता है।"

"शायद डॉग, पापा।"

सिक्कड़ के खिसकने, मेज बर्त्तन खड़कने की आवाजें! वह नहीं चौंकता... 'आम घरों से उठनेवाली आवाजें हैं।'

उसके चौंकने की वजह थी, बंद मकान से भी उठा करतीं थीं वे आवाजें!

किसी की बंद ताले के पार से उपस्थिति का आभास! फिर वह मन को समझा लेता, जरूर घर में कोई पेट होगा।

रिया कहती–

"किसी के फटे में झाँकने की आदत तो तुम्हें कभी थी नहीं। फिर इस नवीन मकान में ऐसा क्या अजूबा हो

गया।"

"कुछ...। कुछ तो है। अजूबा ही है रिया। बेहद अस्वाभाविक।"

"चलें अंदर" कुछ भी ऐसा वैसा नहीं है। ये फ्लैट कल्चर के लोग हैं। पड़ोस से कटे-फटे रहने वाले लोग। फेंस से घिरे बड़े क्वार्टर में आ फँसे हैं, बस!"

"इतना भी क्या कटना! इतनी भी क्या प्राइवेसी!"

"भूल गए अपने फ्रेंड संतोष को? फ्लैट में केवल बीवी, बच्चे और मेड को जानता-पहचानता था। एक फ्लोर पर पाँच फ्लैट लेकिन किसी ने किसी का चेहरा तक नहीं देखा था। न ही एक-दूसरे के नाम, काम से वास्ता।"

रिया अपनी पतली, लंबी गर्दन हिलाती बोल पड़ती।

सुकेश नहीं भूला। एकदम नहीं भूला।

संतोष के पत्नी-बच्चे नाना के घर गए थे। अकेला संतोष बाथरूम में गिरकर ठीक दरवाजे तक आया और दरवाजे के पास बेहोश पड़ा रह गया। रात को फोन करने पर भी भनक नहीं लगी उसकी उषा को। वह दो दिन तक ऑफिस, घर में फोन घुमाती रह गई। जब तक ट्रेन घर पहुँचाती, गुमनाम सी लाश पड़ी रही दरवाजे के पास।

अब तक सुकेश को सालती है ऐसी मौत दोस्त की।

सुकेश का मन नहीं माना। दोपहर को लौटते ही एक दिन अपने घर के बदले उस घर के फेंस की ओर बढ़ गया, अप्रत्याशित। चारों ओर की खिड़कियाँ, दरवाजे बंद। पिछवाड़े की तरफ बढ़ा।

"गों ऽऽ! गोंऽऽऽ!!" फिर से वही आवाज। यह कौन सा पेट है भई। पीछे के द्वार की झिर्री से उसने आँखें जोड़ लीं। पिछला दरवाजा एक आँगन में खुल रहा था, उसके क्वार्टर की तरह। इधर के हर क्वार्टर की तरह। आँगन का बड़ा भाग सामने था। उसके पार से बड़ा बरामदा भी झाँक रहा था। एकदम अपने घर जैसा।

पर आँगन में वहीं पड़े मेज से बँधा सिक्कड़। बड़ा सा कटोरा, लुढ़का हुआ। कटोरा भोजन से लिथड़ा पड़ा था। बरामदे पर एक किनारे एक बेड भी नजर आया।

बहुत देर खड़ा रहा सुकेश सुगबुगाहट को पकड़ने की कोशिश करते हुए। कोई भी नजर नहीं आया। अंततः वह लौट आया।

रिया सुनकर चौंकी जरूर पर इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं लगा उसे।

"पेट के घर में रहने पर ये सब स्वाभाविक है।"

वह शाम की तैयारियों में व्यस्त रहते हुए बस इतना ही बोली। शाम को लॉन में रौनक के साथ क्रिकेट खेलते हुए भी सुकेश का ध्यान वहीं था। उसका मन आज लॉन में लगे खूबसूरत फूलों की ओर एकदम नहीं गया।

दूसरे दिन स्कूल से लौटने के बाद सुकेश फिर बगलगीर के पिछले दरवाजे पर। आज भी दरवाजा अंदर से बोल्ट। कुछ तो नया नहीं। थोड़ी देर बाद आज भी लौटा।

लेकिन तीसरे दिन उसने अजूब देख ही लिया।

वही सिक्कड़! सिक्कड़ खड़का और एक चौपाया एक तरफ से सरकता दूसरी तरफ चला गया। कटोरे को उलटता हुआ। वह चौंका। उसकी आँखें झिरी से चिपक गईं। इंट्यूशन निरंतर तंग करता रहा है उसे। चौपाया पुनः उस ओर आया। सुकेश ठीक से देख नहीं पा रहा था। थोड़ी देर ठहरकर वह वापस लौटना ही चाहता था कि चौपाया एकदम सामने आए दरवाजे की ओर एकटक देखने लगा।

सुकेश की ऊपर की साँस ऊपर, नीचे की नीचे।

''क्या यह सच है?'' बुदबुदाहट उसके होठों पर।

एक किशोर था वह। कृशकाय! विकलांग और अर्द्धविक्षिप्त लग रहा था।

"गों ऽ! गोंऽऽ!!" उसके मुँह से अस्फुष्ट आवाज निकलने लगीं। फिर सुकेश थोड़ी देर में लौट गया।

'नहीं'। अब और नहीं। मेरा इंट्यूशन एकदम सही था।' उसी क्षण उसने ठान लिया। इस घर को अपने घर की तरह खुला, खिला बनाएगा वह। उस दिन उसने गोल-मटोल, घुँघराले बालोंवाले बेहद खूबसूरत बेटे रौनक को और अधिक प्यार किया। पप्पी से उसका मुँह भर दिया। उसके साथ देर तक खेलता रहाखूब देर तक।

कल पार्क के अस्सीम विस्तार में घूमने ले जाने और आइसक्रीम खिलाने का वादा भी कर लिया।

"हाँ पापा, सच कह रहे हैं।"

गोरे रौनक का चेहरा मारे उत्सुकता के लाल होने

लगाए जब वह चिल्ला-चिल्लाकर चक्कर घिन्नी बन गया।

लॉन चेयर की दिशा फिर पूर्ववत। शाम क्षितिज के ललहुन सूर्य को विदा कह चुकी थी, वह वहीं बैठा रहा। विदा होते सूर्य ने अपना पीला, गुलाबी दुपट्टा समेट लिया, वह वहीं बैठा रहा। रात का खामोश अँधेरा गहराने लगा, वह बैठा ही रहा।

रिया तीन-चार बार अंदर आने का निमंत्रण दे चुकी थी। उसने उतनी ही बार हाथ के इशारे से मना कर दिया। वह टकटकी लगाए उधर ही ताकता रहा, जिधर फेंस के पार ठीक उसके अपने क्वार्टर की तरह एक और क्वार्टर है। क्वार्टर की दीवारें, खिड़कियाँ, आँगन, बरामदे सब कुछ एक जैसा। लेकिन कुछ अनजाना। अनचीन्हा!

नौ बजे दो सायों को जैसे ही सुकेश ने फेंस पार करते देखा, वह उठ गया। साए बरामदे की ओर बढ़े, वह लपकता वहाँ जा पहुँचा। वे दरवाजा खोलकर अंदर दाखिल हो रहे थेए अंदर से किलकारी की आवाज आने लगी थी। सिक्कड़, मेज के खिसकने की भी।

स्त्री आगे बढ़ गई थी। मर्द भी किवाड़ भिड़का आगे बढ़ा।

"संजू, डोर बंद करो।"

एक स्त्री स्वर सुना सुकेश ने, जब वह दरवाजे से अंदर प्रवेश कर रहा था। स्त्री ने आहट से चौंककर पीछे देखा। देखती रह गई अपलक विस्फारित नेत्रों से। पुरुष अपने बैग को टेबल पर रख, उस पतले-दुबले विक्षिप्त से किशोर के सर पर हाथ फेरने में व्यस्त था।

"संजू, इसने तंग तो नहीं किया। खाना खाया था।"

पास ही खड़ी एक मोटी, अधेड़ महिला से वह पूछ रहा था। उसका ध्यान अंदर घुस आए अजनबी आगंतुक की ओर एकदम नहीं था। गोरे लेकिन झँवला, किशोर की नजर सुकेश पर पड़ी। वह किलकने लगा।

पुरुष अचानक पलटा।

सब हतप्रभ थे। सब, सुकेश पर ध्यान जाने के बाद से। दोनों पति-पत्नी कुछ देर गुस्से, शर्मिंदगी, अफसोस से सुकेश को देखते रहे। फिर पहले पति की नजर नीची हुईं, तब पत्नी की। वे निगाहें झुकाए सुकेश की नजर से जैसे बच जाना चाह रहे थे। सुकेश ज्यादा देर वहाँ नहीं रुका। एक निगाह उस तरतीब से सजे बेतरतीब कमरे पर डाली। सबके उदास, लज्जा से झुके चेहरे को देखा। आगे टी.वी. स्टैंड के पास गया, ठिठका और फिर बाहर।

इस बीच सुकेश ने न एक शब्द उनसे कुछ कहाए न कुछ पूछा। लौटते हुए एक निगाह उन लोगो पर पुनः डाली थी, बस!

"अरे! यह कागज कैसा? रितेश, उसने रखा है।"

पत्नी ने आश्चर्य कागज उठाया। पढ़ा। उसकी मुँदी-मुँदी सी आँखें नम हुई। कोमल, साँवले हाथों में थरथराहट सी भर गई। उसने काँपते हाथों से खत पति की तरफ बढ़ा दिया। पति ने भी पढ़ा। विचलित हुआ। फिर दोनों ने साथ में पढ़ा।

वह बेजान कागज नहीं, एक पत्र था जीवंत। कुछ बोलने को आतुर।

खत में लिखा था—

कुछ गुम जाने से ये जीवन खत्म नहीं हो जाता दोस्त। जीवन तो चलता ही रहता है। आप चलो, न चलो। वह रुकेगा नहीं। फिर हम क्यों रुक जाएँ!

हक नहीं है। फिर भी कहूँगा कि तुम्हें क्या हक है, किसी मासूम को उसके अनकिए अपराध की सजा दो।

इसे इसके हिस्से की धूप, हवा, पानी लेने दो। फिर देखना, यह कैसे फलता-फूलता है। कुदरत के इस खेल में तुम्हारा, इसका या किसी भी मनुष्य का क्या दोष।

क्यों बाँधकर रख दी इस कोंपल की बढ़त।

फिर फिर पूछता हूँ। हक है तुम्हें। किस सदी में जी रहे हो। बाहर निकलो तो सही।

तुम्हारे एक हमदर्द पड़ोसी ने तुम्हारे दर्द को जानने की जुर्रत की है। अंदर से आनेवाली किलकारी या आह की आवाज की अनदेखी नहीं कर सका वह। क्षमाप्रार्थी!

पड़ोसी के घर का गेट तुम लोगों के लिए सदा खुला है। मेरा बेटा रौनक भी अभी छोटा है। खेलने-कूदने की उम्र है उसकी। तुम्हारे बेटे की भी। रौनक तुम्हारे बेटे का इंतजर करेगा। आओगे न!

तुम्हारा ही
पड़ोसी सुकेश

नौकरानी

हरिहर झा

मैं अपने भाई की हवेली में कुछ दिनों के लिये आया हुआ था। बहुत अच्छा लग रहा था भाई-भाभी और भतीजी। एक नौकरानी थी—कुसुम नाम था। रंग गोरा, नाक-नक्श भी ठीक था पर अपने काम से काम रखने वाली। इधर-उधर के घरों की निंदा करने की आदत न थी। तो मुझे विश्वास था कि वह इस घर की निंदा भी कहीं करती नहीं होगी।

भाई और भतीजी घर में नहीं थे तो एक बार मेरी भाभी ने मुझे कहा, "कुसुम ऊपरी मंजिल के कमरों में झाडू लगाएगी। उस समय तुम उस कमरे में रहना ध्यान रखना।" मैंने देखा कुसुम यह सब सुन रही थी। मुझे उसके लिये बहुत बुरा लग रहा था। मेरे विचार से गुपचुप ही, नौकरानी पर ध्यान रखना मकान मालिक का अधिकार भी है और कर्तव्य भी। न जाने कब किसको चोरी का लालच आ जाए। पर खुलेआम ऐसे शब्दों में चोरी की शंका जाहिर कर देनाए बिना चोरी किये, यह नौकरानी का अपमान था। मुझे पता है दो साल पहले भाभी ने एक नौकरानी को चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा था। इधर भाभी मेहमानों में व्यस्त थी और उधर नौकरानी कपबोर्ड से नोट का बण्डल उठाने ही जा रही थी कि भाभी ने देख लिया। फिर उसे निकाल दिया। यह तो ठीक था पर इस तरह हर नौकरानी को चोर समझ कर काम करवाना कहाँ का न्याय है? इतनी अधिक शंका है तो फिर उसे नौकरानी रखा ही क्यों? पर मैंने देखा कुसुम के चेहरे पर कोई भाव नहीं थे। न नाराजगी के और न ही अपमान का कड़ुवा घूँट पीने के। मैं भाभी की आज्ञा का कायल था। उनसे असहमत होते हुए भी नौकरानी के सामने भाभी की निंदा करना नहीं चाहता था। चुपचाप कुसुम के साथ चल दिया।

व्यक्ति को जाँच करने का मनोविज्ञान मुझे भी थोड़ा-बहुत आता है और काफी हद तक मनोविज्ञान समझ लेने का मुझे भरम है। इसी भरम से तो मेरा अहं पुष्ट रहता है। मैंने उसका चेहरा और कार्य करने का ढंग देखा। मुझे कुछ लग नहीं रहा था कि यह नौकरानी चोरी कर सकती है। बड़ी स्वाभिमानी थी। भाभी इस पर बेकार शक किये जा रही है। यह चोरी क्यों करेगी? मुझे यह बुद्धिशाली भी लग रही थी। अगर इसे गलत रास्ते ही अपनाने हों तो वह इसी समय मुझ पर छेड़खानी, बलात्कार, न जाने क्या-क्या आरोप लगा सकती है। कोई गवाह तो है नहीं। सभी लोग इसे ही सच समझेंगे। बेचारे मर्द की क्या हस्ती! फिर वह मुझे ब्लैकमेल भी कर सकती है। आजकल ऐसे कानून बन गए हैं कि मुझे साबित करना होगा कि मैं निर्दोष हूँ। एक झटके में चाहे जितना कमा सकती है। छोटी छोटी चोरियाँ वह क्यों करेगी?

इस घर में मेहमान समझ कर मुझसे कुसुम बातचीत नहीं करती थी अतः मेरे लिये भी बात करना मुश्किल हो रहा था। खास कर नौकरानी के सामने भाभी के रवैये की बात और उनकी निंदा मैं बिल्कुल नहीं करना चाहता था। इसी उधेड़बुन में मैंने निर्णय लिया कि मैं कुसुम का अपमान बर्दाश्त नहीं करूँगा। मैं जान-बूझकर दूसरे कमरों में चला जाता। इस तरह मेरी ओर से नौकरानी को मौन संदेश था कि मैं तुम पर शत-प्रतिशत विश्वास रखता हूँ तुम कोई चोर थोड़े ही हो। भाभी तुम्हे जो भी समझें उससे मुझे क्या!

कुछ देर बाद भाभी की मेरे लिये आवाज़ आई "देवर जी! आपने नौकरानी वाला रूम छोड़ क्यों दिया। आप उसके साथ ही रहिए उसी रूम में।" मुझे भाभी पर क्रोध आया। भाभी! आप भी हद करती हैं! ऐसी सीधी-सादी और सुशील नौकरानी पर शक करती हैं। ठीक है, नौकरानी पर नजर रखता रहूँगा। पर उसे चोर समझ कर हर कमरे में उसके पीछे-पीछे घूमता रहूँ ऐसा भी क्या। और क्या- गारंटी कि फिर भी वह चोरी नहीं करेगी।"

अब जो हुआ वह अप्रत्याशित था। कुसुम खिलखिला कर हँसने लगी। वैसे हँसती तो मुझे अच्छा लगता। उसका चुपचाप और संवेदनाहीन रहना मुझे अच्छा नहीं लगता पर वह तो मुझ पर हँस रही थी। धन्य हो ऐसी नौकरानी! अब

क्या कहूँ? जिसके लिये मैंने अपनी भाभी पर क्रोध किया वह तो मुझ पर हँस रही थी। वह कह रही थी, “बाबूजी! मैं खुद चाहती हूँ कि मैं जिस कमरे में रहूँ वहाँ घर का कोई सदस्य रहे। आप निकल गए, वापस नहीं आए तो कुछ देर में खुद ही नीचे आ गई और भाभी-साहब को सब कह दिया। क्योंकि आपकी कोई वस्तु गुम हो जाए आपकी लापरवाही से। तो आपका पहला शक किस पर होगा? मुझ पर ही न! नौकरानी हूँ तो क्या! मेरी भी इज्जत है। चीज़ अगर छोटी-सी हो तो आप मुझे कुछ नहीं कहेंगे तो भी मैं इतना जानती हूँ कि आप संदेह मुझ पर ही करेंगे। कोई कीमती चीज़ हुई तो घर में कोतवाली लग जाएगी। आपके ऊटपटांग सवालों का जवाब देती रहूँ मानो मैं कोई चोर हूँ। क्यों? मैं किसी के वहम का शिकार बनना नहीं चाहती। आप चाहें तो मुझे नौकरी से निकाल सकते हैं।”

सोनागाछी का महाप्रसाद

मूल : **नंदिनी साहू,** अनुवाद : **दिनेश कुमार माली**

एक ऐसा मायावी संभोग सुख, जिसे न तो परिभाषित किया जा सकता है और जो अमूर्त, अवर्णनीय, सूक्ष्म है और साथ ही साथ, आत्मान्वेषी भी। वह उसे अनुभव करना चाहती थी, जब भी उसे अपने पति के साथ दुर्लभ अंतरंग क्षणों को साझा करने का मौका मिलता था। मगर यह प्राप्ति उससे कोसों दूर रहती थी, क्योंकि दो डरावने सर्पिल हाथ, कठोर शरीर और दूर से आती हुई मछलियों की गंध उन पलों के दौरान उसके उत्तेजित अवचेतन मन में रेंगने लगती थी।

क्या अपने पति के साथ सेक्स करते समय ऐसा सोचने के लिए उसे दोषी ठहराया जा सकता है। मुझे लगता है कि सच में ऐसा कोई नहीं कर सकता।

झुंपा चटर्जी उस समय गोल-मटोल चेहरे वाली सोलह साल की प्यारी लड़की थी, जब उसकी मां को आधा पैरालाइसिस हुआ था और वह व्हील चेयर पर बैठने के लिए विवश हो गई थी। झुंपा के पिताजी, जिसे वह बाबाई कहती थी। उनकी उम्र लगभग चालीस वर्ष के आस-पास रही होगी और कोलकाता से कुछ किलोमीटर दूर सोनागाछी में अपनी बीमार पत्नी की सेवा और किशोर बेटी की देखभाल का बोझ उनके कंधों पर आ गया था।

सोनागाछी की प्राकृतिक सुषमा देखते ही बनती थी, कभी वहां घने जंगल हुआ करते थे, जिसमें चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के तुंग नजर आते थे। यह जगह शहरी जीवन से इतनी अछूती थी कि यहां पक्की सड़क होने की बजाए गंदी धूल भरी पगडंडियाँ साफ दिखाई देती थीं। इस इलाके में सियार, चितकबरे हिरण, दंतैल हाथी, लोमड़ियों के झुंडों के अलावा पेड़ों के झुरमुटों पर रंग-बिरंगे पक्षियों में तोते, कठफोड़वे, किंगफिशर और पोखरियों में बतख, राजहंस आदि जहां-तहां प्राचुर्य में मिलते थे। एशिया का सबसे बड़ा 'रेड लाइट एरिया' था वह।

बंगाली में सोनागाछी का अर्थ होता है सोने के गाछ यानि सोने के पेड़। कुछ लोककथाओं के अनुसार कोलकाता के शुरुआती दिनों में एक कुख्यात डकैत सनाउल्लाह अपनी माँ के साथ वहाँ रहता था। जब वह मर गया तो उस शोक संतप्त माँ को अपनी झोपड़ी में आवाज सुनाई पड़ी, "मां, रोना मत। मैं गाजी बन गया हूँ।"

इस तरह सोनागाजी की कथा प्रचलित हुई और उस माँ ने अपने बेटे की याद में एक मस्जिद बनवाई, हालांकि कुछ ही समय में वह मस्जिद जर्जर होकर टूट गई। कालांतर में यह सोनागाजी शब्द सोनागाछी में बदल गया। कोलकाता के रेड लाइट इलाके के बच्चों पर सन् 2005 में बनी डॉक्यूमेंट्री फिल्म 'बोर्न इन्टू ब्राथेल्स' को सर्वश्रेष्ठ वृत्तचित्र के लिए ऑस्कर पुरस्कार मिला। इस फिल्म में सोनागाछी के वैश्यालयों में पैदा हुए बच्चों के जीवन का वीभत्स वर्णन है। इस फिल्म में वेश्याओं से भरी गलियों के अलावा सबसे ज्यादा गंदी जगहों पर रहने वाले बच्चों के जीवन के बारे में भी चित्रण किया गया है। एक दस साल के लड़के अविजीत की लेंस के माध्यम से खींचे गए नेचुरल उत्तेजक फोटो के कारण उसे एम्स्टर्डम के वर्डप्रेस फोटो फाउंडेशन में शरीक होने का निमंत्रण मिला। वह लड़का सोनागाछी का रहने वाला था।

मगर झुंपा को इन सारी चीजों से कोई लेना-देना नहीं था। वह मेडिकल में दाखिला पाने के लिए नीट की तैयारी कर रही थी। उसकी केवल एक ही चाहत थी डॉक्टर बनने की। उसकी माँ का अर्धांग पैरालाइसिस होने के कारण उसके जीवन में कब ग्रहण लग गया, उसे पता ही नहीं चला। सबकुछ इतनी तेजी से हुआ कि बस...! और वह भी गलत तरीके से।

उस समय झुंपा की ग्रेस और मेरे साथ अच्छी दोस्ती थी। झुंपा और मैं हिंदू ब्राह्मण परिवारों से आती थीं, जबकि ग्रेस कट्टर ईसाई परिवार से। हम सभी एक साथ स्कूल जाते थे। एक साथ खेलते थे और एक साथ पढ़ते थे। मेरे स्वर्गीय पिता और ग्रेस के पिता दोनों सोनागाछी के स्कूलों में शिक्षक थे।

एक दिन अचानक झुंपा ने स्कूल आना बंद कर दिया और वह हम दोनों से विचित्र रूप से कटती चली गई। वह अपने माता-पिता को माई और बाबई कहती थी। उन्होंने हमें उससे मिलने तक नहीं दिया। उस जमाने में न तो कोई फेसबुक थी, न व्हाट्सएप और न ही इंटरनेट।

ग्रेस मुझसे ज्यादा स्मार्ट थी, इसलिए उसने किसी भी तरह झुंपा के साथ संपर्क बनाने की चेष्टा की। मैं निराश हो गई क्योंकि मेरे पिता का उस जगह से कहीं और स्थानांतरण हो गया था। और मुझे स्कूल छोड़नी पड़ी। साथ ही साथ ग्रेस, झुंपा और अन्य सभी का साथ भी छूटता चला गया। शुरू-शुरु के कुछ महीनों में मैंने ग्रेस को चिट्ठियां लिखी, झुंपा के हाल-चाल जानने के लिए। मगर उसका कभी कोई खबर नहीं मिली। कोई खुशखबरी नहीं थी। देखते-देखते हम बड़े हो गए। समय के साथ बचपन की सहेलियाँ अतीत की स्मृतियां बनकर रह गई। हालांकि झुंपा के लिए मेरे दिल के किसी गुप्त कक्ष में दर्द अवश्य कसोट रहा था। फेलोशिप पाकर मैं अमेरिका चली गईए अपनी पीएचडी पूरी करने के लिए और फिर भारत लौट आई दिल्ली के एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर बनकर। सन 2020 में अपने बचपन की सहेली ग्रेस से मिलने के लिए मैं केरल गई। फेसबुक पर एक बार उसकी फ्रेंड रिक्वेस्ट पाने के बाद। मेरे जाने के कुछ दिनों बाद ग्रेस ने भी सोनागाछी छोड़ दिया था और कोच्चि में जाकर रहने लगी थी। हमारी खुशी की कोई सीमा नहीं थी। ग्रेस को पाना कुछ विलुप्त पेरागनों को पुनर्जीवित करने या किसी छुपे हुए खजाने को पाने के समकक्ष था। हम बरसाती जंगलों में जंगली धाराओं की तरह मिले थे।

गर्मियों की छुट्टियां उत्साह, उमंग, प्यार, साहचर्य और खुशी से भरी हुई थी, मगर अचानक एक दिन मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। हमारी मुलाकात के पहले दिन ही मैंने ग्रेस से पूछा था कि क्या वह झुंपा का पता जानती है। उस प्रश्न का उत्तर टालते हुए वह मुझे अपना विशाल फॉर्म हाउस दिखाने ले गई। जहां पर वह जैविक खेती किया करती थी। उसके दोनों बेटे मेरे बेटे के साथ अच्छी तरह घुल-मिल गए थे और हम उन तीनों शरारती बच्चों को संभालने में पूरी तरह व्यस्त हो गई थीं, जबकि बिछोह के इतने सालों के बाद हमारे पास कहने और करने के लिए बहुत कुछ था। एक हफ्ते बाद सुबह सुबह मैंने फोन पर ग्रेस की दबी हुई आवाज सुनी। वह फुसफुसा रही थी, "झुंपा, क्या तुम पागल हो गई हो, फिर से उस नरक में जाना चाहती हो। यदि इस बार फिर से तुम ऐसा करती हो तो मैं तुम्हें और बचाने वाली नहीं हूँ। खासकर जब निन्नी बरसों बाद मिलने के लिए यहां आई हुई है। बेचारी वह तुम्हारे बारे में पूछ रही थी और मैं टालते जा रही हूँ। वह बर्दाश्त नहीं कर पाएगी, क्योंकि तुम जानती हो वह बचपन से ही अति संवेदनशील है।"

अगले ही पल मैं ग्रेस के सामने खड़ी थी, झुंपा और उसके ठिकाने के बारे में मेरे वैध सवालों को लेकर। जाहिर है ग्रेस उन सवालों के उत्तर और टाल नहीं सकी।

सन् 2005 में सोनागाछी छोड़ने के बाद ग्रेस पहले से कहीं ज्यादा अकेली हो गई थी, क्योंकि झुंपा ने स्कूल आना बंद कर दिया था। उसने अपनी स्कूली शिक्षा पूरी करने के लिए किसी पत्राचार पाठ्यक्रम में दाखिला ले लिया था। ग्रेस के पिता ने उसे कॉलेज और विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए केरल भेज दिया था, जहां वह हॉस्टल में रहने लगी। इस तरह झुंपा के संघर्ष से वह भी दूर हो गई। लेकिन जब वह सन 2008 में अपने माता-पिता के साथ गर्मियों की छुट्टियां बिताने सोनागाछी गई, तब उसे पता चला कि झुंपा के माता-पिता दो महीने के लिए कहीं बाहर गांव गए हुए थे, अपने किसी रिश्तेदारों के अंत्येष्टि कर्म में भाग लेने के लिए। झुंपा नौकरानी के साथ अकेली रहती थी और उसे सख्त हिदायत दी गई थी कि वह कभी भी कहीं बाहर न चली जाए। उचित समय देखकर ग्रेस अपने चचेरे भाइयों रेमचासो, एल्विन और थॉमस के साथ मिलकर झुंपा के घर चली गई। उसके चचेरे भाई स्थानीय चर्च में अच्छा काम कर रहे थे। झुंपा को अस्त-व्यस्त हालत में देखकर वह बहुत दुखी हुई। झुंपा पूर्ण महिला की तरह लग रही थी, तरह तरह के विचारों की उधेड़बुन में खोई हुई सी। अठारह-उन्नीस साल की लड़की की तरह वह बिल्कुल नहीं लग रही थी। उसकी दुर्दशा और व्यवहार देखकर ग्रेस परेशान हो गई। नौकरानी को अच्छी-खासी रिश्वत देकर वह

उसे उसकी नजरबंदी से बहुत दूर बाहर ले गई।

झुंपा को गलियों में घूमना असहज लग रहा था, आखिरकर तीन साल के बाद वह घर की चारदीवारी से बाहर निकली थी। ग्रेस और उसके भाइयों ने उसे काफी हद तक सामान्य अवस्था में लाने की कोशिश की। उसे एक अच्छे रेस्टोरेंट में खाना खिलाया, उसके लिए कुछ सामान खरीदा और ईसा मसीह से उसके जीवन की मंगल कामना करने के लिए चर्च के भीतर ले गई। यह देखकर झुंपा बहुत खुश थी और वहां के लोगों की स्वतंत्रता देखकर आश्चर्यचकित भी। एक पिंजरे में बंद पक्षी होने के कारण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन वह नहीं समझ सकती थी। चर्च के कोने में एक 'कन्फेशन बॉक्स' रखा हुआ था, जहां हर कोई अपने दिल की बात कह रहा था। ऐसा माना जाता है कि वहां उस श्रद्धालु व्यक्ति और परमेश्वर के बीच की बात को कोई नहीं सुन सकता है। सभी की प्रार्थनाएं और स्वीकारोक्ति पूरी होने के बाद झुंपा कन्फेशन बॉक्स में जाने के लिए सहमत हो गई, ताकि वह अपने व्यक्तिगत भगवान अगर इस दुनिया में उनका अस्तित्व हो तो से बातचीत कर सकें। ग्रेस ने मुझे बताया कि उसने अपने भाइयों की सहायता से वहां एक रिकॉर्डर फिट कर दिया था और झुंपा ने वहाँ क्या कहा, हम सभी के लिए एपीफैनी के क्षणों से कम नहीं था। किसी बम विस्फोट या वज्रघात की तरह।

कन्फेशन बॉक्स में अपने दिल की बात कहने की बजाय वह कहने लगी, "हे इस सुंदर, शांत जगह के भगवान! मैं यहां आपके साथ अपनी कहानी साझा करना चाहती हूँ। मैं फँसी हुई हूँ और मुझे इस अंधेरी सुरंग से बाहर निकलने का कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा है। जब मैं 11वीं कक्षा में पढ़ रही थी तो मेरी माई व्हीलचेयर पर थी और मेरे बाबाई को पूरे दिन काम करना पड़ रहा था। मेरे माई बाबई किसी दुर्दांत देवी के परम भक्त थे, जिसका हमारे घर के तहखाने में मंदिर बना हुआ था। बाबाई वहाँ हर दिन घंटो-घंटो बैठकर पूजा करते थे। बाबाई और माही मुझे कहते थे मैं उस देवी का प्रसाद हूँ, महाप्रसाद, एक पवित्र लड़की का शरीर पाकर। इस वजह से उन्होंने मुझे स्कूल जाने से रोक दिया और उस रात बाबाई ने मेरे लिए खास पूजा की और माई आंखें बंद कर मंत्रों का जाप जपने लगी। पहली बार जब मुझे प्रसाद के रूप में देवी को चढ़ाया गया तो सांसारिक पापों से शुद्ध करने के लिए बाबाई मुझे स्नानघर में ले गए और वहाँ अपने हाथों से उन्होंने मुझे स्नान करवाया, पहली बार। शुरू में मुझे बहुत असहज लग रहा था। बाबाई समझा रहे थे कि वह देवी के परम भक्त हैं और मैं देवी की महाप्रसाद, इसलिए मुझे शर्म करने की कतई जरूरत नहीं है। बल्कि देवी के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए अपनी आंखें बंद कर उन्हें ऐसा करने की अनुमति खुशी-खुशी से देनी चाहिए। माई अपने कमरे में सो रही थी। बाबाई ने मुझे नहलाया, मेरे स्तनों और जननांगों को कोमलता से स्पर्श करते हुए मेरे भीतर ऐसे घुसे कि मेरी योनि से तेजी से खून बहने लगा। मुझे बहुत दर्द हुआ। यह मेरे लिए बहुत बड़ी दुखद घटना थी। मैं फूट-फूटकर रोई। बाबाई ने मुझे अपनी बांहों में भरकर सांत्वना देते हुए चुप होने को कहा और इसके बाद बिस्तर पर ऐसे ही नंगा सुला दिया। उसके बाद हर रात मुझे स्नान कराने की रस्म अदा करते हुए, मुझे महाप्रसाद के रूप में देवी के सामने चढ़ाया जाता था। और अब मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह मेरे शरीर के साथ जो कुछ करता है, मुझे अच्छा लगता है। वास्तव में मुझे उन दिनों नींद नहीं आती थी, जब बाबाई मेरे साथ ऐसा नहीं करते हुए सुला देते थे। मगर मुझे एक चीज नापसंद है, वह यह है कि बाबाई और माई मुझे किसी से बात करने की अनुमति तक नहीं देते हैंए यहां तक कि नौकरानी से भी नहीं। मुझे बाहर जाने तक की अनुमति नहीं है। मुझे अपनी सहेलियों की याद आती है। अपने स्कूल की याद आती है। मैं मेडिकल प्रवेश की तैयारी नहीं कर रही हूँ। उन सपनों को मैं पूरी तरह भुला चुकी हूँ। भगवान! आज तुम्हारे सामने ये सब कबूल करते हुए मुझे काफी राहत अनुभव हो रही है, चाहे तुम कोई भी हो। ग्रेस मुझसे कह रही थी कि अगर यहाँ कोई अपना कसूर कबूल करते हैं तो हमारी सारी चिंताएं दूर हो जाती हैं। हे शांत भगवान! क्या मैं अपने जीवन का बाकी हिस्सा भी ऐसे ही एकांत और गुप्त तरीके से बिताने के लिए विवश रहूँगी? क्या मुझे दूसरों की तरह आजादी की अनुकंपा प्राप्त नहीं

होगी?"

झुंपा आंखों में आंसू लिए बाहर आ गई। ग्रेस, रेमचासो, एल्विन और थॉमस सभी अपमान और लज्जा भरी दुष्कर्म की कहानी सुनकर क्रोधाग्नि से दहक रहे थे। साफ जाहिर था कि अंतहीन सहमति वाले दुराचार की इस कहानी ने एक निर्दोष लड़की की जीवन शृंखला को तहस-नहसकर बदसूरत बना दिया था। सबसे बुरी बात यह भी थी कि वह स्वयं इसे असामान्य, अप्रिय और आपत्तिजनक नहीं मान रही थी। जब उसे एनिग्मोस कि इस भूमिगत अंधेरी दुनिया में धकेला गया था, उस समय वह बहुत ही मासूम और नाजुक उम्र की लड़की थी।

ग्रेस, रेमचासो, एल्विन और थॉमस चर्च के अधिकारियों से मेल-मुलाकात कर इस बदनसीब लड़की को बचाने की योजना तैयार करने लगे। तकदीर उनका साथ दे रही थी क्योंकि झुंपा के माता-पिता दो महीने के लिए अपने गांव गए हुए थे। ग्रेस झुंपा को दिन-रात सामान्य पुरुष-स्त्री के संबंधों और पिता-पुत्री के रिश्ते की पवित्रता के बारे में बताती जा रही थी। झुंपा को इस चीज का एहसास हुआ कि वह अथाह गहरे गड्ढे में धँस चुकी थी और केवल ग्रेस ही उसे बचा सकती थी। झुंपा डाक्टर नहीं तो कम से कम नर्स बनने का सपना देखने लगी। वह सहयोग करने लगी और उसने एक महीने के भीतर ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया। चर्च की विशेष सिफारिश के कारण उसके लिए स्वतंत्र वीसा की व्यवस्था हो गई। वह तीन अन्य स्टाफ नर्स के साथ अमेरिका में वंचित बच्चों की सेवा करने हेतु वहां जाने के लिए इच्छुक थी और उसे इस हेतु उसे मंजूरी दे दी गई। अपने माता-पिता के घर लौटने के केवल तीन दिन पूर्व अमेरिका के लिए उसने उड़ान भरी।

घर आकर यह पता चलने पर बाबाई नौकरानी पर पागल होकर बरस पड़े और निश्चित रूप से उन्होंने ग्रेस के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज करने की धमकी भी दी। ग्रेस के पास ऑडियो रिकॉर्डिंग तैयार थी, उसके आधार पर उन्हें अपनी बेटी के साथ लंबे समय तक यौन संबंध बनाने और प्रताड़ित करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता था। जिससे उन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ता। इस वजह से उनकी पत्नी ने उसे कुछ समय के लिए उन्हें चुप रहने को कहा क्योंकि वह अपनी देखभाल करने वाले को खोना नहीं चाहती थी।

सच में झुंपा अमेरिका में अच्छा जीवन जीने लगी थी। उसने वहां नर्सिंग में बीएससी का कोर्स पूरा किया और अपना जीवन समाजसेवा के लिए समर्पित कर दिया। वैसे भी उसकी रातें बहुत मुश्किल से कट रही थीं। वह अनुभव करती थी सांप की तरह दो हाथ उसके शरीर पर रेंगते हुए, उसे स्नान कराते हुए और उसकी देह को बेचैनी के गर्त में धकलेते हुए।

वह अपने सहयोगी अब्राहम से मिली, जिसके मन में उसके प्रति आकर्षण था। उसने उससे मित्रता की और भारत के केरल राज्य में अपने अनाथालय के बारे में बताया, जिससे उसे अमेरिका में उच्च शिक्षा हेतु मदद मिली। वह दयालु हृदय का था और झुंपा के प्रति सद्भावना और सहानुभूति रखता था। उसे उसके अतीत के बारे में कुछ जानकारी अवश्य थी, मगर वह यह नहीं जानता था कि वास्तव में उसके साथ क्या घटित हुआ है? उसका मानना था कि समय सबसे बड़ा मलहम होता है और झुंपा का शांत और दयालु व्यक्तित्व देखकर उसे लगता था कि समय के मलहम से झुंपा ठीक हो गई थी। इसलिए सही समय पर उसने शादी का प्रस्ताव दिया और दोनों की शादी हो गई। ग्रेस झुंपा के जीवन में आए इस मोड़ से बहुत खुश थी। उसने चैन की सांस ली, यह सोचकर कि आखिरकर उसने एक लड़की के जीवन को बचा लिया और उसे अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा दी।

उसने झुंपा के बाबाई को फोन पर इस बात की सूचना दी कि वह बहुत गुस्से में लग रहा था। वह फोन पर ग्रेस को अभिशाप देने लगा, मगर ग्रेस एक विजेता की तरह मुस्कुराने लगी।

मगर चीजें इतनी आसान नहीं थी।

शुरू-शुरू में अब्राहम सोचने लगा कि झुंपा शर्मीली है और अंतर्मुखी भी, इसलिए वह विवाह के अच्छे दिनों की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। मगर हर रात डिनर के बाद झुंपा अपना कमरा बंद कर लेती थी, अपने आप को

भावप्रवण होकर छूने लगती थी, अपने आपसे कुछ बतियाती रहती थी। उसका शरीर किसी परपुरुष के स्पर्श को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। उसके शरीर की अपनी अलग केमेस्ट्री थी। अब्राहम यह बात समझ नहीं पा रहा था, लेकिन वह इतना समझ गया था कि झुंपा को उसकी शारीरिक नज़दीकियां पसंद नहीं आ रही थी। उसकी एकमात्र इच्छा थी उसे संभोग सुख देने की पूरी तरह से। उसने उसे गले लगाया। प्यार से फोरप्ले भी किया, उसे समाधि में ले जाने की भरसक कोशिश की, जिसे हर कोई स्त्री अपने आदमी से पाने की चाहत रखती है, मगर सब कुछ व्यर्थ रहा। ऐसा भी नहीं, झुंपा ने अब्राहम की असफलता की शिकायत की और उसे छोड़ दिया।

कुछ मिनटों तक उसने उसके सिर को सहलाया, फिर उसे बेचैनी भरी नींद में सुला दिया, मगर खुद जागती रही रात-रात भर। ऐसी रातों के दौरान अब्राहम ने देखा कि झुंपा रात भर छत की ओर देखती रहती थी और जब वह सो जाती थी तो आंसू की दो बूंदें उसके गालों या पलकों पर आकर सूख जाती थीं। वह अनिद्रा से पीड़ित हो गई थी और उदासीन और नीरस भी।

जब अब्राहम ने फोन पर ग्रेस से शिकायत की तो उसने उसे धीरज रखने की सलाह दी कि समय के साथ सब ठीक हो जाएगा।

हालांकि उसने कभी भी झुंपा के लंबे अतीत के बारे में नहीं बताया था, जिसमें उसके अपने पिता के साथ विवशतापूर्ण जुनूनी यौन संबंध बने थे। वह ऐसे पति को बताने की हिम्मत नहीं जुटा सकी, जो अपने पत्नी से बेहद प्यार करता था। अब्राहम ने झुंपा से उसके प्रति नफरत के भाव रखने के बारे में पूछा, तो वह केवल रोने लगी और कुछ भी नहीं बता सकी, क्योंकि वह भी उससे प्यार करने लगी थी। वह उसका जीवन साथी था, मगर उसका शरीर उसके स्पर्श को स्वीकार नहीं कर पा रहा था। भले ही, एक-दो बार झुंपा चुपचाप अब्राहम के बगल में लेट गई, जबरदस्ती आंखें बंद कर, अब्राहम ने उसके शिथिल शरीर के साथ सेक्स किया, मगर नफरत के साथ। अब्राहम को उससे नफरत होने लगी थी, वह नेक्रोफीलिया से ग्रस्त हो गया।

और फिर धीरे-धीरे उसने उसके पास जाना ही पूरी तरह बंद कर दिया। अब एक घर में वे दो मेहमानों की तरह रहते थेए जिनका एक-दूसरे से कोई लेना-देना नहीं था। उसने उससे कुछ पूछना भी बंद कर दिया और फिर घर आना-जाना भी बंद।

झुंपा एक बार फिर से खोई-खोई महसूस करने लगी। जीवन के बारे में अस्तित्वगत और अनुभवजन्य प्रश्न उसे परेशान करने लगे। उससे छुटकारा पाने के लिए वह ग्रेस को अपने घर बुलाना चाहती थी, कुछ दिनों के लिए। मगर ग्रेस ने उसे अपने वैवाहिक जीवन पर ध्यान देने और अब्राहम के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताने की सलाह दी तो तुनककर झुंपा उसे धमकी देने लगी, “अगर तुम मुझे कुछ दिन अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं हो तो मैं बाबाई के पास जाकर उनके साथ रहूँगी।”

इसी बात पर मैंने ग्रेस को सुबह-सुबह फोन पर फटकारते हुए सुना था। मैं खुद न केवल डर गई थी, बल्कि अपनी दीर्घ समय से खोई हुई सहेली की अवांछित कहानी सुनकर हैरान थी। मैं हमारे अतीत में झांकने लगी और सोचने लगी कि जीवन ने उसके साथ क्या-क्या अनुचित नहीं किया है! क्या उसका बाबाई पीड़ोफाइल नहीं था! एक नर्सिसिस्ट! वूमेनाइजर! बीमार आदमी! क्या उसकी पत्नी शारीरिक संबंध बनाने में असमर्थ होने के कारण अपनी लड़की का दुरुपयोग करने और उसके जीवन के साथ खिलवाड़ करने की आजादी दे सकती है। क्या उसकी माँ इतनी स्वार्थी थी कि उसकी देखभाल करने और सुख-सुविधा मुहैया कराने वाले के साथ अपने भविष्य के खातिर अपने पति के दुष्चक्र का शिकार हो गई थी और अपनी बेटी के जीवन की आहूति दे दी। मैंने अपने आप को भी दोषी ठहराया। सोनागाछी छोड़कर, जब झुंपा को अपनी सहेलियों की सख्त जरूरत थी।

मैंने ग्रेस से कहा, “चलो, हम इस लड़की को बचाएं। अब हम उससे नाराज नहीं हो सकते, खासकर जब वह दुखी हालत में हो और उसे इस समय हमारी जरूरत है।”

अगली सुबह झुंपा केरल में हमारे साथ थी। वह ज्यादा बात नहीं कर रही थी। बहुत कम केवल इधर-उधर की बातें

कर रही थी। ग्रेस ने उसे बताया कि मुझे उसके बारे में सब कुछ मालूम है तो वह ज्यादा असहज हो गई। मैंने उसे सहज बनाने के लिए बातचीत के विषय को दिल्ली के पर्यटन, राजनीति, भोजन, कपड़े, खरीदारी और सहेलियों के हालचाल की तरफ मोड़ दिया। मैंने उसे अपने साथ दिल्ली में कुछ दिन रहने के लिए आमंत्रित भी किया। हमारे बच्चे उसके साथ खेलने लगे तो वह सहयोग करने की कोशिश कर रही थी, मगर उसकी आंखें हमेशा क्षितिज की तरफ टिकी हुई थी। जब हम लोग लॉन्ग ड्राइव पर बाहर निकले तो ग्रेस और मैं आगे बैठी हुई थी और झुंपा बच्चों के साथ पिछली सीट पर। रियर व्यू मिरर पर चुपके से बीच-बीच में मैं उसके चेहरे की तरफ देख रही थी। यद्यपि वह मुस्कुराने की कोशिश कर रही थी, मगर उसकी आंखें सुन्न थीं और जब अन्यमनस्क रहती थी तो उसका चेहरा अनजाना-सा लग रहा था। वैसे भी, जब भी हम उसे हँसाने की कोशिश करते थे तो वह हँसने का अभिनय अवश्य करती थी। एक कर्तव्य परायण नारी की तरह दिन में दो बार अपने पति को फोन करती थी। अपने ईमेल चेक करती थी और बिना सोचे-समझे अपने कार्यालय के काम पूरे कर लेती थी।

एक रात झुंपा को सोफे पर बेपरवाह एकदम नंगा सोया देखकर हम चौंक गए। ग्रेस ने उसे जोर से डाँटा, यह कहते हुएए "इस तरह सोते हुए क्या तुम्हें शर्म नहीं आती है!"

"छोड़ो न ग्रेस, इस शरीर में रखा ही क्या है? यह तो सिर्फ आत्मा की खोल है और मेरी आत्मा तो बचपन से मरी हुई है। मैं तो ऐसे ही सो रही हूँ सोलहवें वर्ष से और मुझे इस पर सोने में कोई खराब नहीं लगता है। शरीर के बारे में हमारे इस तरह संकीर्ण विचार क्यों है?"

फिर भी ग्रेस ने उसके गोरे, सुडोल, नग्न बदन पर कंबल ओढ़ा दिया और हम भी सोने के लिए बच्चों के कमरे में चले गए। हमने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। वह जीवित थी और हमें इस बात की खुशी थी कि कम से कम उसने बात करना तो शुरू कर दिया।

दो-तीन दिन बाद झुंपा के बाबा का हमारे पास फोन आया कि वह भारत में है तो उसे अपनी माँ से मिलना चाहिए। जाहिर था, वह अपनी अंतिम सांसें गिन रही थी।

बाबाई को हमेशा झुंपा के ठिकाने के बारे में पता रहता था। हमारे बहुत रोकने के बावजूद झुंपा सोनागाछी चली गई। माई की हालत बहुत खराब थी और बाबा की उम्र पचास से ज्यादा हो गई थी, फिर भी उनकी सेहत ठीक लग रही थी। बाबाई के मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला, एक-डेढ़ दशक या उससे ज्यादा समय के बाद वे मिल रहे थे। बाबा को किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं थी, वह नीरव थे। अपनी मरणासन्न पत्नी की देखभाल और झुंपा के आराम से रहने और खाने की व्यवस्था में व्यस्त थे। पहली मंजिल पर झुंपा का कमरा उसकी दीर्घ अनुपस्थिति के बाद भी बड़े चाव से सजाया गया था। उसे अपने कमरे में किसी भी अचूक उपस्थिति महसूस होने लगी, यद्यपि वह उस कमरे में अकेली थी। क्या यह तूफान के पहले की शांति थी! झुंपा सोचने लगी। जब ग्रेस ने उसे दोपहर के खाने के समय फोन किया तो हमें उसके पिता की आवाज सुनाई देने लगी, "मछली करी का झोल और ले लो, अमेरिकन की भांति हड़बड़ी से मत खाओ।" उसकी मां भी शायद उसे वही खाने के लिए कह रही थी, जो उसके बाबा ने परोसा था। वहां क्या हो रहा होगा सोचकर हमारे शरीर में सिहरन उठने लगी। "ग्रेस, हमें उसे आज रात बार-बार फोन करना चाहिए और कल ही वापस अमेरिका जाने के लिए कह देना चाहिए। उसे वहां जाने की अनुमति देकर शायद हमने ठीक नहीं किया था।"

ग्रेस ने सहमति में अपना सिर हिलाया।

मैंने ग्रेस से पूछा, "अब्राहम और झुंपा के बीच वास्तविक दिक्कत क्या है। और जब बाबा उसके जीवन में नहीं था तो वे एक-दूसरे से प्यार करते थे, कम से कम एक-दूसरे को पसंद तो करते थे।"

ग्रेस मुझे कहने लगी, "झुंपा को अब्राहम के साथ कभी संभोग सुख नहीं मिला था। शायद इसलिए कि बचपन में उसके पिता द्वारा किया गया उसका यौन-शोषण आज भी उसके लिए दर्दनाक बना हुआ है।"

मुझे ग्रेस का यह तर्क सही नहीं लग रहा था क्योंकि अब्राहम बहुत ही परिपक्व व्यक्ति लग रहा था, धैर्यवान भी। झुंपा के साथ जबरदस्ती करने वाला या उसे डराने वाला तो

बिल्कुल नहीं।

मुझे कुछ और संदेह हो रहा था। बहुत ही जटिल वलय के रूप में विगत कुछ दिनों से झुंपा के चेहरे के हाव-भाव देखकर। "लेकिन मुझे बताओ ग्रेस, एक स्वस्थ महिला के लिए संभोग सुख इतना मायावी कैसे हो सकता है, जब किसी स्वस्थ पुरुष के साथ सेक्स करती हो" मैंने अपना स्पष्टीकरण देने की मुद्रा में कहा।

"फोरप्ले, योनिमुख मैथुन और ऐसी ही बहुत सारी चीजें ऑर्गेज्म के लिए निहायत जरूरी है। मगर यह इतना आसान नहीं है क्योंकि ज्यादातर महिलाओं के लिए ऑर्गेज्म शरीर की बजाए दिल और दिमाग की वस्तु होती है। हो सकता है, अब्राहम के साथ रहते समय झुंपा का ध्यान एकाग्र नहीं हो पा रहा होगा। तुम वहाँ जाओ, ग्रेस। क्या तुम्हें नहीं लगता है अभी भी उसका दिल दिमाग बाबाई के साथ है। क्या उसके बचपन में हुआ दुर्व्यवहार उसके लिए अपराधग्रस्त खुशी में तब्दील हो गया। मैं कुछ ज्यादा ही सोच रही हूँ, ग्रेस।"

"क्या बकवास कर रही हो। ज्यादा पढ़ाई करने से कहीं पागल तो नहीं हो गई हो। तुम हर चीज को उलझाना पसंद करती हो।"

मैं चुप रही और सोचती रही।

जैसा कि तय हुआ था हमने शाम सात बजे से हर पंद्रह मिनट में झुंपा को व्हाट्सएप वीडियो कॉल करना शुरू कर दिया। झुंपा हमारे उद्देश्य को जानती थी और इसलिए वह सहमत भी थी। शाम को सात बजे से रात को नौ बजे तक वह अपनी मां के साथ नीचे थी और फिर अपने कमरे में चली गई। हमने सहज ढंग से उससे बातचीत की, उसकी मां के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की, मगर हर कोई उसके पिता के बारे में चुप था। वह रात को दस बजे सोना चाहती थी। हम तीनों अमेरिका के लिए उसके वापसी टिकटों और हमारी छुट्टियां खत्म होने से पहले बच्चों के साथ शिलॉन्ग ट्रिप के बारे में बातचीत कर रहे थे।

झुंपा रात को दस बजकर दस मिनट पर अपने दरवाजे पर गुप्त दस्तक सुनकर चौंक उठी। हमने इसका पहले ही अनुमान लगाया था।

हम लगभग जानते थे।

"झुंपा!! उस पर चिल्लाओ कि अगर वह दरवाजा खट-खटाना जारी रखता है तो तुम बालकोनी से चिल्लाकर पड़ोसियों को बुलाओगी और उसे पुलिस के हवाले करोगी। बस, दरवाजा मत खोलना। वीडियो कॉल चालू रखना। बात समझ रही हो ना" ग्रेस जोर-जोर से कह रही थी।

मैं कांप उठी, हक्की-बक्की, डरी-सहमी।

मेरा ब्लड प्रेशर कम हो गया था, मुंह सूखने लगा था, मैं रोने लगी थी, निर्वाक् निःशब्द।

"झुंपा! तुम्हें इस रात को जिंदा पार करना है। अपना सामना करो। अपने आपको मजबूत बनाओ। ठीक है ना! तुम हमारे प्रभु की सच्ची भक्त और अपने पति की वफादार पत्नी हो। यह मत भूलना कि तुम एक पवित्र, ईमानदार और गुणी महिला हो।"

ग्रेस जोर-जोर से चिल्लकर बातें करती रही।

झुंपा का चेहरा अलग दिखाई दे रहा था, उसने ग्रेस की किसी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। हमने उसकी तरफ देखा। मेरे आंसू बह रहे थे। मैं कांप रही थी। ग्रेस उस पर पागल हुए जा रही थी।

झुंपा बुदबुदा रही थी, "नहीं, बाबा, कृपया आप चले जाओ। मेरे साथ ऐसा मत करो।"

"दरवाजा खोलो, झुंपा। मेरे प्यार! मैं यहां हूँ केवल तुम्हारे लिए। मैं तुम्हारी देखभाल करूंगा। तुम्हारे उदास तन को शांत करूंगा। थके मन को आराम दूंगा। तुम मेरी महाप्रसाद हो। तुम कैसे उसे भूल सकती हो कि तुम मेरे जैसे भक्तों के लिए ही पैदा हुई थी। मैं तुम्हें चोट नहीं पहुंचाऊँगा। मैं तुम्हें सुला दूंगा। तुम बहुत क्लांत लग रही होए जैसे सदियों से सोई नहीं हो।"

झुंपा दिखने लगी थी पीत, चकित, स्तब्ध, भावहीन, गतिहीन और थकी-मांदी।

दरवाजे की तरफ जाने से पहले उसने हमारा कॉल काट दिया और अपना फोन स्विच ऑफ कर दिया।

उस रात झुंपा चैन की नींद सो गई। हम यह जानते थे। अगली सुबह मेरे गले में एक गांठ बनकर उभर आई थी।

तिकड़म की कला और तिकड़मी जी

रंगनाथ दुबे

हमारे शहर में नरेंद्र "तिकड़मी जी" तिकड़म भिड़ाने की कला के इतने बड़े मर्मज्ञ है कि शायद उतना बड़ा तिकड़म भिड़ाने वाला कोई दूसरा मर्मज्ञ हमारे शहर क्या इस प्रदेश में हो। कहते है कि कुछ नेता, व्यापारी आदि इनसे तिकड़म की शिक्षा लेने अक्सर इनके यहां चोरी-छीपे आते-जाते हैं। दरअसल इनका नाम इनके मां-बाप ने शहर के अन्य बच्चों के नामों की तरह ही, जो उस समय चलन में थे। उसी के अनुकूल रखा था लेकिन धीरे-धीरे इनकी इस तिकड़म भिड़ाने की अद्भुत कला की वजह से इनके नाम के साथ ही "तिकड़मी" जी जुड़ गया।

आज आलम यह हैं कि अगर शहर में आप इनके बचपन के नाम से ढूंढिए तो मेरा दावा है कि आपको उन तक पहुंचने में दस से पंद्रह दिन लग जाएंगे, तब भी मिल जाए तो इसे आप अपना सौभाग्य ही समझिए। कभी-कभी तो कुछ इनके बचपन के मित्र और दूर के रिश्तेदार मोबाइल नंबर ना होने की स्थिति में इन्हें इनके पुराने नाम से ढूंढकर ना मिलने की स्थिति में बिना इनसे मिले ही अपने घर लौट जाते थे। क्योंकि वे बेचारे जिस नाम से इन्हें ढूंढने का प्रयास करते थे अब उस महान नाम के साथ "तिकड़मी" जी भी जुड़ गया था।

वैसे मैं भी अपने शहर का बहुत बड़ा तो नही पर ठीक-ठाक टाइप का व्यंग्य लेखक हूँ, इसलिए मेरी उत्कंठा भी उनके हूनर के चर्चे को सुनते-सुनते एक दिन अपने चरम पर पहुंच गई, जिसके वशीभूत होकर मैंने उनके इंटरव्यू को व्यंग्यात्मक तरीके से लेने का निर्णय लिया। और एक दिन खुदा ना खासता मैं ऐसे महान व्यक्ति के घर के दरवाज़े पर प्रकट हो गया तो सर्वप्रथम मुझे उनकी पत्नी के साक्षात दर्शन हुए, जिनकी खूबसूरती देखते ही बन रही थी। चेहरा इतना चौड़ा की जैसे ईश्वर ने एक साथ तीन महिलाओं के चेहरे को एक महिला को देकर मानो दो महिलाओं का नुकसान किया हो। मेकप भी ऐसा कि जैसे कोई खस्ताहाल लेडिज कास्मेटिक सेंटर की दुकान देख ली होण इतना ही होता तब भी गनीमत थी ण्शरीर की बनावट और डीलडौल ऐसी की भगवान कसम अगर ईमानदारी से तिकड़मी जी की पत्नी किसी राष्ट्रीय पहलवान की कलाई पकड़ ले, तो उस पट्ठे की सारी रास्ट्रीय पहलवानी का नशा उखड़ जाए। इस सबसे उबर कर थोड़ा सा मैंने खुद को सामान्य किया कि तभी उनकी पत्नी ने तड़ाक से सवाल पूछा, आप कौन है। क्या काम है किससे मिलना हैं्ँउसके इस अंदाज़ से एक बारगी तो मेरी अच्छी खासी घिग्घी बंध गई। आखिर बंधती भी क्यों ना क्योंकि उनकी पत्नी के पूछने का अंदाज ऐसा था किए जैसे किसी महिला दारोगा ने किसी को दहेज हत्या में गिरफ्तार कर के आज उससे सारा सच उगलवा लेने की कसम सी खा रखी हो।

लेकिन जब मैंने उनकी पत्नी से सामान्य लहजे में यह बताया कि मैं आपके यहां आदरणीय तिकड़मी जी का इंटरव्यू लेने के लिए आया हुआ हूँ। तो वे मेरे इतना बताते ही इस अदा से मुस्कुराई की अगर किसी टूथपेस्ट की कंपनी वाले इससे अपने टूथपेस्ट का एड करा लेते तो निश्चित ही उस कंपनी के दरवाज़े पे बिना किसी विश्वसनीय कम्पनी का हॉलमार्क लगा हुआ ताला लटक चुका होता और वह टूथपेस्ट कंपनी दिवालिया हो जाती। ये सारा जादुई असर मेरे द्वारा तिकड़मी जी को आदरणीय कहने की वजह से नही बल्कि मुझे उनका इंटरव्यू लेना है, बताने की वजह से मिला था। वे झट दरवाज़े से हटी और बोली आइए! वे अपने कमरे में ही बैठे हुए है लेकिन हां! इतना जरुर करिएगा इंटरव्यू के बाद फोटो लेते समय मुझे जरूर बुला लीजिएगा। तब तलक मै आपके लिए किचन से चाय बना लाती हूँ। इतना कहकर वे जैसे ही कमरे से बाहर गई तो इत्मीनान से मैंने तिकड़मी जी की तरफ देखा तो मुझे उनके पर्सनालिटी से

ही पता चल गया कि उनकी पत्नी के मुस्कुराने के रेडिएसन से उनकी कितनी छती हुई हैं। सर के सारे बाल ऐसे गायब थे कि क्या उस तरह पतझड़ में किसी वृक्ष से पत्ते गायब होते हो। चेहरे की हालत ऐसी कि जैसे किसी बीड़ी पीने वाले व्यक्ति ने आधी बीड़ी पीकर फेक दी हो। आंखे भी ऐसी कि जैसे उन्होंने किसी मुर्दाघर से किराए पे या उधार ली होण चूंकि, मै उनके पास उनकी तिकड़म की कला के चर्चे की इतनी शोहरत और चर्चा सुनकर उनका इंटरव्यू लेने के लिए आया हुआ था। अतः मैंने सम्मानपूर्वक उन्हें प्रणाम किया तो वे मुस्कुरा के बोले आईए! बैठिए मैं आपकी मनह स्थिति को अच्छे से समझ सकता हूँ कि आपने मेरी पत्नी और मुझे देखकर क्या आकलन किया होगा। दरअसल मुझे जो लड़की पत्नी के तौर पर मिली है वे भी मेरी इसी तिकड़म की कला की वजह से ही मिली है। नही तो मुझे आजीवन पत्नी विहिन होकर जीना पड़ता। वे तो भगवान का लाख लाख शुक्र हैं कि उन्होंने मुझे इस “तिकड़म की कला के योग्य समझा।” पहली बार उनकी बात से मुझे लगा कि तिकड़म का भी अगर सार्थक तरीके से इस्तेमाल किया जाए तो वे किसी के लिए हितकारी भी हो सकता हैण लेकिन अंतिम में उन्होंने मुझे यह भी बताया कि ष्तिकड़म भिड़ाने की कला इस सृष्टि और दुनियां के अंत तक रहेगी। क्योंकि बिना तिकड़म भिड़ाए किसी भी व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र में कभी भी कोई सफलता नही मिल सकती। हो सकता है कि इस कला को आज हमारे संविधान में कोई संवैधानिक दर्जा नहीं प्राप्त है लेकिन मेरा दावा है कि आने वाले कल में तिकड़म भिड़ाने की इस कला को ना सिर्फ संवैधानिक दर्जा प्राप्त होगा बल्कि लोग अपने-अपने राज्य के सर्वप्रिय तिकड़मी व्यक्ति के नाम से मंदिर बनाकर मन, वचन और कर्म से तिकड़म की पूजा करेंगे ष। तभी उनकी पत्नी ने चाय के साथ कमरे में प्रवेश किया। चाय पीने के बाद मैने उनकी पत्नी के साथ उनकी फोटो खींची और पुरी श्रद्धा पूर्वक तिकड़म कला के इस प्रकांड ज्ञानी को प्रणाम कर मैं उनके घर से बाहर निकल आया।

लघुकथा

माँ तो माँ होती है

कोमल वाधवानी ‘प्रेरणा’

पार्वती अपने पति के साथ प्रॉपर्टी ब्रोकर के यहाँ गई तो दूसरी पार्टी के आने तक इंतजार करना था, सो बातों का दौर शुरू हुआ। प्रापर्टी ब्रोकर ने कहा,यह जो मेरे पास बैठी हैं, वह मेरी माँ है। माँ जमीन पर पालथी मारकर बैठी थी, बेटा कुर्सी पर। ब्रोकर जोशखरोश के साथ पार्वती के पति को बताने लगा, “मैं सरकारी नौकरी में था। इधर-उधर ट्रांसफर होता था। मैं माँ को अकेला छोड़ना नहीं चाहता था। वह बहुत गर्व से बार-बार कह रहा था। यह मेरी माँ है। मैं इनसे बहुत प्यार करता हूँ, इसलिए मैंने सरकारी नौकरी छोड़कर यह फील्ड पकड़ा।”

फिर हँसते हुए बोला, “आपको विश्वास नहीं होगा, मेरी माँ अभी तक मुझे वैसे ही मारती है, जैसे बचपन में मरती थी। मैं माँ की बहुत मार खाता हूँ।”

वह बार-बार इस तरह कह रहा था, जैसे किसी मिठाई का जिक्र कर रहा हो। पार्वती को वह शख्स बहुत भा गया। उसके बेटे के भी उस ब्रोकर से नजदीकी संबंध हो गए। पार्वती को खुशी होती थी कि उसका बेटा ऐसे व्यक्ति के संग है, जो अपनी माँ का बहुत सम्मान करता है। उसको यकीन था कि यह रंग उसके बेटे पर भी प्रभाव ज़रूर डालेगा।

इसी बीच अचानक पार्वती की तबीयत काफी खराब हो गई। उसे बहुत चोट लगी कि उसका बेटा उसे ऐसी हालत में छोड़कर दीपावली मनाने सपरिवार ससुराल जा रहा था। पार्वती के बहुत मना करने पर भी वे लोग राजस्थान चले गए। अब पार्वती को बेटे के ब्रोकर दोस्त की याद आ गई। उसने उसे फोन करके पहले तो माँ के प्रति उनकी भावनाओं का सम्मान किया ए फिर उम्मीद की कि वो पार्वती के बेटे को भी अपने रंग में रंगने की कोशिश करेगा, परंतु मातृभक्त दोस्त ने जो शब्द कहै, वह सुनकर पार्वती बहुत दुखी हो गई। ब्रोकर ने कहा, “यह आपके घरका पर्सनल मामला है, मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता।”

सुनकर पार्वती के मन में विचार आया “माँ पर्सनल

खुद छटपटा रहे हैं, सड़क के गड्ढे

प्रभाशंकर उपाध्याय

19वीं सदी में इतिहासकार एरिक फोनर ने 'फीडिंग एट पब्लिक ट्रफ' अर्थात् सार्वजनिक गर्त में भोजन की अवधारणा को प्रस्तुत किया था। इसके माने यह कि स्वयं को समृद्ध करने के लिए सरकारी धन का उपयोग करना। दूसरे अर्थ में जनता के कुंड में भोजन की क्रिया से इसकी व्याख्या की गयी है। कुंड को तो हम सभी जानते हैं किन्तु फीडिंग ट्रफ तात्पर्य मवेशियों के चारा कुंड से है। जिसे आम फहम भाषा में 'सानी नांद' कहा जाता है।

गर्त का अर्थ कौन नहीं जानता? गड्ढा या खड्डा। खड्डे खोद खोद कर तो बहुत से तर बतर हो कर तर गए। वन विभाग द्वारा वृक्षारोपण हेतु हुए गड्ढों का उस विभाग की स्थापना से लेकर अब तक के क्षेत्रफल का आकलन अगर किया जाए तो संभवतः धरती भी कम पड़ जाएगी। अतः गड्ढों का रोना बंद कीजिए और उसके महत्व को याद रखिए। इसी क्रम में एक पौराणिक आख्यान वर्णित करता हूँ–

एकबार, उद्यान में भगवान राम, सीता और लक्ष्मण सहित एक चबूतरे पर विराजे हुए थे और सेवक हनुमान सदा की भांति विनीत भाव से, प्रभु के चरणों में अपनी चिरपरिचित मुद्रा में बैठे थे। सहसा, श्रीराम की अंगुली से एक मुद्रिका फिसली और लुढ़कर पास के एक लघु आकार के गड्ढे में जा घुसी। हनुमानजी ने तत्परतापूर्वक उस गड्ढे में झांक कर देखा तो उसमें नहीं दिखी।

उन्होंने तत्काल सूक्ष्म रूप धारा और गड्ढे में उतरते चले गए। सैंकड़ों कोस नीचे उतरने के बाद बजरंग बली ने स्वयं को पाताल लोक में पाया। एक अजनबी नन्हें बंदर को देख पाताल के द्वारपालों ने हनुमानजी को बंदी बना लिया और अपने राजा के सम्मुख पेश किया। पाताल के राजा ने पूछा, ''हे वानर! तुम कौन हो और किस प्रयोजन से यहां आ गए?" तब हनुमानजी ने अपना मूल आकार ग्रहण किया और अपना परिचय देते हुए, निवेदन किया कि, ''हे राजा! मेरे स्वामी श्रीराम की मुद्रिका एक गड्ढे में गिरी और मैं उसे खोजते हुए यहां तक चला आया।''

पाताल लोक के राजा ने दरबार में स्थित एक आदमकद स्तंभ की ओर संकेत करते हुए कहा, ''वहां अंगूठियों से भरा एक थाल रखा है, तुम उसमें से अपने स्वामी की मुद्रिका को चीन्ह कर ले जाओ।'' महाबली ने देखा कि वे सारी मुद्रिकाएं तो रामचंद्रजी की ही हैं। वे जिसे भी उठाते वही उन्हें असली लगती थी।

''ये कैसी लीला है, राजन!''

हनुमानजी की परेशानी देख पाताल के स्वामी मुस्कुराए, ''प्रिय हनुमान! ये समस्त मुद्रिकाएं तुम्हारे स्वामी श्रीराम की ही हैं। यह थाल यहां पर चिरकाल से है। वे हर बार इसी थाल में आकर गिरती हैं और तुम सदा इसी भांति मुद्रिका की खोज में यहां आते हो। मेरे पूर्वजों ने भी इसे इसी स्तंभ पर रखे इस थाल को देखा है और आगे भी न जाने कितनी पीढियां इसे देखती रहेंगी।''

''अष्ट सिद्धी, नवनिधि के दाता बजरंगबली ने चकित भाव कहा, ''क्या यह घटनाक्रम इतनी बार दोहराया जा चुका है? प्रभु! आपकी लीला अपरंपार है।'' यह कहकर हनुमानजी पुनः धरातल को लौट आए।

जो जन गड्ढों से सदा व्यथित हुए रहते हैं, उन्हें इस आख्यान से यह ज्ञान लाभ हो जाना चाहिए कि गड्ढे शाश्वत हैं, सदा हुए हैं और सदा रहेंगे। तब, अदने से इंसान की क्या औकात जो इन्हें मेट सके? ये सर्वव्यापी भी हैं। थल के साथ ही जल तथा नभ भी इनसे अछूता नहीं। अंतरिक्ष में पाए जाने वाले ब्लैक होल और जल के भंवर चक्र को क्या कहेंगे? बरमूडा त्रिकोण की कारगुजारी किसे नहीं पता? ये छोटे-बड़े सभी को लील जाता है।

अब, मैं यह भी बता दूं कि गड्ढे सदा हानिकारक नहीं, बल्कि लाभदायी भी हैं। यहां मैं उन भ्रष्टाचारियों की बखानगी नहीं करने जा रहा, जो गड्ढों की कमाई से अपनी

सात पुश्तों के पापी पेट का गड्ढा भरने की लिप्सा में आकंठ सराबोर हैं और इसके बावजूद उनका तृष्णा रूपी गड्ढा कभी भरता नहीं। इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझा जा सकता है—वन-विभाग की स्थापना से अब तक, अगर वृक्षारोपण हेतु खोदे गए खड्ढों के आंकड़ों का संचयन किया जाए तो उसका क्षेत्रफल, संपूर्ण धरती के क्षेत्रफल से अधिक ही होगा।

मैं, इस पचड़े से परे, चराचर जगत के नाना भांति के गड्ढों की बात यहां लिख रहा हूँ नाभि रूपी गड्ढा जो न होता तो शेष शैयी विष्णुजी पर कमल नाल कैसे पोषित होती तथा ब्रह्माजी की उत्पत्ति और सृष्टि सृजन कैसे होता? सृष्टि वर्धन के लिए नाभि का महत्व सर्वविदित है। आप हम इस नाभि नाल की वजह से ही हैं। कर्ण, नयन कोटर, नासिका, मुख, उदर और गुदा के गड्ढे जीवन के लिए नितांत अनिवार्य हैं।

पेट रूपी गड्ढा न हो तो पापी पेट और उससे जुड़ीं अपरिमित धन संपदा बटोरने की लिप्सा व्यर्थ सिद्ध हो। जीवनोपरांत, अधजली देह के कपाल-भेदन की क्रिया अथी के बांस के ठोसे से गड्ढा बनाकर ही जीवतत्व को इहलोक से मुक्त किया जाता है। गर जमीन में गड्ढा न होवे तो शव दफनाने का इंतजाम कैसे हो? धरती के गड्ढों की तो बात ही क्या? वह नहीं होता तो हमें टिकने को भी सूई की नोंक के समान धरा नहीं मिलती। सर्वत्र जल ही जल होता। गड्ढों की बदौलत ही कुओं, बावड़ियों, सरोवरों और नलकूपों का अस्तित्व है। कोयला खनिज, पेट्रोलियम उत्पाद और कीचड़ सब नाचीज गड्ढों की ही देन हैं। सबका साथ, सबका विकास के छलावे से ही अपनों को उपकृत एवं दूसरों को गड्ढे में धकेला जाता है और वह बदबख्त गड्ढा विश्व कल्याण की भावना से परिपूर्ण होकर, अनंत गंदगी को अपने में समेट लेता है। इस कतृघ्न इंसान ने कभी गड्ढे की व्यथा जानने की कोशिश की! नहीं ना। इसे वसीम अहमद नागराणी के शब्दों में यों समझा जा सकता है—

लज्जा ये पानी-पानी, नीची किए निगाह।
खुद छटपटा रहे हैं, सड़क के गड्ढे॥

लघुकथा

धूल

नीना सिन्हा

“स्नान ध्यान में कुछ ज्यादा ही देर हो गई आपको!”, धूप में बाल सुखाता देख पड़ोसन से पूछा। “हाँ! संक्रांति के पहले की कुछ विशेष साफ-सफाई में उलझ गई थी। खिड़कियाँ बंद कर घर को कुछ हद तक बचा भी लें हम, पर उनके ग्रिल धूल से अँट जाते हैं। हवा में धूल कण दिनोंदिन बढ़ते ही जा रहे हैं।”

“सच है।”

“पर संदर्भ में अक्सर फैक्ट्रियों-गाड़ियों का धुँआ, पराली जलाना इन्हीं की बातें होती है। एक अन्य मुद्दा है, जिस पर लोगों का ध्यान कम जाता है, निर्माण कार्यों से हवा में घुलते जाते सीमेंट और रेती कण।” “पर बिना रैन बसेरे के इंसान रहेगा कहाँ? पुल, सड़कें, मेट्रो इत्यादि का निर्माण मानवीय तरक्की के लिए आवश्यक है।” “पर कुछ अनावश्यक भी है, जैसे घर बनाने का व्यसन। इंसान फ्लैट के बाद घर, फिर घर की दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवी, छठी मंजिल बनाने लगता है! बहाना, ‘संतति का सुरक्षित भविष्य।’ वश चले तो मानो स्वर्ग तक सीढ़ियाँ बनवा दें, ताकि सशरीर स्वर्ग की सैर की जा सके। घर के बाद फार्महाउस बने तो अधिक बढ़िया। कुछ लोग बिल्डर बनकर पच्चीस-पचास मंजिली इमारत ठोक देते हैं। पर जो बनाया, उसका रख-रखाव भी लगेगा। ‘भाड़ा लगाकर पैसे आएँगे तो रख-रखाव होता रहेगा’, सोचते हैं। पर कोरोना के बाद से लोग, सस्ता भाड़े का मकान तलाश कर रहे हैं क्योंकि, ‘मंदी में हाथ तंग हैं।’ अक्सर लोग आसान किस्तों में फ्लैट खरीदने के चक्करों में लगे रहते है, ‘भाड़ा ही क्यों दें’ पर आवश्यक हो या अनावश्यक, इन निर्माण कार्यों से महीन सीमेंट और रेती हवा में घुलती जाती है।” “आपका नजरिया स्पष्ट भी है, सही भी। सरकार के नये नियमानुसार निर्माण स्थल को तथा सीमेंट रेती को ढोते समय ढँकना आवश्यक हो गया है। पर अनावश्यक निर्माण कार्य क्या है, हमें ही तय करना होगा।” पड़ोसन सहमत थी।

पांडेय जी नया साल और एजेंडा

लालित्य ललित

नया साल उतना ही करीब है जितना मौसम में हुई महंगी मटर। पहले चालीस रुपये किलो। भीड़ देख कर तीस कर देता है चौरसिया।

पांडेय ने पूछ लिया ''क्यों भइया ये फॉर्मूला काहे!''

कहने लगा कि, पांडेयजी मैं लोगों को देख कर सब्जियों के दाम बढ़ाता देता हूँ। जो लेने वाले होते हैं सब्जियां, उनकी शक्ल जरा अलग किसिम की होती है।

पांडेयजी घर पर। सोचा कि साल इत्ती जल्दी बीत जाता है कि अब क्या बताए। जो कुछ सोचते है वह सब जल्दी घट जाता है। अब देखो न दुआ जी लम्बी यात्रा पर निकल गए। बड़े भले आदमी थे। अन्तर्मन ने कहा कि अब कौन अमर अमृत पी कर आया है जो लम्बी पारी खेलेगा!

उधर मन है और मन में कई तरह के विचार आते हैं। जिसका कोई आजतक अनुसंधान नहीं कर पाया है कि ऐसा क्यों होता है! बहरहाल पांडेयजी आजकल सोचते बहुत है। आखिर सदी है और एक उम्र के बाद सर्दी लगती भी बहुत है। आखिर चाय पी तो कितनी पी जाए।

इधर रामखेलावन ने कहा कि पांडेयजी आप हमरी बात नहीं सुनते हैं! ये क्या बात हुई!

हमारी इच्छा है कि इस जाते हुए साल में मन में रह जाएगा कि अपन बैठकी नहीं कर पाए।

पांडेयजी ने कहा कि जे तो बड़ी खबसूरत बात कही। कर लेते है बैठकी। इसमें कौनों बड़ी बात है। बुधवार बढ़िया है, मिलने के लिए। वैसे भी अंदर की बात पांडेयजी न मंगलवार को बैठते और न वीरवार को। यह उनकी परम्परा है जिसे वे पुश्तैनी तरीके से मनाते आए हैं।

बहरहाल पांडेयजी ने अपनी सहमति रामखेलावन को दे दी। पर पांडेयजी के मन में यह भी था कि दस बजे से पहले घर पहुंचना जरूरी है। आजकल सरकार ने रात का कर्फ्यू जो लगा दिया है।

पांडेयजी को मैसेंजर में लंदन वाले दोस्त ने पूछा कि पांडेयजी हालात कैसे हैं!

पांडेयजी ने कहा कि अखबारों ने और चैनल्स ने अपना काम शुरू कर दिया है। डराने में वे लोग आगे है।

हमने तो दूरी बना ली है, इन लोगों से।यह सही बात है कि दूसरी लहर ने किसी को भी कहीं का न छोड़ा।

अब यह नहीं पता कि ओमिक्रोन क्या रंग दिखाएगा। जो होगा, देखा जाएगा। पर प्रीकाशन जरूरी है। लोग है कि मानते नहीं। उधर अन्तर्मन ने कहा कि लातों के भूत बातों से कहाँ मानते हैं!

उधर चीकू ने कहा कि पापा जी!

इस बार नया साल मनाने बाहर चले!

कहीं आउटिंग पर चलते है। पांडेयजी ने कहा कि बेटा, बात तो तुम्हारी सही है, पर ओमिक्रोन बढ़ रहा है, देखना यह है कि चले घूमने और कहीं अटक गए तो फिर क्या होगा! चीकू कहने लगा कि पापा जी क्या होगा! अपनी छुट्टियां बढ़ जाएंगी।

पांडेयजी सोचने लगे। ये बच्चे भी न कमाल के है। इन्हें अपनी मस्ती से मतलब है,बाकी दुनिया जाए भाड़ में!

चीकू ने कहा कि पापा क्या सोचने लगे!

पांडेयजी ने कहा कि कुछ नहीं बेटा।मैं तो सोच रहा हूँ कि घूमना तो बढ़िया रहता है। इससे न केवल यात्रा होती है, बल्कि कुछ न कुछ सीखने को भी मिलता है। अब चीकू के चेहरे की खुशी देखते ही बनती है। जो पांडेयजी ने देखी। वे भी मुस्कुराते हुए अपने बचपन को याद करने लगे। तभी रामप्यारी ने कहा कि साग बना दूं। मौसम ठंडा है न!

पांडेयजी ने सर हिलाया कि रामप्यारी ने कहा कि चक्की से मक्की का आटा भी ले आओ। अब जा कर समझे पांडेयजी आखिर रामप्यारी इतने प्यार से क्यों बोल रही है!

दरअसल भारतीय पति जो होते हैं वे स्वभाव से भोले होते हैं, पर भोले भंडारी नहीं। पत्नियां अच्छे से सब जानती समझती भी है।

पांडेयजी ने सोचा कि काहे को घर से बाहर जाए। बढ़ता हुआ कोरोना और उसका नवीनीकरण!

पता नहीं ये क्या गुल खिलाएगा!

पांडेयजी को रामप्यारी ने कहा कि क्या कहते हो जी!

चलोगे क्या!

पांडेयजी ने कहा देवी जी। बात सुनिए। आजकल कहीं बाहर जाने का धर्म नहीं है। घर से बाहर तभी निकलों जब निकलना बेहद ही अनिवार्य हो। समझ रही हो न!

रामप्यारी शुरू हो गई। हम जब अपने घूमने के लिए कहते हो, आप फौरन मना कर देते हो। अपने दोस्तों के लिए आपके पास समय की कमी नहीं। लेकिन हमारे लिए कहोगे कि बाहर जाना सेफ नहीं। समझा करो।

अब पांडेयजी का ब्लड प्रेशर बढ़ने लगा। उन्होंने कहा कि जब एक बार मना कर दिया तो कर दिया। समझी।

रामप्यारी ने आंखें तरेर कर देखा तो पांडेयजी ने करवट ली और कम्बल ओढ़ लिया। ताकि लगे कि भाई बहुत थका हुआ और नींद आ रही है। नए-नए आइडिया भिड़ाने में पांडेयजी का कोई मुकाबला नहीं।

पांडेयजी को आज रामप्यारी ने कसकर डांट लगाई। कहा कि आपको पता भी है क्या!

कोरोना का रिश्तेदार ओमिक्रोन बाहर छुट्टे सांड की तरह घूम रहा है। कुछ हो गया न!

समझ सकते हो न पांडेयजी!

हमारा क्या होगा!

पांडेयजी ने कहा कि अन्नपूर्णा जी, समझ सकता हूँ। बताइए मैं क्या करूं कि आपके चेहरे पर खुशी आ जाए!

रामप्यारी ने कहा कि कल से मेट्रो में जाना बंद। समझ आई बात!

पांडेयजी ने कहा कि देवी की जय हो। पर अंदर से पांडेयजी खुश नहीं थे। उनको तो लगा था कि मेट्रो से जाएंगे तो मेन गेट पर टिक्की-बर्गर खाएंगे। इससे दो बातें होगी। एक तो आत्मा प्रसन्न होगी। दूसरे उस गरीब आदमी को रोजगार मिल जाएगा। आखिर सबके मन की और विकास की कितनी बातें पांडेयजी सोच लेते हैं।

लेकिन सब धरा का धरा रह गया।

पांडेयजी ने सोच लिया था कि असली पति वह होता है जो पत्नी से जुबान नहीं चलाता। यह गुण पांडेयजी ने राधेश्याम गोड़बोले से ट्रांसफर कर लिया था। गोड़बोले की भी बोलती बंद रहती है और रामखेलावन की भी फुलमतिया के सामने।

पांडेयजी ने सोचा कि नए साल पर वे अपना एजेंडा बनाएंगे। जो उनका कल्याण भी करेगा और एक आदर्श भी विकसित करेगा।

नए साल के एजेंडा में शामिल हैं यह मुख्य बातें—

1. वे खूब लिखेंगे और दुनिया को दिखाएंगे कि वे कितना बेहतर हैं।

2. वे और अपनी किताबों को बेहतर बनाने की कोशिश करेंगे।

3. वे इस वर्ष कम से कम लाइव कार्यक्रम करेंगे। रामप्यारी को बड़ी दिक्कत होती है कि लाइव सब बेकार के प्रोग्राम होते है।

4. सम्मान देने वाले आयोजकों से पहले की कन्फर्म कर लेंगे कि आने व जाने का मार्ग व्यय देंगे तो तभी आएंगे।

5. पहले ही प्रकाशकों से रचनाओं के सम्बंध में अनुबन्ध करना जरूरी करेंगे।

6. यात्राओं को अपने जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बनाएंगे।

7. परिवार के सदस्यों का जन्मदिन जब भी होगा वे अवकाश करेंगे और उनके जन्मदिन पर बाहर खाना खाने जाएंगे।

8. घर में ऑफ़िस की कोई बात नहीं करेंगे।

9. कोशिश करेंगे कि परिवार को एक बार विदेश की यात्रा आने वाले वित्तीय वर्ष में करवाएंगे। (कौन से वाला वित्तीय वर्ष, इनकी कोई जानकारी नहीं।)

10. कोशिश करेंगे कि छुट्टी वाले दिन वे ब्रेकफास्ट अवश्य बनाएंगे

11. कोरोना के बाद एक दिन सिनेमा जरूर दिखाएंगे। फिलहाल सिनेमा जैसे पॉपकॉर्न घर पर खिलाने की व्यवस्था अवश्य करेंगे।

चीकू ने कहा कि मम्मी-पापा ने नए साल के लिए एजेंडा बनाया है। पापा ने कहा है कि अभी नहीं बताऊंगा। नया साल आने दो।

उधर रामखेलावन ने कहा कि पार्टी तो बनती है। उधर रामप्यारी ने कह रखा है कि घर से आफ़िस और ऑफ़िस से घर ही जाना है, समझे न!

आजकल पत्नी से डरने लगे है पांडेयजी। आखिर प्यारे पति जो ठहरे। सोते हुए पांडेयजी ने देखा कि देविका गजोधर कहीं किसी दूर गांव गई हैं और उन्हें बुलाने का नाटक कर ही हो।पांडियजी मुस्कराने लगे। तभी रामप्यारी ने देखा कि साहब तो सोते हुए भी मुस्कुराते है। वाकई में बड़े प्यारे और दुलारे है पांडेयजी।

आज बड़े दिनों बाद पांडेयजी क्रिएटिव हुए। सोचने लगे कुछ नया-सा—

हर लम्हा तुम्हारा है
जैसा जीना चाहते हो
जैसा बनना चाहते हो
जैसा बनाना चाहते हो
वो सब
तुम्हारे ऊपर निर्भर है
तुम किस तरह
अपना पहला पांव रखते हो
अच्छा या बुरा
चिंतन और चैतन्य से
भरा हुआ तुम्हारा आत्मविश्वास
यदि
सार्थक दिशा की ओर
तुम्हें ले जाएगा तो
सच मानिए
बुरा विचार नहीं होगा
हर अच्छे काम के लिए
वर्षों की साधना लगती है
कोई एक दिन में महात्मा नहीं हो जाता
अच्छे-अच्छे महापुरुषों की जीवनी यह बतलाती है
यही बात
कुछ समय उनके लिए निकालो
सोचो कि
उन्होंने अपने जीवन में
क्या संघर्ष किया
क्या पाया
सब इसी संसार के हैं
इसी संसार के थे
और इसी संसार के रहेंगे
निश्चित ही यह तय है
100 में से 99 लोग 80 लोग तो
देशाटन को नहीं निकलेंगे
कुछ जरूर जाएंगे, घूमेंगे तफरी करेंगे
और कुछ दिनों में
उन्हें उनका घर पुकारने लगेगा
कुछ ऐसे होते हैं
जो विरले होते हैं जो कोस-कोस गांव-गांव
एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक लोगों से मिलते हैं
उनकी बोलियों को समझते हैं
उनके इतिहास और उनके साहित्य से परिचित होते हुए
आगे बढ़ते हैं और
महसूस करते हैं
कि हमारा जीवन दर्शन कितना वृहद
कितना विस्तृत है
हमारा देश कितना प्यारा है, कितना मनमोहक है
मोह लेता है हमारा देश कितना अच्छा है
यदि आप एक कदम बढ़ाएंगे तो
सामने वाला दो कदम बढ़ाएगा
आपसे मिलने को
लोगों से मिलिए
लगातार मिलें यही जीवन है
यही दर्शन है और यही जीवंतता है
यही गतिशीलता है
मिल कर देखो
जीवन यही है

दर्शन यही है
समझो!
आप को समझने के लिए लोग बैठे हैं
आपके स्वागत के लिए लोग बैठे हैं
लेकिन एक बात तो
आपको ही माननी होगी
जैसा दोगे वैसा ही मिलेगा
इसलिए मैंने यह महसूस किया
कि मैं विन्रमता एक ऐसा अस्त्र है
जिसके आगे सारे के सारे शास्त्र और शस्त्र समर्पित हैं
इसलिए विनम्रता का दामन ना छोड़िए
हँसमुख रहिए है
पढ़िए-लिखिए लोगों से मिलिए
यही जीवन है
यही दर्शन है
यही सत्य है, सत्य का दामन ना छोड़िए
नमस्कार
खुश रहिए
हरि ॐ।

तभी रामप्यारी ने कहा कि सुनिए जी, आज तो बड़ी देर लगा दी, उठने में। क्या दफ्तर नहीं जाना क्या!

पांडेयजी ने देखा कि घड़ी ने सात बजा दिए।इससे पहले तो कभी नहीं हुआ ऐसा! रामप्यारी ने कहा कि ब्रेकफास्ट पैक कर दिया और लंच भी। पांडेयजी फिर ट्रैफिक में। आज दफ्तर का पहला दिन। नए साल में। लग रहा है कि पतझर से लोगों में भी वसन्त छाने लगा था। कुछ लोगों ने झुंड बना कर एक-दूसरे कमरे में नया साल मुबारक हो। इस का उच्चारण करते घूम रहे है। पांडेयजी कभी किसी कमरे में नहीं जाते थे। सोचने लगे कि जमाना बदल रहा है और लोगों का नजरिया भी। मोबाइल पर राधेश्याम गोड़बोले का मिस कॉल देखा। फोन लगाया कि नम्बर लगा नहीं। सोचने लगे कि पता नहीं कहाँ बैठे हैं! राधेश्याम गोड़बोले भी गजब नेचर वाले व्यक्ति है। मिलते है पहली फुरसत में, उनसे। आखिर आदमी दिलेर भी है और दिलदार भी। पांडेयजी को रामखेलावन से मिलना था। पर जैसे ही येलो अलर्ट जारी हुआ। उनकी गतिविधियों पर भी ब्रेक लगा। मेट्रो में जाना बंद किया और अपनी खटारा में फिर से लौट आये। भइया जान बचेंगी तो जिएंगे, मुर्दे क्या खाक जिएंगे। बहरहाल पांडेयजी ने देविका गजोधर को मन ही मन स्मरण किया और खुश होने आए काल्पनिक प्रयास करने लगे।आखिर डिस्टेंस एजुकेशन में भी पढ़ाई सम्भव है, और जब देविका हो स्मृति में तो और क्या चाहिए।

बहरहाल जीवन में खुशनुमा माहौल बना रहना चाहिए। आखिर उत्सवधर्मिता भी कोई चीज है। वैसे पांडेयजी टच वुड बड़े प्यारे इंसान है। ऐसा सपने में पांडेयजी को आभास हुआ। सोते-सोते पांडेयजी बिस्तरे से गिर गए।

रामप्यारी ने कहा कि ये क्या हुआ कि इतने सपने लेते ही क्यों है! पांडेयजी कुछ नहीं बोले। पत्नी के सामने भी चुप रहना चाहिए, वरना लेने के देने भी पड़ सकते हैं! पांडेयजी ने रामप्यारी से कहा कि सुनो अन्नपूर्णा जी, नया वर्ष मंगलमय हो। तुम स्वस्थ रहो और अपने पति को खुश रखो। रामप्यारी ने कहा कि आप भी न! आज समय से घर आ जाना। आपके लिए ब्रेड-पकौड़े बनाऊंगी। पांडेयजी को सुनकर ऐसे फील हुआ कि मानो ओमिक्रोन नाम का शैतान उनके महल्ले से कहीं कोसों दूर भाग गया हो। शनिचर कहीं का, जी हलकान कर रखा है। और नहीं तो...ओमिक्रोन ने सुन लिया और खतरनाक हँसी हँसता हुआ बगल के अमरूद के पेड़ पर चढ़ गया और विमर्श करने लगा कि उसकी अगली रणनीति क्या होगी!

उधर आम आदमी पहले ही डरा हुआ है कि मेट्रो में सीमित एंट्री, मॉल, मन्दिर बन्द, आदमी जाएं तो जाए कहाँ!

तभी बगल के घर से चौबे जी के पिटने की खबर आई। महल्ला जमा हो कि दगडू पुलिस भिये ने सायरन बजाते हुए फटफटी निकाल कर मौसम को गर्म कर दिया। आखिर लोगों की बढ़ती सर्दी भी तो ठीक करनी है कि नहीं।

पांडेयजी भी रजाई में दुबक गए। सर्दी में डंडे का बजना भी बड़ी टीस देता है। चीकू कोई पूछे तो कह देना कि पापा के सर में दर्द है। वे सो रहे हैं और पांडेयजी सोते -सोते मखनवडा के सपने लेने लगे। आखिर वे दूरदर्शी जो ठहरें!

27 मरे, 10 घायल

प्रो. राजेश कुमार

फ़ोन की घंटी बजी। फ़ैक्टरी प्रसाद ने फ़ोन उठाया। दूसरी तरफ़ थानेदार डंडाराम थे, “आपको मालूम है ना कि आपकी फ़ैक्टरी में आग लग गई है।” उन्होंने सूचना दी।

“जी”, फ़ैक्टरी प्रसाद ने गिरे हुए मन से कहा, “अभी मैनेजर का फ़ोन आया था। बता रहा था कि बहुत सारे लोग आग में जलकर मर गए हैं, क्योंकि एक तो फ़ायर ब्रिगेड देर से पहुँची और फिर रास्ता सँकरा होने के कारण, उसे बिल्डिंग तक पहुँचने में और भी देर लगी।”

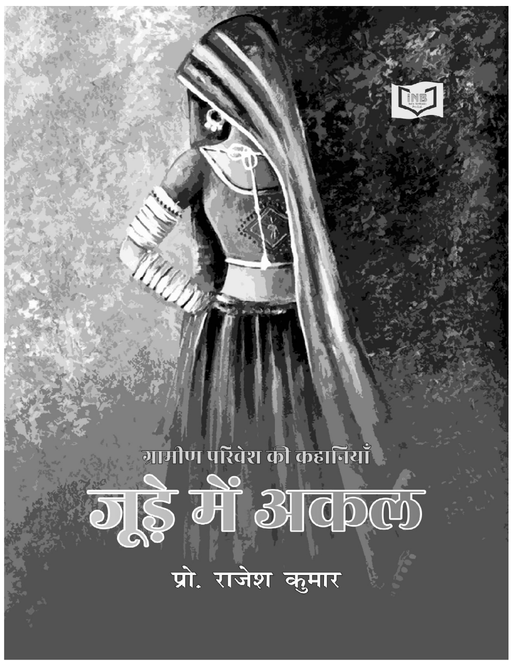

“उसकी आप चिंता मत करें!” डंडाराम ने बिना किसी उद्विग्नता के कहा, “हमारे देश में तो लोगों को जाने क्यों मरने का जैसे शौक ही है! कोई नकली शराब पीकर मर जाता है, कोई मंदिर का प्रसाद खाकर मर जाता है, कोई रेल टकराने से मर जाता है, कोई खदान में फँसकर मर जाता है, कोई बाढ़ में मर जाता है, कोई सूखे से मर जाता है, कोई गरमी से मर जाता है, कोई सर्दी से मर जाता है, कोई बीमारी से मर जाता है, कोई अस्पताल में मर जाता है! अब हम इस पर कितना विचार करें!”

डंडाराम की बात सुनकर फ़ैक्टरी प्रसाद को थोड़ी राहत महसूस हुई। इस बीच डंडाराम ने बात आगे बढ़ाई, “और ज़्यादा लोग नहीं मरे, बस 27 मरे हैं।”

“पर मैनेजर तो बता रहा था कि उस समय फ़ैक्टरी में 300 के करीब लोग थे!” फ़ैक्टरी प्रसाद ने समझने की कोशिश की, “आपको 27 का नंबर कहाँ से मिला?”

“यह सरकारी नियमों में लिखा गया है कि जितने लोग मरे हों। उनकी संख्या को मोटा-मोटी 10 से भाग करके सही संख्या निकालनी चाहिए।” डंडाराम ने सरकारी नियम की व्याख्या की, “मैं इसी आधार पर बता रहा हूँ। आप इसका औचित्य भी जानना चाहेंगे, तो बता दूँ कि वहाँ लिखा है कि अगर लोगों को सही संख्या बता दी जाएगी, तो उनमें दहशत फैल जाएगी और बहुत सारे लोग उस दहशत के कारण मर जाएँगे और इस तरह मरने वालों की संख्या में और इजाफ़ा हो जाएगा। दूसरे, और महत्वपूर्ण रूप से यह कि सरकार मरने वालों के लिए मुआवज़े की घोषणा करती है, और अगर संख्या अधिक होगी तो सरकार को ज्यादा पैसे देने होंगे, जिससे टैक्सपेयर के पैसे की बर्बादी होगी।” डंडाराम ने रुककर थोड़ी साँस ली, और आगे बात बढ़ाई, “और हाँ, आपको भी यही संख्या बतानी है, बल्कि आपको कुछ नहीं कहना है। आपको बस चुप रहना है, बल्कि चुप भी क्यों रहना है, आपको तो भाग जाना है!”

“भला, मैं क्यों भागूँगा?” फ़ैक्टरी प्रसाद ने आश्चर्य जैसा करते हुए बताया। कहा, “इसमें मेरी क्या ग़लती है? मेरा तो बल्कि नुक़सान हो गया है, मुझे अपना ऑर्डर पूरा करना था, अब जाने वह कैसे पूरा होगा!”

“ऑर्डर को आप बाद में देखिएगा,” डंडाराम ने समझाया, “मीडिया में बात खुल गई है कि आपकी फ़ैक्टरी में निकास

के लिए सही रास्ते नहीं थे, वहाँ आग बुझाने की कोई व्यवस्था नहीं थी, सुरक्षा के लिए कोई उपाय नहीं थे, फ़ैक्टरी रिहायशी कॉलोनी में चल रही थी, वगैरह-वगैरह, इसलिए आपका इस समय भाग जाना ही उचित होगा।"

"इसका क्या मतलब हुआ!" फ़ैक्टरी प्रसाद लगभग आपे से बाहर हो गया, "मेरे पास सारे सर्टिफ़िकेट हैं। मेरे पास और कुकिंग सी सर्टिफ़िकेट है, मेरे पास बिजली विभाग का सर्टिफ़िकेट है, मेरे पास फ़ायर सेफ़्टी सर्टिफ़िकेट है, मेरे पास पर्यावरण सर्टिफ़िकेट है, मेरे पास भूमि उपयोग का सर्टिफ़िकेट है। तब फिर मैं क्यों भागूँगा? भला।"

"अरे, सर्टिफ़िकेट की कोई चिंता नहीं है।" डंडाराम ने समझाने की कोशिश की, "मुझे मालूम है कि आपके पास सारे सर्टिफ़िकेट हैं, और अगर आपके पास कोई सर्टिफ़िकेट कम भी होता है, तो हम खुद ही उसको पूरा करवा देते। लेकिन अभी आपको सहयोग करने की ज़रूरत है, क्योंकि मामला हाथ से निकल गया है। इसलिए इस समय आपका भाग जाना ही उचित है।" फ़ैक्टरी प्रसाद की समझ में कोई बात नहीं आईए लेकिन वह इतना समझ गया कि उसे अब जान बचाकर भागना ही होगाए इसलिए उसने कहा, "तो ठीक है, मैं भागकर कहीं चला जाता हूँ।"

"नहीं, आपको कही जाने की ज़रूरत नहीं है।" डंडाराम ने समझाया, "आप आराम से अपने घर में रहिए। बस बाहर मत ना आइए। हम कह देंगे कि आप भाग गए हैं, और आपकी सरगर्मी से तलाश जारी है।"

"ठीक है," फ़ैक्टरी प्रसाद ने बात मान लीए क्योंकि उसके अलावा उसे कोई और चारा भी नहीं दिखाई दे रहा थाए "जैसा आप ठीक समझे।"

"और, दो-तीन दिन बाद हम आपको गिरफ़्तार कर लेंगे।" डंडाराम ने आगे की कार्रवाई स्पष्ट करते हुए कहा, "हमें उसमें भी आपके सहयोग की ज़रूरत होगी।"

इस पर फ़ैक्टरी प्रसाद थोड़ा घबरा गया, और बोला, "तो क्या आप मुझे जेल में डाल देंगे।"

"अरे, जेल में जाए आपके दुश्मन!" डंडाराम ने उनके डर पर ठहाका लगाते हुए कहा, "हमें तो बस आपको गिरफ़्तार करना होगा।"

"तो ठीक है, मैं पुलिस स्टेशन आ जाऊँगा।" फ़ैक्टरी प्रसाद ने समझ लिया कि यह भी औपचारिकता की बात ही है और इसमें चिंता करने जैसा कोई मुद्दा नहीं है।

"नहीं, नहीं।" डंडाराम ने आगे समझाया, "आप पुलिस स्टेशन आ गए, तो वह तो सलैंडर हो जाएगा। उसमें तो पुलिस की बदनामी हो जाएगी। आपको सलैंडर नहीं करना, बल्कि हम आपको गिरफ़्तार करेंगे, ताकि हम साबित कर सकें कि पुलिस कितनी मुस्तैद है।"

फ़ैक्टरी प्रसाद इतना तो समझ गए कि सलैंडर का मतलब सरेंडर है।

"तो क्या आप मुझे घर से गिरफ़्तार करके ले जाएँगे!" फ़ैक्टरी प्रसाद को फिर चिंता हुईए "ऐसे में तो हमारी बहुत बदनामी होगी।"

"अरे, जब तक हम बैठे हैं, तब तक भला आपकी बदनामी कैसे हो सकती है!" डंडाराम ने फ़ैक्टरी प्रसाद की नादानी पर फिर से ठहाका लगाते हुए कहा, "आप अपने घर पर आराम से रहिएगा। बस, हम घोषित कर देंगे की हमने आपको गिरफ़्तार कर लिया है! इसके बाद जब मामला ठंडा हो जाएगा, तो आप फिर से अपना काम-धंधा शुरू कर देना!"

फ़ैक्टरी प्रसाद पूरी तरह से समझ गया कि उसे इस मामले में किसी तरह की कोई चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उसने राहत की लंबी सांस ली, जिसे दूसरी तरफ डंडाराम ने भी स्पष्ट रूप से सुना।

"अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हारी फ़ैक्टरी में बनता क्या है?" डंडाराम इस इरादे से पूछा कि कोई मतलब की चीज़ हो, तो उससे मंगवा लिया जाए।

"जी, उसमें आग बुझाने के इंस्ट्रूमेंट बनते हैं।" फ़ैक्टरी प्रसाद ने बताया।

इस पर डंडाराम ने निराशा से इतनी ज़ोर से सिर हिलाया कि उसकी आवाज़ फ़ोन से टकराकर फ़ैक्टरी प्रसाद तक पहुँच गई, क्योंकि यह उसके मतलब की चीज़ नहीं थी।

मॉस्को में दिवाली

स्मृति कुमार

इस बार दिवाली पर मेरे बीसेक विद्यार्थी आ रहे हैं, हमारा त्यौहार देखने, प्रोफ़ेसर साहब ने दफ़्तर से आते ही घोषणा की और अपना ओवरकोट वगैरह उतारने लगे।

"दिवाली!" हमारा माथा ज़ोरों से ठनका, "लेकिन दिखाओगे क्या? न घर में दिये, न मोमबत्ती। न पटाखे और न ही किसी देवी-देवता की तस्वीर, न पूजा का सामान और न ही मिठाई, बस बुला लिया अपने विद्यार्थियों को और वो भी रूसी!"

"तुम्हारा तो हमेशा से नकारात्मक रवैया रहा है।" उन्होंने तुनकते हुए कहा, "कभी मेरी किसी बात पर हाँ भी की है तुमने!" बोलते हुए जाकर पलंग पर लेट गए।

"देखो, मेरा यह मतलब नहीं था", मैं उनके पास जाकर बैठ गई, "लेकिन दिवाली का तो पूरा सामान भी चाहिए, पूरी तैयारी...।"

"तुम्हारी तो ना पर ना होती जा रही है। अरे कुछ तो सोचो, मैं यहाँ भारत से रूस हनीमून मनाने नहीं आया हूँ। मुझे यहाँ रूसियों को अपनी भाषा, अपनी संस्कृति से परिचित कराने के लिए भेजा गया है, और अगर मुझसे हिंदी सीखने वाले विद्यार्थी किसी त्यौहार के विषय में कुछ जानकारी लेना चाहते हैं, और देखना चाहते हैं कि उसे कैसे मनाया जाता है, तो क्या मैं उन्हें मना कर दूँ कि भई हमारे घर मत आना, हमारे घर दिवाली मनाने की सामग्री उपलब्ध नहीं है। बस, बिना सोचे समझे ना कर देती हो। अरे कोई कोशिश करे तो क्या नहीं हो सकता।"

मैं समझ गई कि अब ये जल्दी नहीं मानेंगे और गुस्सा बढ़ गया, तो विद्यार्थियों को मना कर देंगे और हमेशा के लिए नाराज़ हो जाएँगे। अब तो दिवाली मनाकर ही इनको मनाया जा सकता है। फिर मुझे भी लगा कि मैं ही क्यों इस बात में रुचि नहीं लेती, विदेश की दिवाली की तो अपनी महत्ता होगी। साथ ही अपने आप पर भी ग़ुस्सा आ रहा था कि जब भारत से विदेश के लिए रवाना हुए थे, तब कम-से-कम यह तो सोचना ही चाहिए था कि वहाँ पर कभी तो अक्तूबर-नवंबर भी आएगा और दिवाली भी। दूसरों के लिए न सही, अपने लिए तो होली-दिवाली का सामान लेकर चलना ही चाहिए था। लेकिन नहीं जी, उस समय तो बस विदेश जाने का ऐसा भूत सवार था कि अपने भगवान जी को भी वहीं भूल गए। इन सारी बातों को देखते हुए हमने भी ठान लिया कि विदेश में दिवाली मनाकर ही छोड़ेंगे।

दूसरे दिन बच्चे को लेने के लिए केंद्रीय विद्यालय पहुँचे। विद्यालय के बाहर विदेश मंत्रालय में सेवारत कर्मचारियों की पत्नियाँ मिल गईं। वे सुनकर हैरान रह गई कि मैं घर का मंदिर नहीं लाई और न ही पूजा का सामान।

"अरे आप पूजा नहीं करतीं अपने घर में! हम तो अपना पूजा का सारा सामान, रोली-मोली, सुपारी, आरती सभी कुछ लाते हैं और रोज़ पूजा करते हैं।" और इस बात पर जितना जलील वे हमें कर सकती थीं, उन्होंने किया।

अब हम कैसे उन्हें बताते, हमें न तो इस बात का कुछ अनुभव था, न ही कोई ठीक ढंग से मार्गदर्शन करने वाला। हमारे पति को तो पहली और शायद आखिरी (दिल ने कहा कि हाय राम, यह ग़लत हो) रूसियों को हिंदी पढ़ाने के लिए नियुक्ति मिली थी। आपकी तरह विदेशों में तो घूमते नहीं कि कुछ अनुभव हो जाता। हम तो बहुत-सी ज़रूरी चीज़ें वहीं भूल आए। और बताने से भी क्या लाभ होता, जब कि वे तो साबित भी यही करना चाहती थीं, खैर मज़ाक सभी ने उड़ाया, लेकिन किसी ने झूठे भी मदद की पेशकश नहीं की। कोई भी अपने गणेश जी और लक्ष्मी माता हमें देने को इच्छुक नहीं था कि कहीं गणेश सहित लक्ष्मी जी हमारे घर ही न टिक जाएँ।

शाम को अपने ही भवन (यानी समझिए टॉवर या ब्लॉक) में अपनी ही तरह नियुक्ति पर कर्नाटक से आए योग अध्यापक की पत्नी से जब बात की, तो वे फटाफट बोली, "आप चिंता न करें, मैं आपको भगवान का फ़ोटो और

रोली-मोली दे दूँगी।"

यह कहकर उन्होंने कई कहावतों को सही साबित कर दिया। जैसे, एक ही कश्ती पर सवार लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं, कि पड़ोसी-ही-पड़ोसी के काम आता है, वगैरह।

चलो एक समस्या दूर हुई, यह सोचकर थोड़ा शांति से बैठी।

एक घंटे बाद दरवाज़े पर घंटी बजी। कर्नाटक वाली। भाभी जी भगवान का फ़ोटो और कुछ पूजा का सामान ले आई थीं, लेकिन बात कुछ बनती नज़र आई नहीं। फ़ोटो शिवजी-पार्वती की थी, जबकि दिवाली के लिए गणेश-लक्ष्मी तो चाहिए ही थे। हमने उनका दिल न तोड़ने के लिए फ़ोटो रख लिया, पर चिंता हो गई कि यह सब होगा कैसे?

दो-चार दिन और निकल गए सोचते-सोचते। तभी एक दिन अचानक सुपुत्र ने इंटरनेट पर दिवाली के बहुत सारे कार्ड दिखाते हुए कहा कि, ''मम्मी भारत में किसी को ई-मेल से कार्ड भेजना है, तो यहाँ से भेज सकती हो।''

"वहाँ किसके पास कम्प्यूटर धरा है!" मैंने लापरवाही से कहा, "छाप कर देने हैं, तो दे दो, मैं डाक से भेज दूँगी।"

"छाप भी दूँगा। आकर पहले कार्ड पसंद तो कर लो।" उसने कहा, तो दिल में एक बार फिर ख़ुशी की लहर दौड़ गई।

कई कार्ड थे, दियों के, मोमबत्ती के, फूलझड़ी, और अनार के या सिर्फ शुभ दीपावली के। कुछ कार्डों पर लक्ष्मी जी और गणेश जी की तस्वीरें भी थीं। तस्वीरें देखते ही मैं ज़ोर से चिल्लाई, "अरे वाह! बन गया काम, छोड़ कार्ड वार्ड, फटाफट मुझे बड़ी-सी लक्ष्मी माता और गणेश जी की तस्वीर छापकर दे दे। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

बेटे ने फटाफट दो रंगीन तस्वीरें छापकर मुझे दे दीं।

चलिए देवता तो मिल गए (जो वैसे बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते)। अब ये ही आगे के काम करवाएँगे, मैंने उनके आगे हाथ जोड़ते हुए कहा।

दीये-मोमबत्ती वगैरह बाज़ार में ढूँढ़े, पर कहीं नहीं मिले। किसी ने बताया मोमबत्ती और पटाखे यहाँ क्रिसमस और नए साल के आसपास मिलते हैं।

भारत में हम 51 दीप तो जलाते ही थे और उसके अलावा बहुत-सी मोमबत्तियाँ बड़े-बूढ़ों से यह भी सुन रखा था कि 11, 21, 51, 101 या 501 जितने भी दीपक एक दिवाली पर जलाएँ, आने वाली दिवाली में इनकी संख्या घटाएँ नहीं बढ़ा ज़रूर सकते हैं। यहाँ कैसे 51 दीप जलाएँ, हमारी समझ से बाहर था। दीये न सही मोमबत्ती ही सही, लेकिन कुछ मिले तो सही।

अचानक याद आया कि माँ कभी-कभी आटे का दीपक बनाकर पूजा करती थी। फटाफट उठकर सख़्त आटा गूँदकर एक बड़ा और दस छोटे दीये बनाकर सूखने के लिए रख दिए। चलो 51 न सही 11 ही सही, लक्ष्मी माता ज़रूर हमारी मजबूरी समझेंगी और नाराज़ नहीं होंगी।

दिवाली में भी ज़्यादा दिन नहीं बचे थे। एक दिन बाज़ार में जन्मदिन के केक पर लगने वाली मोमबत्तियाँ दिख गईं। सोचा 51 की संख्या इस तरह पूरी हो सकती है, 11 दीये और 40 छोटी मोमबत्तियाँ जला लेंगे। एक दुकान पर फुलझड़ियाँ दिखीं, तो वे भी ख़रीद लीं। सोचा थोड़ा धूम-धमाका भी हो जाए।

दीये अब तक सूख चुके थे। उन पर रंगों से डिज़ाइन बनाकर सज़ा भी लिया।

दिवाली वाले दिन सुबह से ही खाना बनाने में जुट गए। हिंदी सीख रहे रूसी विद्यार्थियों को त्यौहार के साथ-साथ भारतीय भोजन का भी लुत्फ़ लेना चाहिए, ऐसा सोचकर उनके लिए समोसे, तरह-तरह के पकौड़े, दाल की पकौड़ियाँ, भल्ला-पापड़ी चाट, छोले-भटूरे, पुलाव, और खीर बनाई। मॉस्को में मिठाई नहीं मिलती, इसलिए पूजा के लिए मेवा डालकर सूजी का हलवा बनाया।

दिवाली की तैयारी से प्रोफ़ेसर साहब बेहद ख़ुश नज़र आ रहे थे।

एक कमरे में छोटी-सी मेज़ पर चमकीला (उपहार पर चढ़ाने वाला) काग़ज़ बिछाकर सामने दीवार पर लक्ष्मी-गणेश, शिव-पार्वती के चित्र टेप से चिपका दिए। एक थाली में बीच में बड़ा दीपक और आसपास 10 छोटे दीये रखकर, दूसरी थाली में सख़्त आटे की दो मोटी-मोटी कच्ची रोटियों का आधार-सा बनाकर 20-20 छोटी मोमबत्तियाँ टिका दीं।

एक थाली में धूप-अगरबत्ती, रोली-मोली रखकर सब तैयारी कर दीए चावल पीसकर मंदिर से दरवाज़े तक लक्ष्मी जी के छोटे-छोटे पाँव भी बना दिए।

दिवाली के दिन शाम छह बजे से छात्र-छात्राएँ आने शुरू हो गए, कोई फूल, कोई उपहार, तो कोई फल, चॉकलेट, या केक हमें देकर हिंदी में आपको दिवाली बहुत-बहुत मुबारक हो या फिर आपको 'दिवाली की शुभकामनाएँ' बोलते रहे। सभी अपने साथ कैमरे या वीडियो कैमरे लेकर आए थे।

प्रोफ़ेसर साहब ने सभी से हमारा परिचय कराया। सभी अच्छी तरह से हिंदी में बात कर रहे थे। परिचय कराते समय वे प्रोफ़ेसर साहब की प्रशंसा में कहते, 'हमें गुरुजी ने अच्छी हिंदी सिखाई।' यह सुनकर दिल प्रसन्न हो रहा था। कुछ नए विद्यार्थी भी थे, जो अभी पूरी तरह से हिंदी नहीं सीख पाए थे, लेकिन थोड़ी-थोड़ी अंग्रेज़ी बोल लेते थे या फिर हिंदी जानने वाले अन्य विद्यार्थी की सहायता से हमसे बात कर रहे थे। शौकिया हिंदी सीखने के साथ-साथ कोई डॉक्टर, कोई वकील, तो कोई इंजीनियर की पढ़ाई भी कर रहा था।

नाद्या, कात्या, वाल्या, एलेना, तिस्सा, पीटर, सेर्गेई, नीना, नताशा, ल्युदमिला, ल्योना, इरीना, मारग्रेटा, लुबा सभी हिंदी फ़िल्मों के बहुत शौकीन थे, सभी ने हिंदी फ़िल्मों में होली-दिवाली देखी थी और अब सचमुच देखने के लिए बहुत उतावले हो रहे थे। परिचय के बाद जैसे ही मैं जलपान की व्यवस्था करने रसोईघर में गई, तो कुछ छात्र-छात्राएँ मेरे पीछे-पीछे रसोई में आ गए, वे सभी हमारी रसोईघर के सामान को छू-छूकर देखते और पूछते, "क्या यह चकला है।"

"आप हमें तवा दिखाइए कैसा होता है।"

चूल्हे पर तेल की कढ़ाई देखकर तान्या जोश से चिल्लाई, "यह कढ़ाही है नए!" उतने ही जोश से मैंने भी हामी भरी, नाद्या ने पूछा, "क्या यह परात है", तो मैंने हाँ की। तुरंत वह बोली और इसमें यह गूंदा हुआ आटा है और आप इसकी चपाती बनाएँगी या फिर पूरी।''

मेरे बताने पर कि नहीं यह उबालकर मसला हुआ आलू है और हम इससे टिक्की बनाएँगे, तो नाद्या ने भोलेपन से बताया कि, ''गुरुजी ने तो बताया था कि परात में रोटी या पूरी बनाने के लिए आटा गूंदते हैं।'' मैंने कहा कि, ''वह भी ठीक है, लेकिन हम इसमें आलू भी रख सकते हैं, यह मना नहीं करती।'' तो वे सब हँसने लगे।

तभी कात्या ने कहा कि मुझे बताइए कि आलू की टिक्की कैसे बनती है? मैं भी आपके साथ बनाऊँगी। तो ल्युदमिला फट से रूसी में उससे बोली, "क्यों, तू क्यों अकेली बनाएगी, हमें भी तो सीखना है", और कात्या को एक तरफ़ धकेलकर वह खुद परात के आगे खड़ी हो गई। कुछ-कुछ रूसी मैं भी समझ लेती थी, उन दोनों का झगड़ा

बढ़ न जाए, इसलिए मैंने कहा कि पहले हम पूजा करेंगेए बाद में टिक्की बनाएँगे, चलिए पहले पूजा के कमरे में चलें।

पूजा के कमरे में तो नज़ारा ही कुछ और था। पाँच-छह विद्यार्थी सजे हुए मंदिर के सामने हाथ जोड़कर अलग-अलग मुद्राओं में फ़ोटो खिंचवा रहे थे। उनके लिए वह सब एकदम नई बात थी। दीया, धूप, अगरबत्ती, भगवान की तस्वीरें, केक की बजाय आटे की रोटी पर मोमबत्तियाँ। यह सब देखकर सभी बहुत ख़ुश थे। अब तक सभी पूजा के कमरे में आ चुके थे। प्रोफ़ेसर साहब ने जब दीये, मोमबत्तियाँ, और धूप-अगरबत्ती जलाई, तो सभी के चेहरे ख़ुशी से चमक उठे। धूप-अगरबत्ती की ख़ुशबू से कमरा महक उठा। सभी ने अपने-अपने कैमरे चालू कर दिए।

मैंने सभी के माथे पर टीका लगाया। सभी ने हाथ जोड़कर बड़ी श्रद्धा से टीका लगवाया। पूजा के समय हमारे सिर ढँकने पर उन्होंने भी अपने-अपने रूमाल से सिर ढँक लिया। फिर पूजा और आरती के बाद सबको हलवे का गरम-गरम प्रसाद हाथ में दिया। उन्हें प्रसाद शायद गरम लगा और वे चाहते थे कि प्लेट और चम्मच मिल जाए, लेकिन यह बताने पर कि प्रसाद हाथ ही में लिया जाता है, सबने ख़ुशी से उसे स्वीकार किया।

इसके बाद सबने घर के दरवाज़े के बाहर आकर फुलझड़ियाँ जलाई। जिस-जिस के हाथ फुलझड़ी लग गई, वह गर्व से फूला नहीं समा रहा था। बाकी एक तरफ़ खड़े होकर उनकी वीडियो फ़िल्म बनाने लगे। कभी-कभी वे एक दूसरे से आधी फुलझड़ी ले लेते।

अब तक शायद सबको भूख लग आई थी, इसलिए उन्होंने फिर से यह कहकर हलवा माँगना शुरू कर दिया कि वह बहुत स्वादिष्ट था।

तभी इरीना का ध्यान घर के मुख्य द्वार से मंदिर तक बने छोटे-छोटे पाँवों पर गया। उसने उनके बारे में पूछा, तो मैंने बताया कि इन्हीं पर चलकर लक्ष्मी घर आती है, जिसका उसने सीधा-सा अर्थ निकाला कि ऐसा करने से धन आता है। उसने कहा कि वह भी घर जाकर ऐसा ही बनाएगी। सब विद्यार्थी उससे सहमत थे।

अब तक कात्या रसोई में जा पहुँची थी, और उसके पीछे-पीछे सभी रसोई में पहुँच गए, और सभी गोलए चौकोर, मोटी, पतली, जिससे जैसी बन पाई, वैसी टिक्कियाँ बनाने में जुट गए। समोसे, पकौड़े पहले ही से तैयार थे, सिर्फ़ गरम करने थे। टिक्की के साथ-साथ आड़े-तिरछे भटूरे भी उन्होंने बारी-बारी से तले।

रसोई में भारतीय मसालों की महक थी और पूजा के कमरे से धूपबत्ती की ख़ुशबू से सारा घर महक उठा। सब लोग बार-बार उनकी प्रशंसा कर रहे थे।

खाना परोसा गया, तो सभी उस पर टूट पड़े। समोसे, पकौड़े, भल्ला-पापड़ी की चाट, छोले-भटूरे पुलाव, खीर सभी कुछ तो पहली बार चखा था उन्होंने। वे खाते जाते और "भोजन बहुत स्वादिष्ट है" भी बोलते जाते।

खाने के बाद देर रात तक कविताएँ, चुटकुले, नाच-गाना होता रहा। आखिर में चलते समय सभी बोलते जा रहे थे—"हमें बहुत मज़ा आया। आपका त्यौहार बहुत अच्छा है।"

और हम सोचते रह गए कि मॉस्को में दिवाली मनाकर हमने खुद कितना आनंद उठाया!

दर्द मैनेज करने की कला

अख्तर अली

औरतों के कंधे पर एक बैग होता है लेकिन सिर दर्द को वो मुट्ठी में लेकर चलती हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि जब औरत कहे कि उसके सिर में बहुत दर्द है तब सही में दर्द हो। उनका यह दर्द जादुई दर्द है, जब नहीं होता है तब बहुत ज्यादा होता है। जब खत्म हो जाता है तब भी बचा रहता है। यह महसूस होने से ज्यादा व्यक्त होता है, बल्कि महसूस तो होता ही नहीं बस व्यक्त ही व्यक्त होता है। सिर दर्द औरत के पास गहने की तरह होता है। कृत्रिम दर्द में वह जितना कराहती है, वास्तविक दर्द में उसका एक प्रतिशत भी नहीं।

सिर दर्द औरत का गुलाम होता है औरत इसे उँगलियों पर नचाती है। मेरी बात पर शंका न करना, क्योंकि जब पुरुष औरत का गुलाम हो सकता है तो दर्द क्यों नहीं हो सकता। दर्द को कब बुलाना, कब तक रोकना और कब भगाना इसे औरत बखूबी मैंनेज करती है। इतना अच्छा मैनेजमेंट तो मैनेजमेंट का कोर्स करने वाले भी नहीं कर सकते है। दर्द को मैनेज करने की जो कला औरत में होती है वह पुरुष में कहाँ। पुरुष अभी इस मामले में औरत के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की स्थिति में नहीं है। पुरुष अभी बहुत पीछे है।

इनके दर्द की दवा नहीं होती द्य सिर दर्द की जितनी दवाएँ हैं वे सब पुरुषो के सिर दर्द की है। औरत दावा कर सकती है कि आज तक वो गोली नहीं बनी जो मेरे दर्द को मार सके यह दावा दवा को दर्द देता होगा द्य यही अहम वजह है कि औरत दर्द से कराहती रहेगी, बिस्तर से उठेगी तक नहीं, सभी अहम् बातो का जवाब उ-अ में देगी, लेकिन डॉक्टर के पास नहीं जाएगी।

सिर दर्द औरत का जन्मसिद्ध अधिकार है उससे उसका हक़ कोई नहीं छीन सकता। औरत की इच्छा विरुद्ध आप कोई काम करने की कोशिश कीजिये वह तुरंत सिर दर्द पैदा कर काम को नाकाम कर देगी और बाम की खुश्बू से उसके इरादे ज़ाहिर हो जाएंगे। अनुभवी आदमी औरत के हाथ में बाम की डब्बी देख चुप रहने में ही भलाई समझता है। समझदार जानते हैं कि औरत के हाथ में जो बाम है वह बम है, इसे देखते ही आदमी की आंख और होंठ दोनों बंद हो जाते है। एक बार माथे पर बाम लग गया तो फिर दर्द फूलों की तरह पूरे घर में महकने लगता है और वह दर्द की चादर लपेटे एक कमरे से दूसरे कमरे में घूमती रहती है। एक अधिकारी ने नाम न लेने की शर्त पर बताया कि मंत्रीजी की पत्नी ने कहा कि आज मेरे सिर में बहुत दर्द है तो मंत्रीजी ने कहा, ''मैं पूरे मामले की सी.बी.आई। से जांच कराऊंगा याद रखना दोषी बक्शे नहीं जाएंगे।

औरत बेसहारा कभी नहीं होती उसे हमेशा दर्द का सहारा होता है। एक ओर जहां दर्द के संपर्क में आने के बाद औरत होशियार और चालाक हुई है। वहीं दूसरी ओर औरत के संपर्क में आने के बाद दर्द अपडेट हुआ है, उसके अनेक फ्लेवर सामने आए है। जब औरत कहती है कि मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है तो यह कहकर वह सब कुछ कह देती है ये कहने के बाद फिर कहने के लिए कुछ नहीं बचता। सिर दर्द की घोषणा होते ही पूरे घर में रेड अलर्ट जारी कर दिया जाता है। बड़ी उम्र की औरते इस घोषणा को सुन एक-दूसरे को देख मंद-मंद मुस्काती हैं। उन्हें अपने दिन याद आ जाते है।

अब शुरू होता है दर्द को मैनेज करने का ढंग। जिस प्रकार चाय में शक्कर, सब्जी में नमक उसी प्रकार ढंग से ढोंग मचाया जाता है। दर्द का पैमाना इस बात पर निर्भर करता है कि अकस्मात दर्द को पैदा करने की ज़रूरत क्यों पड़ी। अगर काम के समय पड़ोसी आकर बैठ गये हैं तो दर्द इतना ही होगा कि उनसे बात तो की जा सकती है, लेकिन किचन में जाकर चाय नहीं बनाई जा सकती पति के नापसंद दोस्त आ जाएं तो पड़ोसी के समय जो दर्द था उसे उससे तीस प्रतिशत बढ़ा दिया जाता है इसमें कमरे से

निकलने की भी हिम्मत नहीं होती है। इसी बीच अगर मायके से कोई आ जाएं तो जादुई तरीके से दर्द कम होते -होते पूरी तरह गायब ही हो जाता है। ख़ुदा न खास्ता अगर ससुराल पक्ष के लोग आ जाएं तब तो दर्द अपने उच्चतम स्तर पर होता है। तब न तो उनकी तरफ़ देखने की हिम्मत होती है न उनसे बात करने की ताकत घूमने-फिरने, होटल में खाने, यानि इतवार को सिर दर्द कभी नहीं होता, क्योंकि इतवार के दिन दर्द की छुट्टी होती है।

छोटी-छोटी बूँदें

दिस इज अमेरिका

अनिता कपूर

"गुड मॉर्निंग, मिस्टर जॉर्ज, हाउ आर यू दिस मॉर्निंग।"

"डूइंग गुड मिस नीना", कहकर जॉर्ज अपना सिर हिलाता है, और नीना की तरफ देखे बिना ही गुलाब के फूलों में उनका पानी देना जारी रहता है।

नीना आज फिर रोज़ की तरह तय वक्त पर सुबह सैर को निकली है, वही "गुड मॉर्निंग" का सिलसिला मशीनी अंदाज से दोहराया गया। जॉर्ज बिलकुल अकेले रहता हैं। अस्सी वर्ष की उम्र में भी सारा काम स्वयं करते देख नीना के भारतीय मन ने एक दिन हिम्मत करके पूछ ही लिया था, "वाइ डू यू स्टे अलोन" उस दिन शायद जॉर्ज का मूड अच्छा रहा होगा। उसने बताया किए पत्नी तो कैंसर से लड़ते-लड़ते वर्षों पहले ही उसे अकेला कर गयी थी और उसके बाद एक ही बेटा था, वो भी चला गया, सिर्फ फोन से साल में एकाध बार बात कर लेता है। मुस्कुराकर बोले थे—"दिस इस अमेरिका"। पता नहीं वो खुद अमेरिका में पैदा होने के एहसास तले या बेटे के कपूत होने के दुख में कह बैठे थे। फिर एक सुबह जैसे वो नीना का ही इंतज़ार कर रहे थे। नीना को सामने से आता देख कर उन्होने अपना काम बीच में रोका और पास आ कर कहने लगे, "नीना, मैं आपके बारे में ज्यादा तो कुछ नहीं जानता, पर आपके अकेलेपन से मेरी निशब्द दोस्ती हो गयी है, मैं चाहता हूँ कि तुम वापस अपने देश लौट जाओ।" नीना उनके इस रवैये पर हैरान हुई, कुछ समझने का मौका दिये बगैर वो तुरंत वापस मुड़े थे और दरवाजा बंद कर लिया था। नीना कुछ क्षणों के लिए जैसे प्रस्तर मूर्ति बन, उस बंद दरवाजे को निहारती रही। रोज़ रात को करवटें बदलते हुए यही निश्चय करती किए कल सुबह वो ज़ॉर्ज से अवश्य पूछेगी, उसने क्यों नीना को वापस अपने देश जाने के लिए कहा। यूं तो हर रोज़ सुबह नीना का अकेलापन उनके अकेलेपन को "गुड मॉर्निंग" कहता, परंतु जॉर्ज उससे ज्यादा बात न कर तुरंत दरवाजा बंद कर लेता था। और नीना के लिए अनसुलझा सन्नाटा उस बंद दरवाजे पर छोड़ जाता। नीना को कुछ दिनों के लिए ऑफिस के काम से बाहर जाना पड़ा।

"वॉट हैप्पेंड ऑफिसर, आप सब जॉर्ज के घर के सामने क्यों खड़े हैं एनीथिंग सिरियस!" पूछते ही उसका दिल धक् से रह गया, सामने से स्ट्रेचर पर जॉर्ज को फ्युंरल वैन में लाद चौपल होम ले जा रहे थे। ऑफिसर अड़ोस-पड़ोस से सब पूछताछ पहले ही कर चुके थे। बेटे को भी खबर कर दी गयी थी।

नीना घबरा कर धम से वहीं बैठ गयी। उसे जार्ज के बंद दरवाजे पर पसरे सन्नाटे ने, उसके भविष्य का आईना जो दिखा गया था।

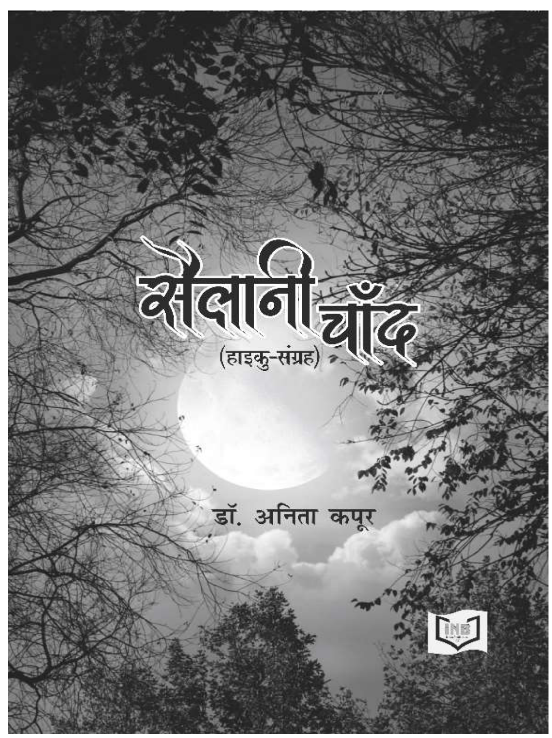

सौतेलापन

सुनील गज्जानी

"जैसे के तैसे हैं इस घर की चौखट और आँगन। जैसा मैंने पांच-छह महीने पहले देखा था! टूटी चौखट, जगह-जगह टूटा आँगन फर्क बस इतना है की सभी भाईयों के बटवारे में आये अपने-अपने कमरे नया लुक लिए है! अपने परिवार अपने रिश्तेदारों से भी राय-मश्वरा करने के बाद मैं अपनी बिटिया का रिश्ता तय करने आज यहाँ आया था मगर... ! पिता अपनी बेटी के भावी ससुराल में बैठा मन ही मन मंथन कर ही रहा होता है तभी उसका भावी समधी उसके मंथन पर विराम लगाता बोला 'अरे, समधी जी किसी भी बात की चिंता मत कीजिये, मैंने आप को जिन-जिन बातों का वादा किया है उन पर मैं एक दम खरा उतरूंगा कोई भी संशय मत रखिये! फिर भी मैं अपना वादा दोहरा देता हूँ सुनिए, नंबर एक मैं शादी में फिजूल खर्च ना करूंगा और ना ही आप से करने को कहूँगा! नंबर दो मैं बाराती चुनिंदा ही लाऊंगा! नंबर तीन मैं दहेज़ के रूप में सिर्फ हमारी बहू रानी ने जो सुहाग का जोड़ा पहना होगा बस उसी रूप में चाहिए और कुछ भी नहीं! बस हमारी बहु पढ़ी-लिखी है— संस्कारी परिवार से और भला क्या चाहिए और हाँ एक और ख़ास बात। हाँ-हाँ कहिये ना!'' लड़की का पिता उतावलेपन में बीच में बोल पड़ा!

"अरे आप इतने उतावले मत होइए। समझता हूँ आप की बेसब्री को समधीजी! बस यही कि हमारा मान-सम्मान समय के साथ-साथ समृद्ध होता रहे! मगर अब अपनी बात बताइए कि आप के मन में क्या संशय चल रही है! जो भी मन की आशंका हो खुल कर कहिये हमारे रिश्तों में कोई बनावटीपन या आडंबर नहीं होना चाहिए, जी बोलिए!

"समधीजी, क्षमा सहित आप के समक्ष अपनी बात रखना चाहता हूँ कि मेरे मन के भीतर रह-रह कर एक मंथन चल रहा है लेकिन निष्कर्ष नहीं निकाल पा रहा हूँ!" लड़की का पिता झिझकता हुआ बोला!

'अरे, समधीजी ये झिझक छोड़िए! आप भी अब घर के सदस्य है। बोलिए ना क्या मंथन चल रहा है, पूरा कीजिये अपना प्रश्न?''

लड़के के पिता के चेहरे का रंग तब फीका पड़ गया जब प्रश्न पूरा सुना जो चारो भाईयों के आपसी रिश्तों को बयां कर रहा था! ''दरअसल, मैं ये सोच रहा था कि आप के दिवंगत पूज्य पिता जी का इतना बड़ा घर आप चारों भाईयों के बीच सिर्फ कमरों तक ही क्यूँ सिमट कर रह गया! जगह-जगह टूटा आँगन टूटी चौखट क्या किसी के भी बंटवारे की सीमा में नहीं आते!''

कर्तव्य

वो जगह-जगह से जख्मी हो कर सड़क के खूंखार कुत्तों के बीच से नन्हे पिल्लै को बचा लाया! तमाशबीन रह-रह कर उसकी भूरि भूरि प्रसंशा करने लगे, तालियाँ बजाते हुए! एक ने कहा "अरे, वाह! कितना जबर्दस्त जीव-जंतुओं से प्यार है, जो अपनी परवाह किए बिना पिल्ले को बचा लाया!'' हाँ, कितने खूंखार कुत्ते थे। बन्दा हिम्मत ना करता तो इस पिल्लै की मौत तो पक्की थी! दूसरा बोला!

वो अपने कपड़े झाड़ता, अपने जख्मो को देख मुस्कुराता हुआ सहमे हुए पिल्ले को पुचकारता हुआ बांहों में भर कर मन ही मन सोचता हुआ गंतव्य की ओर चल पड़ा!

"मुझे अपने आप को सिद्ध करना ही था कि मैं अब वो नहीं हूँ! अगर पिल्ले को कुछ हो जाता तो मेरी नौकरी तो फिर से जाती ही जाती जो मुझे इतनी मुश्किल से मुझ जैसे आदमी पर भरोसा रख इस पिल्ले की देख-रेख करने के लिए रखा था! मेरा परिवार तो खुश होगा ही यह हालत देख, सेठ जी भी खुश हुए बिना नहीं रहेंगे कि मैंने उनका भरोसा कायम रखा! अब सभी को विश्वास हो जाएगा कि अब मैं किसी नशे का आदी नहीं। कर्तव्य का हो गया हूँ!"

अंधड़

यशोधरा भटनागर

विमान की खिड़की से बाहर झाँका सिंदूरी रंग की रेखा खचित आसमां, सामने चमचमाता सूरज! अप्रतिम सौंदर्य!

इस ओर से दृष्टि हटी तो अगली सीट वाले बच्चे पर ठहर गई। बच्चा जब से फ्लाइट में बैठा है टैब में व्यस्त है। आसपास की दुनिया से बेखबर, कार्टून की दुनिया में गुम। सूरज से कटे, सूरज की रोशनी से दूर, वर्चुअल संसार के ये बच्चे...सहसा सुमी घबरा कर सहम गई।

ये टूअर्स...नौकरी के सिलसिले में घर से बाहर रहने के कारण वह मोनू पर इतना ध्यान कहाँ दे पाती है? कहीं वह भी अपनी ऐसी ही अलग दुनिया में खोया हुआ तो नहीं रहता!

एक गड़गड़ाहट! फ्लाइट लैंड हो गई। झटपट बैग टाँगे वह बाहर को निकल आई।

व्यस्त सड़क पर टैक्सी सरपट दौड़ रही थी पर रास्ता था कि खत्म होने का नाम ही ना ले रहा है। घड़ी साढ़े पाँच बजा रही है।

टैक्सी से उतर तेज़ क़दमों से घर पहुँची।

"देखो दादू मेरी पतंग आसमान तक पहुँच गई।" मोनू लॉन में पतंग उड़ा रहा था, बाबूजी प्रसन्न भाव से चकरी पकड़े खड़े थे।

ऊँची उड़ती पतंग के साथ मोनू की आँखों में एक अलग ही चमक, चेहरे पर एक अलग ही खुशी दिखाई दे रही थी।

"येऽऽऽ!"

वह पतंग को और ऊँचा उड़ाने की कोशिश कर रहा था।

"चलो बेटा! बहुत हो गया। अब दीयाबत्ती का समय हो गया है। चलो आओ! दीया लगा कर भगवान की आरती करते हैं।"

अम्मा जी की आवाज़ किचन से लॉन तक पहुँच गई।

सुमी के अंदर का अंधड़ शांत हो थम चुका था।

अनमोल रतन

कोमल वाधवानी

मणि की नई-नई शादी हुई थी। उसे पता चला कि एक रस्म के अनुसार पति की पहली वाली ससुराल में जाना पड़ेगा तो वह डर गई। एक ओर ससुराल नई तो दूसरी ओर पीहर भी नया, अपरिचित लोग।

पति ने उसका भय भाँपते हुए कहा, "चिंता न करो। मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा।" परंतु वहाँ कुछ घंटों के पश्चात् ही मुझे अकेली छोड़कर चले गए और मौक़ा पाते ही घर की महिलाओं ने मुझे घेर लिया।

उम्र के अनुसार अलग-अलग प्रश्न किए गए। कितनी पढ़ी-लिखी हो? उत्तर के पश्चात् किसी ने फुसफुसाकर कहा, "पढ़ी-लिखी है, बच्चों की शिक्षा की ओर ध्यान दे सकेगी।" प्रशंसा सुन उसका चेहरा खिल उठा। अंत में एक बुज़ुर्ग महिला ने उसकी कलाई, गले तथा अँगुलियों का बारीक़ी से मुआयना किया और फिर कलाई की चूड़ियों में अपनी अँगुलियाँ फँसाकर बोली, ''ये ज़ेवर तो हमारी बेटी पहनती थी, तुम्हें पीहर से क्या मिला?'' वह खामोश दीवार की तरफ देखकर सोचने लगी, इनका पूरा ध्यान सोने के ज़ेवरों पर केंद्रित है, उन चार बच्चों पर नहीं, जो उनकी बेटी के अनमोल रतन है, और अब मेरे ख़ज़ाने में हैं।

स्वास्थ्य साहित्य

तनाव और गीता का सम्बंध

डॉ. एस.एस.मुद्गिल

सुन्दरता एवं स्वास्थ्य का चोली-दामन का साथ है।

स्वास्थ्य की परिभाषा विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार शारीरिक-मानसिक व सामाजिक रूप से स्वस्थ होना ही पूर्ण रूप से स्वस्थ होने की निशानी है। कोई व्यक्ति कितना ही सुन्दर क्यों न हो, अगर वह तनाव में है तो तनाव के चिह्न चेहरे की मलीनता से दृष्टिगोचर हो ही जाते हैं। एक फ़िल्मी गीत इस बात को बड़ी खूबसूरती से व्यक्त करता है—लाख छुपाओ छुप न सकेगा राज़ हो कितना गहरा दिल की बात बता देता है असली-नकली चेहरा। तनाव न केवल सुन्दरता पर विपरीत असर डालता है। अपितु कई रोगों को भी निमन्त्रण दे देता है। आइये जानें तनाव या स्ट्रेस है क्या और इससे कैसे बचें?

स्ट्रेस का जिक्र आजकल कुछ अधिक होता जा रहा है। इसके निवारण हेतु अनेक उपाय सुझाए जा रहे हैं मगर स्ट्रेस, चिन्ता है क्या? पहले यह तो सोचें, चिन्ता का अस्तित्व तो आदि काल से है। महाभारत के वन पर्व में यक्ष-युधिष्ठिर प्रश्नोत्तरी में एक श्लोक आता है—

माता गुरुतरा भूमे खात्यितोच्चतरस्तथा
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणा

यक्ष द्वारा प्रश्न पूछा गया था धरा से गुरुतर कौन है? युधिष्ठिर का जवाब था—माता।

आकाश से ऊंचा कौन है? जवाब मिला—पिता
वायु से शीघ्र कौन चलता है? जवाब था-मन
तिनकों से अधिक क्या है?—चिन्ता

तो यह चिन्ता क्या है?

कोई भी स्थिति जो हमारे अस्तित्व अथवा सुरक्षा को खतरा पैदा करती है, उसका भय ही चिन्ता है। जैसे भिखारी के लिए भूखों मरना चिन्ता का विषय है, वैसे ही धनाढ्य को सम्पत्ति की रक्षा की चिन्ता है। डिग्री धारी को नौकरी न मिलना चिन्ता है। बीमार को पहले बीमारी का निदान न होना, फिर इलाज न होना चिन्ता का विषय हो सकता है। विद्यार्थी को परीक्षा इसलिए चिन्तित करती है कि असफल न हो जाए। असफल माने फेल या उसके अपने मापदण्ड के अनुसार ग्रेड या अंक न आना भी चिन्ता है।

आप कहेंगे ऐसे तो जीना ही चिन्ता है क्योंकि मरने का डर रहता है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार स्ट्रेस की परिभाषा

स्वयं हेतु या अपने से सम्बन्धित किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति किसी भी प्रकार की असुरक्षा की भावना का नाम—चिन्ता या स्ट्रेस है। यूं तो मनुष्य जीवन चुनौतीभरा है ही, नित्य अनेक कार्य स्ट्रेस या मानसिक तनाव को उत्पन्न करते हैं जैसे बिजली, टेलिफोन, बच्चों की फीस, इन्कम टैक्स रिटर्न आदि को अन्तिम दिन तक टालते रहना भी तनाव को बढ़ाता है। अगर रसोई गैस खाली होने वाली है तथा दूसरा सिलेन्डर भी खाली है तो तनाव का कारण बन सकता है बच्चों के दाखिले, इम्तिहान ही नहीं, रोज-रोज होमवर्क तक अनेक माता-पिता को तनाव दे देते हैं।

किशोर बच्चों के अत्यधिक टेलिफोन आना या आधा घन्टा या घन्टा फोन मोबाइल से चिपके रहना भी आजकल माता पिता को स्ट्रेस दे बैठता है।

टेलिविजन जहाँ मनोरंजन का साधन है, वहीं अगर आपने हर कीमत पर किसी सीरियल की हर कड़ी देखनी है तो यातायात का जाम होना तथा मेहमानों का अचानक सीरियल के वक्त आना भी तनाव उत्पन्न कर सकता है।

यात्री को रेल या विमान छूट जाने का भय तनाव पैदा करता है।

दफ्तर में बास या मातहत का व्यवहार तनाव दे सकता है हम कितना भी हँसकर टाल दें, मगर उपरोक्त एवं

अनेक अन्य अनिश्चताएं हमारे मानसिक तनाव का कारण बनती हैं, और भी अनेक बातें हैं जिन्हें हम आप सभी जानते हैं। अब सवाल उठता है—

तनाव से कैसे बचें

तनाव से पूर्णतया बचना असंभव है, मगर हल्का तनाव या कभी-कभार का तनाव कष्टहीन तथा कई बार आपको उन्नति का मार्ग खोल सकता है। जैसे स्वस्थ प्रतिस्पर्धा पॉजेटिव तनाव है। परीक्षा हेतु तनाव आपको अधिक तैयारी करने के लिए प्रेरित करता है। स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता, संतुलित भोजन, योग-व्यायाम ध्यान व सुनिश्चित निद्रा हेतु प्रेरित करती है।

लेकिन अधिक मात्रा में चिंता यथा एक ही बात को एक दिन में तीन बार से ज्यादा याद कर चिंता करना व एक सप्ताह या इससे अधिक इस तरह की चिन्ता रोग को बुलावा देना होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार अनेक रोग यथा उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं हृदयाघात होने में स्ट्रेस का बड़ा हाथ हो सकता है।

तो इससे बचें कैसे? प्राकृतिक तौर पर जीव असुरक्षा से या तो असुरक्षा पैदा करने वाले व्यक्ति जीव या स्थिति से लड़ बैठता है या रण छोड़ कर भाग लेता है माने फाइट आर फ्लाइट (लड़ो या खिसको) मगर आज के जीवन में यह संभव नहीं होता। इसको चिकित्सीय भाषा में परिभाषित करने का यत्न करते हैं। हम गीता से प्रेरणा, लेकर गीता में तीन प्रकार के योग का वर्णन है—कर्म योग, भक्ति योग, संन्यास योग।

थ्री डी फार्मूला

आधुनिक चिकित्सा विज्ञानं प्राकृतिक नियम लड़ो या भागो (खिसको) में एक चीज और जोड़ कर एक फार्मूला बनाते हैं इसे हम थ्री डी फार्मूले का नाम देते हैं।

DO. DELEGATE एंड DENY

DO कर्म योग 2. delgate भक्ति योग 3. DENY संन्यास योग।

1. Do काम को वक्त से पहले ही निबटा लें, अंतिम दिन या समय तक न टालें जैसे बिजली-टेलीफोन के बिल, फीस आदि को भरने की प्रतीक्षा अन्तिम दिन तक न करें। पहले-दूसरे दिन ही भर कर निश्चिन्त हो जाएं।

2. Delgate काम निबटाने हेतु परिवार या मित्रों की सहायता लें, सहायता करें जैसे बिल गैस-सिलेण्डर आदि कुछ महीने आप भरें। कुछ महीने कोई और मित्र दोनों के बिल भरें।

3. DENY कुछ काम जो आप कर ही नहीं सकते। उन्हें सीधे ना कहना सीखें, झूठा आश्वासन देना भी तनाव बढ़ाता है जो संभव नहीं है, उसे ना कहें। वरना आप अनावश्यक बोझ मन पर घसीटेंगे।

स्वयं से भी ना कहना सीखें। अत्यधिक महत्वाकांक्षा या अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा को मन से नकारें, निकालें। क्लब या समारोह में लोगों के उकसाने से अपनी शारीरिक-मानसिक क्षमता से अधिक कार्य करने की हाँ न करें, नाहक मन पर बोझ न डालें जो बन आए सहज में ताहि में मन देय पुरानी मगर सटीक कहावत है।

आइये अब इसे गीता के श्लोकों के माध्यम से समझें—

1. DO कर्म योग

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतः4.15
गीता अध्याय 4 श्लोक 15

शब्दार्थ : पूर्व के मुमुक्ष पुरुषों द्वारा भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किया गया है। इसलिये तुम भी पूर्वजों द्वारा सदा से किये हुए कर्मों को ही करो।

भावार्थ : तुम्हारे पुरखों व गुरुओं ने जिस तरह अपने कर्तव्य का पालन किया है—वैसे ही तुम्हें करना चाहिए।

2. Delgate it भक्ति योग

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः 18.66

शब्दार्थ :

सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।

भावार्थ : जब कोई कार्य करने में असमर्थ पाएं यथा—समय न होना, बीमारी की अवस्था, तो चिन्ता छोड़ किसी मित्र या संबंधी की सहायता से काम करवाएं।

3. Deny it

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः4.19

शब्दार्थ : जिसके समस्त कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं, जो अपने कर्ता होने के अहंकार को त्याग कर काम करता है। कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानीजन पण्डित कहते हैं।

भावार्थ : जो मनुष्य यह जान लेता है कि तेरा सामर्थ्य इतना है या तू यह काम करने में असमर्थ है और झूठी शान या दिखावे हेतु या बॉस को प्लीज करने के लिए ऐसा काम नहीं लेता जो वह नहीं कर सकता वही बुद्धिमान तनावमुक्त हो पाता है।

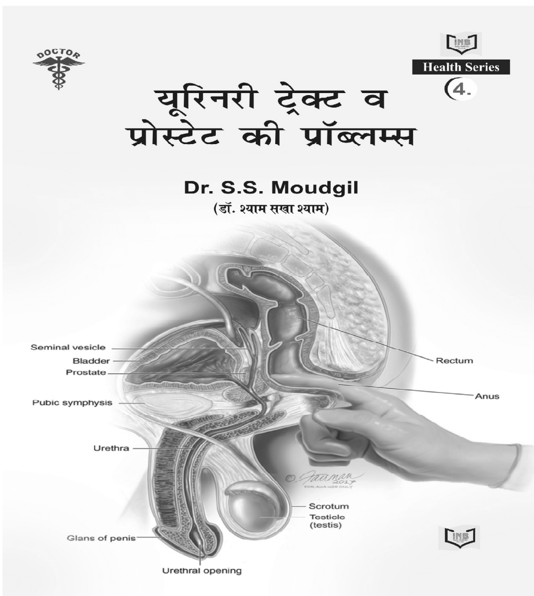

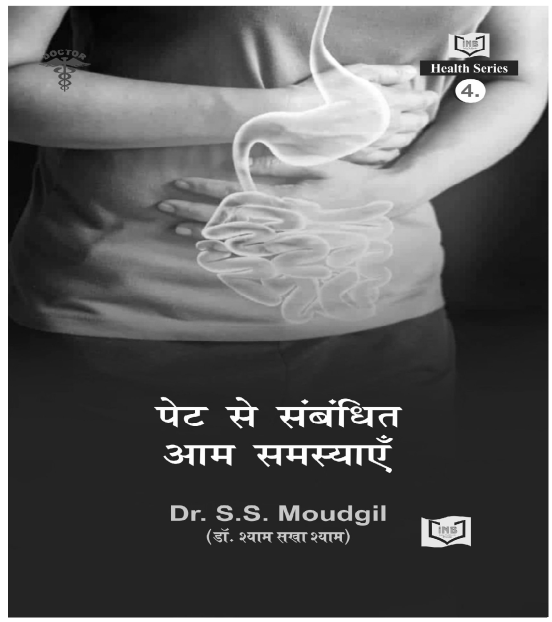

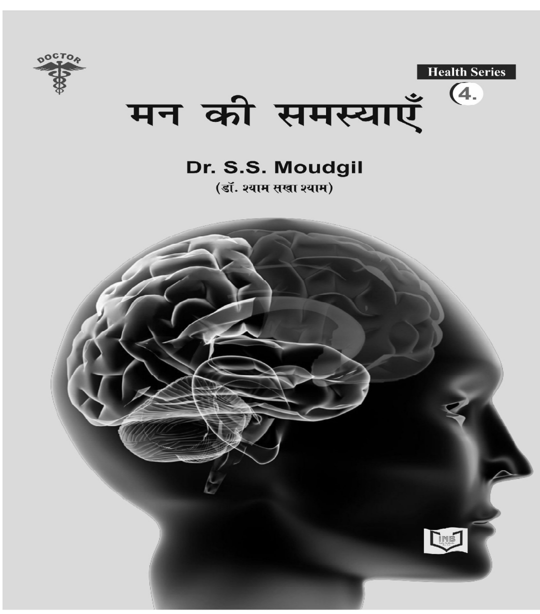

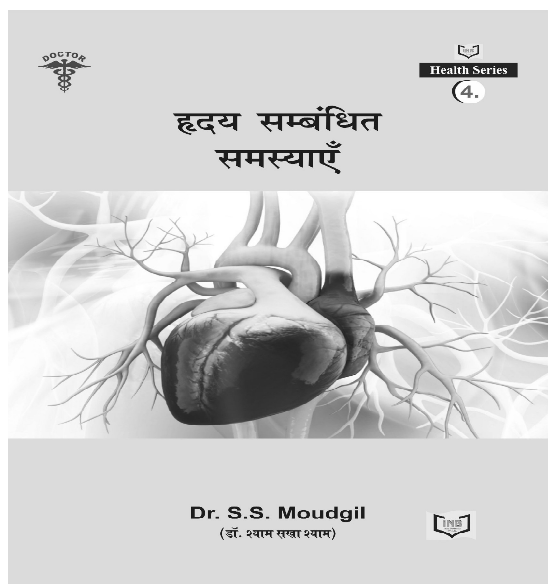

विधि साहित्य

मानव अधिकार और भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम 1993

सन्तोष खन्ना

मानव अधिकारों की अवधारणा 'स्वाभाविक न्याय' और मानव के 'मूल अधिकारों और स्वतंत्रताओं' पर आधारित है। सभी मनुष्यों को समान अधिकार मिले, मानव एक गरिमामय जीवन व्यतीत कर सके, इसके लिए यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि प्रत्येक मानव को बिना किसी भेदभाव सभी प्रकार के मानव अधिकार मिले। वैसे तो मानव अधिकारों का इतिहास बहुत पुराना है, परंतु मानव अधिकारों की वर्तमान व्यवस्था का आरंभ तब हुआ जब द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। उस समय के युद्ध ग्रस्त देशों ने यह महसूस किया कि युद्ध के कारण बहुत विनाश हो लिया और मानव के लिए बहुत सारी समस्याएँ पैदा कर दी गई हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना के लिए कोई ऐसी कारगर संस्था बनाई जाए जो मानव अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन कर सके। जब वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई तो उस समय विश्व के पचास देश इस के लिए भागीदारी कर रहे थे जिनमें भारत भी एक सदस्य देश था।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना के 1 वर्ष बाद 1946 में अलनोर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया कि वह उस समय विश्व में मानव अधिकारों की स्थिति का मूल्यांकन कर रिपोर्ट महासभा को प्रस्तुत करें। मानव अधिकार समिति की प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर वर्ष 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों का एक चार्टर बनाया जो मानव अधिकारों के लिए एक मील का पत्थर साबित हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 10 दिसंबर, 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक धोषणा का प्रस्ताव पारित कर उसे लागू कर दिया। जब संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा संबंधी प्रस्ताव पारित हुआ तो महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष ने सही ही कहा था—'यह प्रथम अवसर है जब संगठित राष्ट्रों ने मानव अधिकार और मूल स्वतंत्रताओं की घोषणा की है। इस प्रकार यह घोषणा मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है।

इस घोषणा के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ हर वर्ष 10 दिसंबर को अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाता है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की प्रस्तावना में कहा गया कि—''संयुक्त राष्ट्र संघ के हम सभी व्यक्ति निश्चय करके छोटे-बड़े राष्ट्रों और स्त्री-पुरुष के समान तथा आधारभूत अधिकारों के संरक्षण के लक्ष्य को सामूहिक प्रयासों से पूरा करेंगे।'' वर्ष 1948 से लेकर अब तक संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व में मानव अधिकारों को लागू करने के लिए सक्रिय है और विश्व के सभी देश अपने यहां सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं कि उनकी जनता के मानव अधिकारों का उल्लंघन ना हो और सभी के मानव अधिकार सुरक्षित रहें। संयुक्त राष्ट्र संघ के अब तक विश्व के देशों की सदस्य संख्या बढ़कर 193 हो चुकी है, अर्थात् समूचा विश्व संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार घोषणा के क्षेत्र में आ चुका है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की मानव अधिकार संबंधी सार्वभौमिक घोषणा को लागू हुए अब तक 10 दिसंबर 2023 को लगभग 75 वर्ष हो जाएंगे, अर्थात् संयुक्त राष्ट्र संघ चाहे तो मानव अधिकारों संबंधी 'अमृत महोत्सव' मना सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की मानव अधिकारों की घोषणा में 30 खंड हैं जिनमें सिविल और राजनीतिक अधिकार तथा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मानव अधिकार शामिल हैं।

जब वर्ष 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व में मानव अधिकारों का मूल्यांकन करने के संबंध में कदम उठा रहा था तो उसी वर्ष भारत में स्वतंत्र भारत के लिए एक नया संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा का गठन किया

गया था। संविधान सभा ने भारत के नये संविधान का निर्माण करते समय संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा में सम्मिलित सभी मानव अधिकारों को संविधान में शामिल कर लिया। भारत के संविधान में समानता, स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता मानव जीवन की गरिमा जैसे महत्वपूर्ण मानव अधिकारों को भारत के संविधान के अध्याय 3 में मूल अधिकारों के रूप में शामिल कर लिया और सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मानव अधिकारों को भारत के संविधान के अध्याय 4 में राज्य के नीति निदेशक तत्वों के रूप में शामिल कर लिया गया। मूल अधिकारों में उपचार संबंधी मूल अधिकार को भी शामिल कर लिया गया जो संविधान के अनुच्छेद 32 में है, जिसमें यह प्रावधान है कि यदि किसी नागरिक के मूल अधिकार का उल्लंघन होता है तो वह राज्य के विरुद्ध देश की उच्चतम न्यायिक संस्था उच्चतम न्यायालय में सीधे जा सकता है और अपने मूल अधिकार सुरक्षित करा सकता है। इस प्रकार, भारत के संविधान में मूल अधिकारों में उन्हें लागू करवाने के लिए उपचारात्मक उपाय से मूल अधिकारों की सार्थकता बढ़ी है। कह सकते हैं कि—'देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने इस उपचार के माध्यम से मूल अधिकारों को मानव के हित में निर्वचन करते हुए विधि के समक्ष समानता एवं समान संरक्षण तथा व्यक्ति के प्राण एवं देह की गरिमा जैसे महत्वपूर्ण अधिकारों को मान्यता प्रदान की है जो विधिक इतिहास में सराहनीय कदम है।

भारत के संविधान के अध्याय 3 और 4 दोनों में मानव अधिकार ही दिए गए हैं परंतु मूल अधिकार और राज्य के नीति निदेशक तत्वों में मूलभूत अंतर यह है कि नीति निर्देशक तत्वों के उल्लंघन पर नागरिक सीधे उच्चतम न्यायालय में नहीं जा सकता। भारत के संविधान में मानव अधिकारों को दो हिस्सों में बांटने के पीछे की उस समय के संविधान निर्माताओं की मंशा यही थी कि भारत देश अभी नया-नया आजाद हुआ है; उस समय देश के पास इतने वित्तीय संसाधन नहीं थे कि हर नागरिक के सभी मानव अधिकारों को संरक्षित किया जा सके। इस का यह अर्थ नहीं है कि राज्य के नीति निदेशक तत्वों का कोई महत्व नहीं है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण में मौलिक अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य के नीति निदेशक तत्व जनतांत्रिक संवैधानिक विकास के नवीनतम आधार हैं।

राज्य के नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि राज्य के शासन में इनकी मूलभूत भूमिका रहेगी। उच्चतम न्यायालय ने राज्य के नीति निदेशक तत्वों में से कई तत्वों को मूल अधिकारों की संज्ञा दे दी है। इस संदर्भ में शिक्षा के अधिकार की चर्चा करना न्यायसंगत होगा।

इस बात को उदाहरण के रूप में हम इसे यूं समझ सकते हैं कि शिक्षा का अधिकार संविधान निर्माण के समय मूल अधिकारों में न रखकर उसे राज्य के नीति निदेशक तत्वों में शामिल कर लिया गया था। शिक्षा का अधिकार राज्य के नीति निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 45 में शामिल करते हुए कहा गया था कि राज्य दस वर्षों के भीतर देश के 6 वर्ष से 14 वर्ष के बच्चों को अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा। अब उस शिक्षा संबंधी नीति निदेशक तत्व को उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकार का दर्जा दे दिया है। अब शिक्षा का अधिकार मूल अधिकार बन चुका है। इसके लिए भारत की संसद ने संविधान में संशोधन कर इसे मूल अधिकारों में अनुच्छेद 21 के रूप में शामिल कर लिया है, जिसका अर्थ यह है कि अब शिक्षा के अधिकार के उल्लंघन की स्थिति में नागरिक उच्चतम न्यायालय में सीधे याचिका फाइल कर सकते हैं और शिक्षा का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

भारत ने संविधान प्रदत्त मानव अधिकार और अधिक संरक्षित करने की दृष्टि से वर्ष 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया था। इसका गठन पेरिस सिद्धान्तों के अनुरूप है जिन्हें अक्तूबर, 1991 में पेरिस में मानव अधिकार संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए राष्ट्रीय संस्थानों पर आयोजित पहली अन्तरराष्ट्रीय कार्यशाला में अंगीकृत किया गया था तथा 20 दिसम्बर, 1993 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा संकल्प 48/134 के रूप में समर्थित किया गया। इस प्रकार जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानव अधिकारों

को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए विश्व के सभी सदस्य देशों से संघीय और राज्य स्तर पर मानव अधिकार संबंधी मानव अधिकार आयोग बनाने के लिए कहा तो वर्ष 1993 में भारत सरकार तुरंत एक अध्यादेश लेकर आई जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन कर दिया गया और तत्कालीन सेवानिवृत्त भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र को इसका अध्यक्ष बना दिया गया। वर्ष 1994 में भारत की संसद ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 पारित कर इस आयोग को वैधानिक दर्जा दे दिया। इस अधिनियम के अंतर्गत राज्य स्तर पर भी मानव अधिकार आयोगों के गठन का प्रावधान कर दिया गया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों के बेहतर संरक्षण एवं संवर्धन के लिए एक ऐसा संस्थान है जो न्यायपालिका का अनुपूरक है और देश में लोगों के मानव अधिकारों की रक्षा और समर्थन में लगा हुआ है। अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग कानून को लागू हुए लगभग 30 वर्ष हो गए हैं इस समय भारत ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के साथ-साथ 28 राज्य मानव अधिकार आयोग बने हुए है और यह आयोग अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले लाखों मामले निपटाए जा चुके हैं और हर वर्ष इन मामलों में वृद्धि होती जाती है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार अधिनियम, 1993 की कुल 43 धाराएं हैं, जिन्हें 8 अध्यायों में बांटा गया है। इस अधिनियम की धारा 2 सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस अधिनियम में प्रयुक्त मुख्य शब्दावली की परिभाषायें दी गई हैं। धारा 2 के अंतर्गत 'मानव अधिकार' शब्दावली की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि, 'मानव अधिकार से जीवन, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे मानव अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हैं या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट हैं और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।' इस अधिनियम के अनुसार मानव अधिकार का अर्थ है संविधान द्वारा गारंटीकृत या अंतरराष्ट्रीय संविधानों में शामिल है और भारत में न्यायालयों द्वारा परिवर्तनीय हैं। जीवन, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति विशेष की गरिमा संबंधी अधिकार का अर्थ है अंतर्राष्ट्रीय सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों संबंधी अंतर्राष्ट्रीय संविदा, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा, महिलाओं के प्रति होने वाले हर प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन संबंधी संविदा, बच्चों के अधिकार संबंधी संविदा और हर प्रकार के जातीय भेदभाव का उन्मूलन संबंधी संविदा। भारत सरकार ने वर्ष 1979 में सिविल और राजनीतिक अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा और आर्थिकए सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा को स्वीकार किया था। भारत सरकार ने वर्ष 1993 में महिलाओं के प्रति होने वाले हर प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन संबंधी संविदा की पुष्टि कर दी थी। अभी समय वर्ष 1991 में बच्चों के अधिकार संबंधी संविदा की पुष्टि कर दी थी। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि भारतीय संविधान उन सभी बिंदुओं को ध्यान में रखता है जिनका उल्लेख इन संविदाओं में किया गया है। सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों संबंधी अंतर्राष्ट्रीय संविदा और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय संविदा में उल्लिखित कई अधिकार भारत के नागरिकों को उसी समय उपलब्ध हो गए थे जब भारत स्वतंत्र हुआ था, क्योंकि ये सभी अधिकार प्रमुख रूप से भारत के संविधान के भाग 3 और भाग 4 में मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत के तहत दिए गए हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन का प्रावधान इस कानून की धारा 3 के अंतर्गत किया गया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एक 5 सदस्यीय निकाय था अब यह छह सदस्यीय निकाय बन गया है। आयोग के अध्यक्ष के पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा हो या न्यायाधीश रहा हो। वर्ष 2019 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 में संशोधन करने से अब भारत के मुख्य न्यायाधीश के अलावा उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश भी आयोग का अध्यक्ष बनाया जा सकता है। आयोग का एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होता है जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रहा हो। एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होता है जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा

हो। शेष 2 सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाते थे जो मानव अधिकार विषय के विशेषज्ञ हूँ अथवा उन्हें ऐसे मामले में कार्य करने का अनुभव प्राप्त हो। यहां यह ध्यातव्य है कि अब वर्ष 2019 के संशोधन के साथ इन दो सदस्यों की संख्या बढ़कर तीन हो गई है और इन तीन सदस्यों में से एक सदस्य अनिवार्यतः एक महिला होगी। इस संशोधन के माध्यम से अनिवार्यतः महिला सदस्य को शामिल करने से महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में एक अच्छा कदम माना जा सकता है। इन छः सदस्यों के अतिरिक्त अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष भी राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के सदस्य माने जाएंगे। यहां यह भी ध्यातव्य है कि अब इन सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई है, क्योंकि अब पिछड़ा आयोग के अध्यक्ष, बाल अधिकार आयोग के अध्यक्ष तथा दिव्यांग आयोग के मुख्यायुक्त भी सद्स्य मानें जायेंगे।

आयोग के सदस्यों की नियुक्ति एवं कार्यकाल

आयोग के सदस्यों की नियुक्ति एक समिति की सिफारिश के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इस चयन समिति का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है और उसके सदस्य लोकसभा अध्यक्ष, भारत सरकार के गृह मंत्रालय का प्रभारी मंत्री, लोकसभा में विपक्ष का नेता, राज्यसभा में विपक्ष का नेता तथा राज्यसभा का उपसभापति होता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का मुख्यालय दिल्ली में है और इस आयोग को प्रत्येक वर्ष के वार्षिक प्रतिवेदन अथवा विशेष प्रतिवेदन केंद्र सरकार की प्रस्तुत करने होते हैं और केंद्र सरकार इन प्रतिवेदनों को संसद में प्रस्तुत करती है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के सदस्यों का कार्यकाल पहले पांच वर्ष तक या सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इन में से जो भी पहले हो, तक का होता था परंतु अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम में 2019 में संशोधन कर इस कार्यकाल की अवधि तीन वर्ष कर दी गई है और इन सदस्यों की पुनः नियुक्ति भी की जा सकती है। शर्त यह है कि उनकी आयु सत्तर वर्ष से कम हो। आयोग के अध्यक्ष के बीमार होने अथवा अन्य किसी कारण के अनुपस्थित होने की स्थिति में सबसे वरिष्ठ सदस्य अध्यक्ष के कार्य संपन्न करता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के कार्य और शक्तियां–

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को धारा 12 के अंतर्गत मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए जो कार्य करने होते हैं उसके बारे में उसे निम्न शक्तियां प्रदान की गई हैं, वह हैं–

1. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा या किसी न्यायालय के निर्देश अथवा आदेश पर उसके समक्ष प्रस्तुत अर्जी पर कार्यवाही करेगा। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी के मानव अधिकार का उल्लंघन या दुष्प्रेषण होता है तो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को अपने आंख-कान खुले रखने होंगे। यह नहीं कि उसकी कोई शिकायत उसके पास आए तो वह तभी कार्रवाई करेगा। वह प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर कड़ी नजर रखेगा और यदि किसी के मानव अधिकार के उल्लंघन अथवा उसका दुष्प्रेषण का पता चलता है तो वह उसकी स्वप्रेरणा से उसकी जांच कर उस पर कार्रवाई करेगा।

2. मानव अधिकार उल्लंघन अथवा उसका दुष्प्रेषण के बारे में किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी और व्यक्ति द्वारा अर्जी दी जाती है तो आयोग उसकी जांच कर उस पर कार्रवाई करेगा।

3. किसी के मानव अधिकार के उल्लंघन अथवा दुष्प्रेरण की स्थिति में यदि उसे किसी न्यायालय का निर्देश अथवा आदेश मिलता है तो वह उस मामले की जांच कर उस पर कार्रवाई करेगा।

4. यदि कोई लोक सेवक किसी व्यक्ति को मानव अधिकार दिलाने पर लापरवाही बरतता है। उस मामले में आयोग जांच कर कार्रवाई करेगा।

5. यदि किसी न्यायालय में मानव अधिकारों के हनन संबंधी आरोप का कोई मामला लंबित हो तो उस न्यायालय के अनुमोदन पर आयोग उसमें हस्तक्षेप कर सकेगा।

6. किसी राज्य की जेल अथवा किसी संस्थान में जहां लोगों को उपचार, सुधार अथवा संरक्षण प्रदान करने के लिए रखा जाता है वहां की स्थितियों का अध्ययन कर आयोग

उस संबंध में सरकार को सिफारिशें कर सकेगा।

7. भारत के संविधान के अंतर्गत प्रदत्त मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए जो रक्षो उपाय किए गये हैं, उनकी समीक्षा करना और उनके प्रभावी कार्यान्वियन के लिए सिफारिशें करना।

8. यदि किन्हीं आतंकवादी गतिविधियों से मानव अधिकारों का लाभ लेने में बाधा पहुंच रही है उस संबंध में सिफारिश करना, ताकि लोगों को निर्बाध रूप से मानव अधिकारों का लाभ मिल सके।

9. मानव अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय संधियों तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय दस्तावेजों का अध्ययन कर उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए सिफारिशें करना।

10. मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उनका संवर्धन करना।

11. मानव अधिकारों के संबंध में जागृति फैलाना यह कार्य प्रकाशनों, मीडिया, संगोष्ठियों तथा अन्य प्रकार से किया जा सकता है।

12. मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्यरत संस्थानों के प्रयासों को प्रोत्साहन देना तथा कोई अन्य उपाय जिससे मानव अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन हो सके।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1993 में वर्ष 2019 में किये गये संशोधन में एक नया प्रावधान यह कर दिया गया है कि राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली क्षेत्र के मानव अधिकार संबंधी मामले अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग देखेगा। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग यद्यपि मानव अधिकार के अनेक विषयों पर सुनवाई करता है परंतु वास्तव में यह कार्यवाही करने की सिफारिश कर सकता है पर दंड देने का अधिकार इसे नहीं है, तभी तो राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष रहे न्यायमूर्ति एच.एल.दत्तू ने इस आयोग को दन्तविहीन बाघ कहा था। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर-1960 के अंतर्गत वे सभी शक्तियां प्राप्त हैं जो सिविल न्यायालयों को किसी वाद के विचारण के समय मिलती हैं। विशेष रूप से गवाहों की उपस्थिति हेतु समन करने तथा हाजिर करने आदि के लिए जरूरी होती हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पास ज्यादातर शिकायतें हिरासती हिंसा, यातना, फर्जी मुठभेड़, पुलिस की बर्बरता, सुरक्षा बलों द्वारा किए गए अत्याचार, महिलाओं, बच्चों और कमजोर वर्गों पर अत्याचार, संप्रदायिक हिंसा, बंधुवा मजदूरी, प्रवासी मजदूरों की समस्याओं आदि घटनाओं पर आती हैं। आयोग प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की रिपोर्ट आदि का संज्ञान लेकर जांच कर उस पर कार्यवाही कर सकता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के संचालन को सुगम बनाने के लिए इसे पांच प्रभागों में बांट दिया गया है यथाः— विधि प्रभाग, अन्वेषण प्रभाग

नीति अनुसंधान, परियोजना एवं कार्यक्रम

प्रशिक्षण प्रभाग, प्रशासनिक प्रभाग

विधि प्रभाग के अंतर्गत मानव अधिकार मामलों संबंधी शिकायतें इसी प्रभाग में प्राप्त होती हैं, इसलिए यह आयोग की रजिस्ट्री के रूप में कार्य करता है। यहां सभी शिकायतें प्राप्त कर उनकी जांच कर उन्हें आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। विधि प्रभाग का प्रमुख रजिस्ट्रार होता है।

अन्वेषण प्रभाग सभी प्रकार की प्राप्त शिकायतों का अन्वेषण करता है। अन्वेषण प्रभाग का प्रमुख महानिदेशक, (पुलिस) होता है, जिसकी सहायता के लिए एक उप महा अन्वेषक, चार पुलिस वरिष्ठ अधीक्षक होते हैं। यह प्रभाग विश्लेषणात्मक एवं बहुआयामी कार्य करता है। शेष प्रभाग मानव अधिकार विषयों पर अनुसंधान का कार्य करता है तथा आयोग मानव अधिकारों के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिये संगोष्ठियों, सम्मलेन, शिवरों आदि का आयोजन करता है और प्रशिक्षण का कार्य भी करता है।

राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन करता है तो राज्य स्तर पर राज्य मानव अधिकार आयोग बने हुए हैं। इस समय देश में 26 राज्य मानव अधिकार आयोग सक्रिय हैं। राज्य मानव अधिकार आयोग भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची में राज्य सूची और समवर्ती सूची में शामिल विषयों संबंधी मामलों पर कार्रवाई करता है। राज्य में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह से राज्यों में नामित सेशन न्यायालय मानव अधिकार के मामलों पर सुनवाई करते हैं।

आशीष दशोत्तर की ग़ज़लें

ग़ज़ल

कहां ठहरे हुए पानी से खुश्बू आएगी आखिर
रवानी ज़िन्दगी में इक नदी ही लाएगी आखिर।
जहां दिन के उजाले में हज़ारों चोंट लगती हों
वहां की रात फिर कैसे किसी को भाएगी आखिर।
अभी है साथ में ये वक़्त लेकिन कल नहीं होगा
यहां ज़ालिम तेरी ज़िद कब तलक चल पाएगी आखिर।
अगर संभला नहीं तो एक दिन तू गिर ही जाएगा
तेरे हक़ में दुआ मेरी कहां तक जाएगी आखिर।
किसी मग़रूर से उम्मीद कोई कर नहीं सकते
समुन्दर में कहां कश्ती खड़ी रह पाएगी आखिर।
अभी है बेबसी, मातम है, पीड़ा-दर्द भी लेकिन
किसी दिन ज़िन्दगी खुद ही यहां मुस्काएगी आखिर।
संभलना ही पड़ेगा खुद यहां अब नर्म शाखों को
हवा का काम है आशीष वो बहकाएगी आखिर।

ग़ज़ल

दिल को दिल से सभी के छुआ है
फ़ासला फिर भी थोड़ा रखा है।
नेक़ राहों पे जब से चला हूँ
साथ में बस तुम्हारी दुआ है।
देख मुझसे निभाना पड़ेगा
दर्द हूँ मैं, अगर तू दवा है।
चोट दिल पे लगी है कुछ ऐसी
हाले दिल आंसुओं से लिखा है।
छोड़िए, बेवफ़ा है ज़माना
आपका ही हमें आसरा है।
सर झुकाया उसी के ही आगे
जिसके आगे ज़माना झुका है।
आप आशीष मेरे लिए हैं
आपका नाम दिल पे लिखा है।

ग़ज़ल

क़लम हाथों में थामा है अभी लिखना नहीं आया
मुकम्मल बात कोई आज भी कहना नहीं आया।
सदा राहों की ठोकर से यही अहसास होता है
अभी तक ठीक से हमको यहां चलना नहीं आया।
अकेला ही खड़ा रह जाएगा दुनिया के मेले में
बदलते दौर में तुझको अगर ढलना नहीं आया।
चले हैं थामकर उंगली सदाक़त की यहां जो भी
उन्हें तो झूठ के आगे कभी झुकना नहीं आया।
अना में क़ैद हो कर ही रहे जो लोग दुनिया में
कभी खुल के न वे रोए, कभी हंसना नहीं आया।
किसी के वास्ते खुद को मिटाना है अजब यारों
हमें आशीष दीपक-सा मगर जलना नहीं आया।

ग़ज़ल

बड़ा कमज़र्फ है, चालाक है, मग़रूर है शायद
तभी तो वो ज़माने में बहुत मशहूर है शायद।
यहां तो पैर के छाले भी हम पर तंज़ करते हैं
अभी लगता है मंज़िल और हमसे दूर है शायद।
इसे तीमारदारी से न कोई ठीक कर पाया
ये तेरा ज़ख़्म थोड़ी है, कोई नासूर है शायद।
मज़े में झूठ है लेकिन पड़ा है सच सलाखों में
तेरी दुनिया का तो लगता है यही दस्तूर है शायद।
सभी को दर्द सहने की वही जो सीख देता था
अभी वो ही मसीहा खुद नशे में चूर है शायद।
ज़माने को खुशी बांटी है जिसने दोनों हाथों से
मुक़द्दर में उसी अबला के इक तंदूर है शायद।
नज़र वालों की नज़रों में ये दुनिया खूबसूरत है
मगर आशीष अंधों के लिए बेनूर है शायद।

कल्याणमय आनंद की कविताएँ

फिर भी वह खिलखिलाता है

परास्त कर सारे प्रभंजन
भूल कंटक राह की चुभन
काम में रत हो जाता है
फिर भी वह खिलखिलाता है।

बर्फीली हवा की सिहरन
झुलसाती लू की थपेड़न
खुद-से-खुद को बचाता है
फिर भी वह खिलखिलाता है।

याद कर माँ का सजल नयन
बहन का मुरझाया आनन
सारे तंज बिसराता है
फिर भी वह खिलखिलाता है।

पढ़ने के लिए मचले मन
पर करता इच्छा का दमन
उठती टीस सहलाता है
फिर भी वह खिलखिलाता है।

क्यों है व्याकुल, शप्त बचपन
जगत का यह कैसा नियमन
युक्ति नहीं नजर आता है
फिर भी वह खिलखिलाता है।

पाता है भले कम वेतन
पर काम में लगाता लगन
नहीं एक पल गँवाता है
फिर भी वह खिलखिलाता है।

कर्तव्य को बना संबलन
श्रमगीत का करता गायन
संगत नहीं मिल पाता है
फिर भी वह खिलखिलाता है।

यदि मैं हेडमास्टर बन जाता जी *(बाल कविता)*

सोचो! जरा कितना अच्छा होता
यदि मैं हेडमास्टर बन जाता जी।
मास्टरजी की रोज क्लास लगाता
पढ़ाने के तरीके बताता जी।

डाँट-फटकार कतई नहीं भाता
दुलार से पढ़ाने को कहता जी।
अनुशासन का नहीं चलता डंडा
हँसी-खुशी का माहौल रहता जी।

शरारत करना बच्चों का हक है
इसे सबसे पहले मनवाता जी।
जब हो जाते बच्चे ज्यादा बोर
मस्ती की पीरियड लगवाता जी।

बच्चा जान हमें उपदेश देते
वो सब उनसे अमल करवाता जी।
तुनकमिजाजी पर होती मनाही
पढ़ाई मनोरंजक बनाता जी।

बच्चा-बच्चा में करते हैं भेद
बोलो! उनको यह कब सुहाता जी।
बच्चा होशियार हो या कमजोर
सबको प्रगति की राह दिखाता जी।

जगदीश चन्द चौहान की कविताएँ

अपना हिन्दोस्तान

विविधताओं से भरा ऐसा
एक सतरंगी आसमान हो,
ख्वाब बुनने का सभी को
जहां मुकम्मल सामान हो।

नित नई कोंपलें फूटती रहें
ऐसा कोई सुंदर उद्यान हो,
मौज-मस्ती में सब खेलें-कूदें
ऐसा खुला कोई मैदान हो।

खिड़कियां-झरोखे खुले हों
ऐसा हवादार-सा मकान हो,
ऊंच-नीच का कोई भेद न हो
समतामूलक एक विधान हो।

नव सृजनता खूब फले-फूले
विचारों का जहां सम्मान हो,
मुश्किलें, बंदिशें न हों जहां
सबके लिए ऐसा मुकाम हो।

भय-त्रास, घुटन से मुक्त हो
ऐसे समाज का निर्माण हो,
हर रोज़ खुलकर हँस सकें
ऐसा नित नया पैग़ाम हो।

हर समस्या का जहां कोई
सौहार्दपूर्ण-सा समाधान हो,
पूरी दुनियां जहाँ में उसकी
एक अलग-सी पहचान हो।

हरेक छोटे-बड़े देशवासी को
अपने वतन पर अभिमान हो,
सुख-शांति, खुशियाँ हों जहां
ऐसा अपना हिन्दोस्तान हो।

दोस्त

चलो आज दोनों सच बोलें
दिल की सुनें दिल की बोलें,
गांठ पड़ी थी जो वर्षों पहले
आओ दोनों मिलकर खोलें।

क्या खोया बिछुड़ के हमने
कितने दर्द सहे इस सीने में,
दोस्तों से मुँह मोड़ लिया तो
फिर कहाँ मज़ा था जीने में।

शायद वक़्त ही बेवफा होगा
जो बीता यूँ कलह-लड़ाई में,
सच का सामना कर न सके
और उम्र बीत गई रुसवाई में।

जिंदगी के बचे चंद लम्हों को
चलो फिर से एक साथ जी लें,
यार अपने को गले लगा कर
फिर से दोस्ती का रस पी लें।

वैसे भी आज सच्ची दोस्ती का
जमाने में जैसे अकाल हो गया,
स्वार्थभरे युग में गर मिले कोई
वही समझो मालामाल हो गया।

ऐसे यार का रूठना अच्छा नहीं
रूठें तो मनाने में देर मत करना,
जिंदगी तो है बस चार दिनों की
इसे तक़रार में जाया मत करना।

रामस्वरूप दीक्षित की कविता

जिंदगी की शाम

कोई नहीं जानता
और जानता भी हो
तो कोई फर्क नहीं पड़ता–
कि कब और किस गली में

डूब जाए
आपके हिस्से का सूरज
कब सूख जाए
आपके भीतर की नमी

सांसों की आवाजाही के रास्ते
कब जल उठे लाल बत्ती
और उसे हरा होते हुए
न देख पाएं आप

और कम हो जाए
जनगणना विभाग की सांख्यिकी में
आबादी का एक अंक

शेषनाग को मिले
थोड़े से ही सही
पर कम हुए वजन से राहत

खाली हो जाए
बरसों बरस से
बेवजह-सा घिरा हुआ
धरती का एक कोना

घर में नकारात्मक ऊर्जा फैलाता
एक अनुपयोगी सामान
हो जाए घर से बाहर

और घर की ऊब हो कुछ कम
तो बेहतर होगा
जाने से पेशतर

पूर्वाग्रहों और कुंठाओं की
घृणा और ईर्ष्या-द्वेष की
फफूंद लगी गठरी
झूठ के झंडे
और तृष्णा की चादर
सम्मान के कटोरे
और यश की थाली

इन सबको दे दी जाए
जल समाधि

मित्रों की शुभकामनाओं
उनसे मिले प्रेम
और उनके साथ की
बेशकीमती दौलत की

करते हुए कद्र
खुशी की चादर ओढ़
सोया जाए चैन से

उनकी यादों की महक से
सराबोर
आत्मा के बगीचे की क्यारी में
चहलकदमी करते

डूबते सूरज को देखना
और मिला देना उसी में
अपने भीतर की धूप

शाम को बना लेना है
अपनी अगली
सुनहरी सुबह।

हरिहर झा की कविता

सुन्दर फूल खिले हैं

कलियों पर ही भविष्य के
सुन्दर फूल खिले हैं।

उल्टे-सीधे सवाल पर मूक बने बैठे
समझा बुद्धू, बच्चों के कान बहुत ऐंठे
ठूंठ खड़े हैं, बेबस
हाय करम झेले हैं
कलियों पर ही भविष्य के सुन्दर फूल खिले हैं।

टूट गई प्याली तो, मार बहुत खाते हैं
बंधक बने मजदूर कब रोटी पाते हैं
सोंटी खा-खा करके
जिनके हाथ छिले हैं
कलियों पर ही भविष्य के सुन्दर फूल खिले हैं।

अंकल का काम किया तो, खुशी मचलती है
पर बस्ते को खोलें तो ड्रग निकलती है
गिरे जहाँ से उठते
तो मार्ग कंटीले हैं
कलियों पर ही भविष्य के सुन्दर फूल खिले हैं।

गाते भैंसासुर में, संगीत विशारद हैं
पेड़ों के नीचे बच्चे, स्कूल नदारद है
दरी नहीं पर आँकड़ों में ऐसी मिले हैं
आँकड़ों में दरी नहीं पर ऐसी मिले हैं
कलियों पर ही भविष्य, के सुन्दर फूल खिले हैं।

दुनिया को खुश रखने, पापड़ कितने बेले
अंकलए गुरुजनो के, दुष्कर्म बड़े झेले,
दुखड़ा किसे बतायें, हमारे होंठ सिले हैं
कलियों पर ही भविष्य, के सुन्दर फूल खिले हैं

आशा निलय भदौरिया की कविता

लोहड़ी

जीवन में ढेरों खुशियाँ लेकर आया लोहड़ी का त्यौहार,
मौसम ने भी करवट ले ली,
सूरज ने बदली है चाल,
कलरव करते पंछी उड़े गगन में,
हवा सुनाती मीठी तान,
धूप हो चली तीखी-तीखी
आने को है बसंत बहार,
ठिठुर रहे थे जिस सर्दी से, अब घटेगी उसकी मार,
अपने संग ढेरों खुशियाँ लेकर आया,
जीवन में लोहड़ी का त्यौहार,
नील गगन में दौड़ लगातीं
रंग-बिरंगी उड़ी पतंगे,
लड़ती-भिड़ती आपस में फिर कट कर
धरती पर आ जातीं,
पतंग गिरे जितनी भी बार
बच्चे सब भाग रहे लेने को,
अपने संग ढेरों खुशियाँ लेकर आया,
जीवन में लोहड़ी का त्यौहार,
बच्चे बना-बना कर टोली,
हर घर जाकर माँगे सबसे,
दे नी माएं लोहड़ी,
तेरे द्वारे आई बच्चों की टोली,
दे रहे रेवड़ी, मूंगफली
सुन सब उनकी मीठी बोली,
अब सब मिलकर जश्न मनाएंगे,
अपने संग ढेरों खुशियाँ लेकर आया,
जीवन में लोहड़ी का त्यौहार।

केशव दिव्य की कविता

पड़ने लगे पत्थर

काँच के सपनों पर
फिर पड़ने लगे पत्थर।

जो जागे थे भाग
अपने फिर फूट रहे,
अपनों से ही अधिक
हैं हम आज लूट रहे।

समझा संतरी जिसे
हुआ वही हमलावर।

जाने कितने रंगों में
देखे थे सपने,
पर, झूठ, लूट, फूट ने
न होने दिए अपने।

क्या मालूम चलेगा
हम पर उल्टे उस्तर।

हमने खिलाया था
आरजुओं के गुलिस्तां,
भरने लगा उसी में
आज जहरीला धुआँ।

ज़ख्म जो भरे नहीं
फिर उस पर चले नश्तर।

सुभाष नीरव भदौरिया की कविता

उजाले

थक जाता है जब सूर्य
और उजालों के पंछी हाँफने लगते हैं
तब शुरू होती है अँधेरों की यात्रा

ज़रूरत पड़ने पर
बना लेते हैं हम
अपने-अपने उजाले
और
अँधेरों की मनमानी का
देते हैं
मुँह तोड़ जवाब

कुछ लोग हैं जो
उजालों पर
अँधेरों का साम्राज्य
स्थापित करना चाहते हैं
पर, वे भूल जाते हैं
कि अँधेरों की कोख से ही
फूटा करती है
उजालों की दुनिया।

नितीन उपाध्ये की कविताएँ

1. मन

मौन का क्रंदन भी है, प्रभु चरणों में वंदन भी है
कालिमा भी है कलुष की, प्रेम का चंदन भी है

मन था मेरा कोरी पाटी, ना था कुछ इस पे लिखा
जैसा भी जो था यहाँ पर मैं उसे वैसा दिखा

मन असीम आकाश है ये मन मेरा कण कण भी है
मौन का क्रंदन भी है, प्रभु चरणों में वंदन भी है

गहरे सागर सा कहीं, उथला कही है ताल सा
है कभी गज की गति तो मस्त हिरनी चाल सा

तेज़ है गंगधार, गंगाधर का ये बंधन भी है
मौन का क्रंदन भी है, प्रभु चरणों में वंदन भी है

यह स्वयं पीड़ा भी है, पीड़ा का ये मरहम भी है
शुष्क रेतीले मरुस्थल में आब-ए-जमजम भी है

वज्र सा ये है कड़ा, नगीनों जड़ा कुंदन भी है
मौन का क्रंदन भी है, प्रभु चरणों में वंदन भी है

2. चाँद से कहा मैंने

नज़र झुका के चलो चाँद से कहा मैंने
आज बरसों के बाद मेरा चाँद आया है
तुम्हें जमीं पे मिलेंगे मेरे दिल के टुकड़े
जहाँ कदम थे उसके मैंने दिल बिछाया है

रातरानी की महकती हुई जुल्फों की तरह
चाँद की बाहें मेरे कांधे पे ढलकती है
चमकती झील पे कमल की अधखुली पलकें
चाँद की आँखे बनके ज़ाम सा छलकती है

उसके शफ़्फ़ाक़ आसमानी से चेहरे पे
चाँद को मैंने एक टीके सा सजाया है
नज़र झुका के चलो चाँद से कहा मैंने
आज बरसों के बाद मेरा चाँद आया है

घुली हुई है चांदनी जो उसकी साँसों में
मेरे तन मन को आके हौले से सहलाती है
चाँद के तन से जो लिपटी है ओस की बूंदें
वहीं अमृत की बूंद आज तो कहलाती है

अपने हाथों में ले के चाँद की हथेली को
मैंने ख्वाबों में छोटे चाँद को उगाया है
नज़र झुका के चलो चाँद से कहा मैंने
आज बरसों के बाद मेरा चाँद आया है

ममता त्यागी की कविताएँ

प्रवासी पंछी

मैं तो एक प्रवासी पंछी हूँ
दाने की तलाश में
परिवर्तन की आस में
उड़ कर सात समंदर पार
आना तो हो गया
पर अपनी धरती की हवाओं की लहक
अपने साथी पंछियों की चहक
अपनी मिट्टी की सोंधी सी महक
अमराइयों में कोयल की कुहुक
और सावन के झूलों की पींगें
ये सब आज भी
मेरे दरवाज़े पर दस्तक सी देती हैं
वतन की याद आते ही
मन में कसक-सी होती है
अपनों से मिलने की आस जगाती है!

सन्नाटे का बोझ

मन पर सन्नाटे का
बड़ा गहरा बोझ हो गया है
गतिमान जीवन भी
जैसे चलते-चलते ऊब गया है
इस सन्नाटे को ढोते हुए
मैं थक गयी हूँ
स्वयं को खोजते हुए
मैं बिखर गयी हूँ
अपने ही अस्तित्व को
तलाशते हुए
जैसे कहीं खो गयी हूँ
मेरी पलकों पर
अश्कों ने डेरा डाल लिया है
मेरे मन में
अंधेरे ने घर बना लिया है
मैं रोशनी की तलाश में
भटक रही हूँ
आइने में अपना ही अक्स
तलाश रही हूँ
जिसे सीप में
मोती की तरह छिपा रखा था
वह अश्कों के साथ
कहीं बह ना जाए
इसलिए अपने खारे समंदर को
बाहर छलकने से रोक रही हूँ।

डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ

तिरंगे को नमन

अक्षुण्ण, अजर, अक्षर प्रतीक
यह राष्ट्र गर्व, नभ में उन्नत।
गणतंत्र, राष्ट्र का भाल तिलक,
यह सार्वभौम्यता का आगत॥

संग्राम और बलिदानों की
भू पर उगता ज्यों सूर्य प्रखर।
यह शत्रु हृदय का स्तम्भन कर
नभ में लहराता फहर फहर॥

यह तीन रंगों का प्यारा ध्वज
केसरिया, हरित, श्वेत संज्ञक।
भू, सत्य, त्यागि का मूर्त रूप
भारत संस्कृति का संवाहक॥

यह चक्र चिन्ह से शुभ सज्जित,
गतिशील देश का सौम्य सृजक।
ऐतिहासिक शिलालेख उद्धृत,
यह कला प्रवणता का द्योतक॥

चौबीस तीलियाँ चक्र निहित,
चौबीसो पल गतिशील देश।
प्रति पल परिवर्तन से विकसित
उन्नत भारत का नवल वेश॥

संदेश एकता का देता,
विविधतापूर्ण भारत भू पर।
सब धर्मों और जातियों को
देता समानता का अवसर॥

है संविधान का वाहक ध्वज,
वसुधैव कुटुंब का संरक्षण।
यह पंचशील के तत्वों का
उद्‌बोध कराता है क्षण-क्षण॥

यह हीर जयंती लाई पल
हम राष्ट्रध्वज को नमन करें।
और राष्ट्रगान का नाद स्वर से
मान सहित संज्ञायन करें॥

हम शपथ धरें सम्मान
तिरंगे का न कभी घटने देंगे।
हम शपथ धरें भारत का
शीश कदापि नहीं झुकने देंगे॥

2. ये मेरा देश है

ये जो स्वर्ण किरणों से
सजा परिवेश है।
यह शस्य श्यामला धरती
का जो वेश है।
ये भारत माता का वरदान
विशेष है।
ये मेरा देश है॥

ये अखंड राष्ट्र,
अखंड रूप विशिष्ट है।
ये सनातनी संस्कृति का
मूल और इष्ट है।
ये जो सभ्य संस्कृति का
जग में विनिवेश है।
ये मेरा देश है॥

ये धरा है वेदों, उपनिषदों
औ' पुराणों की।
ये धरा है त्याग, तपस्या की,
बलिदानों की।
वसुधैव कुटुंब का
जग को नव संदेश है।
ये मेरा देश है॥

यहाँ जन-गण-मन का
सदैव एक विचार है।
यहाँ धरतीए वृक्षों, नदियों
से भी प्यार है॥
ये सरस्वती, लक्ष्मी,
दुर्गा का देश है
ये मेरा देश है॥

यहाँ नानक और कबीर
के मीठे बोल हैं।
मीरा की भक्ति
और तुलसी के डोल हैं॥
भग्वद्गीता का
सार भरा उपदेश है॥
ये मेरा देश है॥

यहाँ हिन्दू-मुस्लिम
सिख-ईसाई समान हैं।
सब देश की ख़ातिर
देनेवाले जान हैं॥
एकता भाईचारा
जिनका संदेश है
ये मेरा देश है ॥

3. नारी अब अबला नहीं

नारी अब अबला नहीं,
वह शक्ति अवतार।
धीरे-धीरे हो रही
अब पूरी तैयार॥

दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती
नारी के अवतार।
रूप धर रही नारी अब
अनगिनत प्रकार॥

गृहस्वामिनी हमेशा से
अब वह योजनाकार।
अंतरि़क्ष तक नारी के
पंखों का विस्तार॥

आईएएस से आईपीएस
या करती व्यापार।
बलशाली बन उभर रही
अब वह विविध प्रकार॥

शिक्षा-दीक्षा में सजग
सब विषयों में हाथ।
नर के जैसी बढ़ चली
अब नर के ही साथ॥

नारी शक्तिकरण की
ओर चली सरकार।
आधी आबादी के लिये
नीति का बृहद प्रसार॥

साहित्य समाचार-1

काव्य विधा सभी विधाओं में श्रेष्ठ : डॉ. संजीव कुमार

रिपोर्ट : कौसर भुट्टो

डॉ. संजीव कुमार का दुबई में सम्मान 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी दिवस' व 'प्रवासी दिवस' के अवसर पर महिला काव्य मंच', द्वारा 13 जनवरी 2023 की शाम भारतीय वाणिज्य दूतावास, दुबई में 'काव्य शक्ति' कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें दुबई साहित्य अकादमी का भी सहकार रहा। कार्यक्रम की अध्यक्षता दुबई साहित्य अकादमी एवं महिला काव्य मंच, यूएई की अध्यक्षा व विदेश सचिव (मिडिल ईस्ट), स्नेहा देव जी ने की। इस अवसर पर कार्यक्रम की मुख्य अतिथि दिल्ली से महिला काव्य मंच की राष्ट्रीय महासचिव श्रीमती रेनू हुसैन जी तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि. के चेयरमैन तथा मशहूर पत्रिका 'अनुस्वार' के संपादक डॉ संजीव कुमार जी व उनकी धर्पपत्नी मनोरमा जी तथा जयपुर से प्रसिद्ध कथाकार लक्ष्मी शर्मा भी उपस्थित रहीं।

कार्यक्रम का संचालन मकाम, दुबई की सचिव कौसर भुट्टो तथा अनु बाफना द्वारा किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षा स्नेहा देव जी ने अपने स्वागत वक्तव्य में मकाम के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी साझा करते हुए बताया कि मंच अभिव्यक्ति का एक ऐसा सुगठित मंच है जिसने हज़ारों महिलाओं के हाथ में क़लम थमा कर उनके मन को मंच प्रदान किया है। महिला काव्य मंच के संस्थापक आदरणीय नरेश गुप्ता 'नाज सर' ने वीडियो द्वारा कार्यक्रम के लिए आशीर्वाद व शुभकामनाएं प्रेषित कीं।

कार्यक्रम का शुभारंभ डॉ संजीव कुमार जी तथा अन्य मान्यवरों के द्वारा माँ वीणापाणी को माल्यार्पण तथा दीप प्रज्ज्वलित करके किया गया। इसके बाद अनु बाफना ने सरस्वती वंदना का गायन किया और भारतीय वाणिज्य दूतावास की ओर से अतिथियों को प्रतीकात्मक उपहार भेंट किए गए। प्रख्यात चित्रकार व समाज सेविका कुसुम दत्ता तथा लक्ष्मी शर्मा ने कार्यक्रम के लिए आशीर्वचन दिए। जेम्स फाउंडर विद्यालय, दुबई की छात्रा उन्नति भरत अग्रवाल ने नृत्य वंदना प्रस्तुत कर सबका मन मोह लिया।

कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि डॉ. संजीव कुमार जी को दुबई साहित्य अकादमी द्वारा "महाकवि बाल्मीकि अलंकरण" से सम्मानित किया गया। अपने वक्तव्य में उन्होंने इंडिया नेटबुक्स तथा पत्रिका 'अनुस्वार' के बारे में महत्वपूर्ण

किया गया है। इस पुस्तक में श्रीमती स्नेहा देव व यूएई के तीन अन्य रचनाकारों की रचनाएं सम्मिलित हैं।

भारतीय दूतावास से कौंसल (खाता व वितरण अधिकारी), मंजू आहूजा जी ने कार्यक्रम के लिए बधाई देते हुए अपनी रचना प्रस्तुत की। कार्यक्रम में दुबई, शारजाह तथा आबूधाबी से आए कवियों ने हिस्सा लिया। मधुलिका, शत्रुजीत सिंह, सैयद मसूद नक़वी, शिव मोहन, निशा झा, अवधेश राणा, करुणा राठौर 'टीना', कौशल अवस्थी, वरिंदर पाल 'बबली', केतकी रैना, नितिन उपाध्ये, कमला प्रकाश 'जॉली', रोहन गोलवलकर, देवयानी श्रानी, अनु बाफना, डॉ. संजीव कुमार, स्नेहा देव समेत 18 कवियों ने मनमोहक काव्य पाठ कर के इस शाम को सार्थक बनाया। सभी कवियों को भारतीय दूतावास की ओर से प्रशस्ति पत्र व अजमल परफ्यूम्स तथा हिमालया समूह की ओर से उपहार भेंट किए गए।

मशहूर पत्रिका 'अनुस्वार' की ओर से नितिन उपाध्ये, स्नेहा देवए मधुलिका, तथा कुसुम दत्ता जी को सम्मानित किया गया। डॉ. संजीव कुमार जी ने अपनी चर्चित पुस्तक 'आज की मधुशाला' भी कवियों को भेंट की।

जानकारी साझा की। उन्होंने कहा कि—काव्य विधा सबसे पुरानी एवं सर्वोत्कृष्ट विधा है, अतएव हमें कविताओं में काव्यत्व को बचाये रखना होगा, उनकी रसात्मकता को समृद्ध बनाना होगा। निपट गद्य को कविता नहीं कहा जा सकता।

कार्यक्रम में कैलिफ़ोर्निया की संस्था 'उपमा ग्लोबल' एवं भारत तथा अमेरिका की 'त्रिवेणी अंतरराष्ट्रीय संस्था' द्वारा प्रकाशित पुस्तक विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, का भी विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया। जिसमें देश प्रेम व महात्मा गांधी के विषय पर 45 से अधिक देशों के राज नायकमंत्री व साहित्यकारों की रचनाएं सम्मिलित हैं। इस पुस्तक का संपादन श्रीमती रितु प्रिया खरे व नीलू गुप्ता द्वारा

महिला काव्य मंच मिडल ईस्ट द्वारा सर्वश्रेष्ठ इकाई का खिताब बहरेन को दिया गया। कवयित्री मधुलिका को सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता, 2022 का सम्मान दिया गया।

कार्यक्रम के अंत में सबका धन्यवाद ज्ञापन किया गया। इस तरह यह ऐतिहासिक, भव्य तथा यादगार कार्यक्रम सबको सुनहरी यादें देकर संपन्न हुआ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' साहित्य भूषण पुरस्कार डॉ. संजीव कुमार को

'कविता में रस संचार जरूरी है'–डॉ. संजीव कुमार

रिपोर्ट : अर्चना दीक्षित

कानपुर की प्रसिद्ध राष्ट्रीय साहित्यिक संस्था "शब्दाक्षर" ने नए वर्ष की पूर्व संध्या पर देश के प्रख्यात चर्चित कवि डॉ. संजीव कुमार को सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' साहित्य भूषण पुरस्कार से अलंकृत किया।

साथ ही वरिष्ठ व्यंग्यकार डॉ. लालित्य ललित, शिक्षा

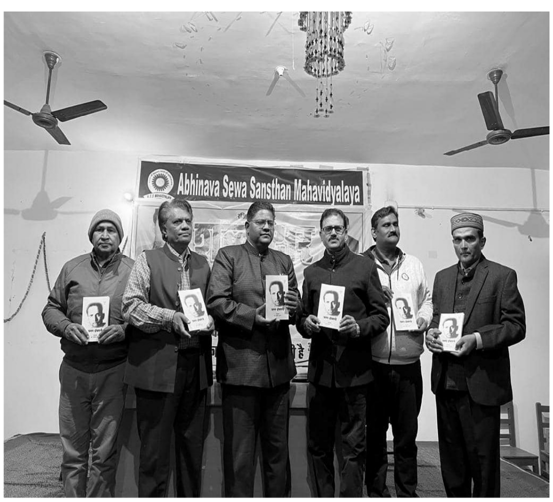

विद प्रो. राजेश कुमार तथा तीन स्थानीय विद्वानों जयराम जय अजय मदहोश और अनुराग मुकुंद का भी सम्मान किया। डॉ. लालित्य ललित को माखन लाल चतुर्वेदी सम्मान व प्रो. राजेश कुमार को महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान से अलंकृत किया गया।

इस प्रक्रिया में सभी अतिथियों को शॉल व प्रतीक चिह्न से सम्मानित किया गया।

इस मौके पर डॉ. संजीव कुमार द्वारा संपादित "अनल ग्रंथावली (दो खंडों में) जिसे इंडिया नेटबुक्स ने प्रकाशित किया है, का लोकार्पण किया गया।

डॉ. संजीव कुमार ने कहा कि यथार्थ के बोध पर कविता रसात्मक नहीं रहती। कविता में रस संचार ज़रूरी है। मन को शांति देने के मामले में छायावादी पुट समुचित होगा। कविता को कविता ही रहने दो। कुछ भी लिख देने से कविता नहीं हो जाती

इस कार्यक्रम में कानपुर शहर के गणमान्य लेखकों व बुद्धिजीवियों ने हिस्सा लिया।कार्यक्रम की अध्यक्षता की प्रो. राजेश कुमार ने। और सान्निध्य में थे श्री जहान सिंह, अर्चना दीक्षित, आलोक शुक्ला, महेश दीक्षित, नेम कुमार त्रिपाठी, आयुष शुक्ला आदि। कार्यक्रम का उम्दा संचालन किया श्री जयराम जय ने।

कार्यक्रम के द्वितीय सत्र में काव्य गोष्ठी संपन्न हुई। जिसमें सर्वश्री अजय श्रीवास्तव 'मदहोश', अनुराग सैनी 'मुकुंद', डॉ. संजीव कुमार, डॉ. लालित्य ललित, प्रो. राजेश कुमार, जयराम जय, शिप्रा श्रीवास्तव, मनीष मीत, दाग नियाज़ी, सुभाष शर्मा, देवेंद्र सफल, दिनेश नीरज, महेन्द्र कुमार विश्वकर्मा, अजय कुमार, नीरू श्रीवास्तव, मंजू अग्निहोत्री, पंकज मिश्रा आदि ने काव्यपाठ किया।

डॉ. संजीव कुमार को 'हरिवंश राय बच्चन सम्मान'

रिपोर्ट : फारूक आफरीदी

राही रैंकिंग के चयनित लेखकों की 6 पुस्तकों का लोकार्पण

जयपुर, 5 जनवरी। पं. जवाहरलाल नेहरू बाल साहित्य अकादमी के चेयरमैन और वरिष्ठ गीतकार इकराम राजस्थानी ने कहा है कि—साहित्य ही समाज और संस्कृति को जीवित रखेगा। किताबें समय की धड़कन हैं और इन्हीं में हमारी तहजीब सांस लेती है। कलम ही समाज को दिशा देती है। गुरुवार को इकराम राजस्थानी राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी और राही सहयोगी संस्थान के तत्वावधान में इंडिया नेट बुक्स द्वारा प्रकाशित 6 पुस्तकों के लोकार्पण एवं प्रतिष्ठित कवि, संपादक, विधिवेत्ता एवं प्रकाशक डॉ. संजीव कुमार को डॉ. हरिवंश राय बच्चन साहित्य सम्मान अर्पण समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में बोल रहे थे। समारोह की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार नंद भारद्वाज ने कहा कि सभ्यता और संस्कृति मानव समाज के विकास की सतत प्रक्रिया है। साहित्यकारों का काम उसमें नया जोड़ने का होता है। साहित्यकार का काम जीवन को पढ़ने और समाज की संवेदनशीलता को जीवित रखने का है। वरिष्ठ कवि डॉ. संजीव कुमार और अन्य साहित्यकार इस दिशा में सार्थक प्रयास कर रहे हैं। डॉ. संजीव कुमार ने कविता और अन्य विधाओं में 107 पुस्तकों का सृजन कर अपनी रचनाधर्मिता का दायित्व बखूबी निभाया है।

स्वागत अध्यक्ष राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक डॉ.बीएल सैनी ने कहा कि—अकादमी प्रदेश के प्रबुद्ध साहित्यकारों और लेखकों की उत्कृष्ट-ज्ञानवर्धक एवं अकादमिक पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन से नई पीढ़ी के संवर्धन का काम कर रही है। हमारे प्रकाशन करोड़ों विद्यार्थियों तक पहुंचकर उनके जीवन निर्माण में योगदान कर रहे हैं।

डॉ. हरिवंश राय साहित्य सम्मान ग्रहण के बाद यशस्वी साहित्यकार डॉ। संजीव कुमार ने कहा कि वह देश भर में ही नहीं विदेशों में भी इंडिया नेटबुक्स की शाखाओं के माध्यम से स्वदेशी एवं प्रवासी भारतीय लेखकों के हिंदी के उत्कृष्ट साहित्य को प्रकाश में लाने और उच्च कोटि के साहित्य के लिए विभिन्न पुरस्कार प्रदान करने में अग्रणी है। उन्होंने कहा कि उच्च कोटि का साहित्य सृजन ही समाज में बदलाव ला सकता है। इससे पूर्व डॉ संजीव कुमार को उनके साहित्यिक योगदान के लिए राही सहयोगी संस्थान के निदेशक एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार प्रबोध कुमार गोविल और फारूक आफरीदी ने प्रशस्ति-पत्र, इकराम राजस्थानी ने शॉल ओढ़ाकर और लोकेश कुमार साहिल ने पुष्पगुच्छ अर्पित कर उनका अभिनंदन किया।

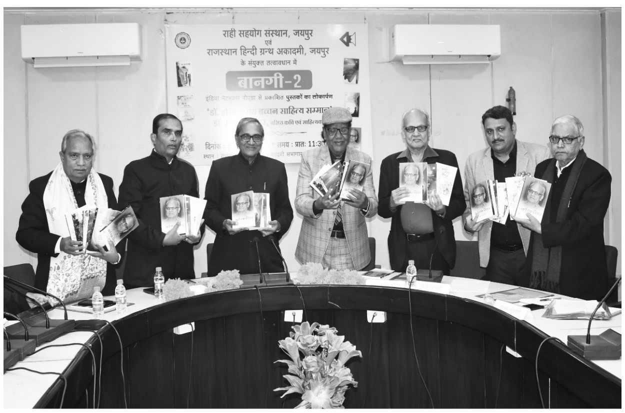

प्रबोध कुमार गोविल और डॉ. जयश्री शर्मा ने राही रैंकिंग के बारे में विचार व्यक्त किए और डॉ. नीलिमा टिक्कू ने रैंकिंग में प्रथम स्थान पर रहने वाली देश की जानी-मानी कथाकार चित्रा मुद्‌गल के साहित्यिक सफर की विस्तार से चर्चा की। इस अवसर पर लघुकथा संपादन के लिए डॉ. राजकुमार घोटड़ को स्मृति चिह्न भेंट किया गया। कार्यक्रम का सफल संचालन युवा कवयित्री रेनु शब्द मुखर और व्यंग्यकार प्रभात गोस्वामी ने किया।

साहित्य समाचार-4

'व्यंग्य यात्रा धर्मवीर भारती स्मृति सम्मान'
भारती जी से सीखा पत्रकारिता का अक्षर ज्ञान : विश्वनाथ सचदेव

'धर्मवीर भारती हिंदी साहित्य और पत्रकारिता का वह इतिहास हैं जिनके बगैर बहुत कुछ आधा, अधूरा रहेगा। मुझ जैसे तमाम अहिंदी भाषियों ने 'धर्मयुग' पढ़कर ही हिंदी का ज्ञान अर्जित किया। उससे मैं तो कभी उद्धण हो ही नहीं सकती। उस महान व्यक्तित्व को उनके जन्मदिन पर समारोह पूर्वक याद करना हमारे लिए गर्व की बात है।' यह विचार मणि भवन की अध्यक्ष व प्रख्यात गांधीवादी डॉ. उषा ठक्कर ने हिंदुस्तानी प्रचार सभा के सभागार में 'व्यंग्य यात्रा धार्मवीर भारती स्मृति सम्मान 2022' के सम्मान समारोह में व्क किये। वे समारोह की मुख्य अतिथि थीं।

राजस्थान से अपनी पत्रकारिता का आरम्भ करने वाले श्री विश्वनाथ सचदेव ने 'व्यंग्य यात्रा धर्मवीर भारती स्मृति धर्मयुग सम्मान 2022' ग्रहण करते हुए कहा, मैंने पत्रकारिता का अक्षर ज्ञान धर्मयुग से सी है। 'धर्मयुग अनेक के लिए कार्यशाला की तरह था। आज यह सम्मान' प्राप्त कर मैं निश्चित ही सम्मानित हुआ।

'व्यंग्ययात्रा धर्मवीर भारती बैठे ठाले सम्मान' से सम्मनित आबिद सुरती ने कहा, 'ढब्बू जी' गुजराती में रिजैक्ट होने के बाद 'धर्मयुग' में हिट होने से लगा कि जैकपॉट लग गया। भारती जी ने अटल जी से कहा कि आपका परिचय मैं ढब्बू जी से करवाता हूं। मुझे बुलाया और बोले कि मिलिये ढब्बू जी से तो अटल जी बोले कि आप ही हैं जिनके कारण लोग 'धर्मयुग' को उर्दू की तरह पढ़ते हैं। ओशो भी अपने प्रवचनों में ढब्बू जी को उद्धत करते थे।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहीं पुष्पा भारती ने कहा, आप सबका इतना प्यार देकर मैं अभिभूत हूँ। भारती जी सु में, दु में बच्चन जी को खूब गुनगुनाते थे। बच्चन उनके प्रिय कवि थे। वे सहगल का गाया 'दुख के दिन बीतत नाही' को तो हर दौर में याद करते थे। उनकी पत्रकारिता को पद्मकान्त मालवीय (अभ्युदय) व इलाचंद्र जोशी (संगम) ने मजबूत आधार दिया।"

इस मौके विश्वनाथ सचदेव को 'व्यंग्य यात्रा धर्मवीर भारती स्मृति सम्मान' व आबिद सूरती को 'व्यंग्ययात्रा धर्मवीर भारती बैठे ठाले सम्मान' प्रदान किये गए। इस सम्मान में 31 हजार की राशि, शील्ड, शॉल, मोतियों की माला व श्रीफल प्रदान किया गया।

प्रेम जनमेजय ने सम्मान की परिकल्पना और 'धर्मवीर भारती: धर्मयुग के झरोखे' के सम्पादन को लेकर कहा, "आज भारती जी के जन्मदिन पर हम

धर्मयुगीन इतिहास को याद कर रहे हैं। धर्मवीर भारती के धर्मयुगीन समय ने एक इतिहास रचा है इस कालखंड को जितना रेखांकित किया

जाए कम ही है। उनके धर्मयुगीन समय को देखते हुए, पुष्पा भारती के मार्गदर्शन में, एक सम्मान साहित्यिक पत्रकारिता पर और दूसरा 'बैठे ठाले' के माध्यम से हिंदी व्यंग्य को साहित्य की पंगत में बैठाने वाले रूप को देखकर, आरम्भ करने की योजना बनी।"

हरीश पाठक ने कहा, "भारती जी का लिखा अक्षर अक्षर इतिहास में दर्ज है। उन्होंने जो लिखा वह सब इतिहास में दर्ज है। उनके साथ सह-संपादक के रूप में काम करने का मुझे गौरव प्राप्त है।"

आरम्भ में अपने स्वागत भाषण में संजीव निगम ने कहा कि जैसे ही उन्हें इस आयोजन को 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा के सहयोग से आयोजन करने का प्रस्ताव मिला, हाँ कर दी।

इस मौके पर प्रलेक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'धर्मवीर भारती: धर्मयुग के झरोखे से' का लोकार्पण किया गया और प्रलेक के जितेंद्र पात्रो ने इस पुस्तक की रचना प्रक्रिया पर अपने विचार व्यक्त किये। 'व्यंग्य यात्रा' के ताजे अंक का लोकार्पण भी किया गया।

कार्यक्रम का संचालन सुभाष काबरा, आभार आशा कुंद्रा ने व्यक्त किया। सभागार में कथाकार सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा, कमलेश बक्शी, मनमोहन सरल, रश्मि रवीजा, ओमा शर्मा, रमेश यादव, प्रताप संसारी, विनोद खत्री, सविता मनचन्दा, राज हीरामन, निर्मला दोज़ी, अशोक बिंदल, विमल मिश्र, असीमा भट्ट, शैलेन्द्र गौड़, गंगाशरण सिंह, चित्रा देसाई, वंदना शर्मा, देवमणि पांडेय, भारती सिंह, मधु शुक्ला आदि तमाम रचनाकार मौजूद थे।

-हरीश पाठक

पुस्तक समीक्षा-1

अजब शैली की ग़ज़ब कहानियाँ

समीक्षक : जगदीश शर्मा

सुदर्शन वशिष्ठ का ताज़ा कहानी संकलन ''कस्तूरी मृग'' कई दृष्टियों से ध्यान आकर्षित करता है।

संकलन में भूमिका (जो कथा की कथा कहती है) को 'अभी दें तो छोड़ दें तो' संकलन में कुल सोलह कहानियां संकलित हैं। ये कहानियां वागर्थ, हंस, कथादेश, समहुत, विपाशा, अक्षरा, पाखी, गगनांचल, समकालीन भारतीय साहित्य, अनुस्वार, वनमाली कथा आदि के ताज़ा अंकों में छपी हैं। पाखी के देश विशेषांक(जनवरी-फरवरी 2021) में ''मंच पर सन्नाटा'' कहानी को सभी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ रचना घोषित किया गया।

वशिष्ठ के कहानी कर्म से बहुत सालों से जुड़ा रहा हूँ। जब इनकी कहानियां 'धर्मयुग' में लगातार आती थीं, तो वह अंक अवश्य खरीद कर पढ़ता। कहानियां तो ये सत्तर के दशक से पहले से लिखते आ रहे हैं, मगर सन् अस्सी का वह समय था जब पाठक इनकी कहानियों की प्रतीक्षा करते थे। अगस्त 1969 में छपी पहली कहानी ''बिकने से पहले'' से लेकर वनमाली कथा के जून 2022 अंक में छपी ''येति" तक इनकी कथायात्रा एक बहुत लम्बे काल को समेटे हुए है जिस में कथाकार ने एक निरंतरता बनाए रखी और इसी निरंतरता ने इनके कथाकार को जिंदा तो रखा ही, और सशक्त बनाया।

''कस्तूरी मृग'' शीर्षक कहानी एक अद्भुत कहानी है। इस कहानी का विशाल वितान है जो हिमाचल में बर्फ के रेगिस्तान में ब्रह्मकमल से खिले लामा वाङ्चुंग की अनोखी दास्तान बयान करने के साथ स्पिति के तिलिस्मी वातावरण का चलचित्र-सा प्रस्तुत करती हुई अपनी कस्तूरी गंध से पाठकों को सराबोर कर देती है। दलाई लामा के मुख से वैदिक ऋचाओं से निकले मंत्र तितली से उड़ते हैं। गैरिक वस्त्रधारण किए लामा, ब्रह्मचर्य का व्रत लिए भिक्षुणियां वातावरण को पवित्र बनाती हैं। उधर युवा लामा वांगचुंग दिव्य आभा से संपन्न कि ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व पर कोई भी आसक्त हो सकता है। और हुआ भी। माया फिल्म्स'ज की एंकर मंजूश्री उनकी ओर आकर्षित होती है जिससे लामा वांगचुक अपना सर्वस्व त्याग मंजूश्री की ओर खिंचे चले जाते हैं। यह आकर्षण आध्यात्मिकता से सांसारिक होकर लामाजी को अपना बसा-बसाया मठ छोड़ने पर विवश करती है। मठ उजड़ जाने पर कभी-कभार आया लामा मठ में लिखी कथा पढ़ता है, जिसमें लामा का शीलभंग होने पर राणा द्वारा अपमानित किया जाता है। कहानी को जादुई भाषा और अद्भुत विवरणों से बहुत प्रभावी बना दिया गया है जो पाठक को उसी अनोखे लोक में विचरण पर विवश करती है। कहानी में द्वंद्व, अध्यात्म, मनोविज्ञान, चिंतन आदि अनेक केन्द्रबिंदू हैं। यह भी कि ऐसी कहानी कोई दूसरा नहीं लिख सकता।

इसी बेकग्राउंड की दूसरी कहानी ''येति'' है। इस कहानी में येति के पाँव बर्फ में दिखते हैं, जिससे पर्वतीय क्षेत्र में येति के होने का पता चलता है। यह किस्सा वैसा ही है जैसे दिल्ली में मंकी मैन प्रकट हुआ था और पूरा मीडिया पागल हो गया था। बर्फ के बीच वास कर रहे लामा, कठिनाइयां झेलते हुए जीते येति बने सरकारी कर्मचारी, लामाओं के अनोखे वाद्य और अनुष्ठान सबका सुरुचिपूर्ण वर्णन किया गया है।

''माणस बीज'' कहानी बर्फ के रेगिस्तान में एक दूरस्थ और कटे हुए आदिवासियों की दास्तान यात्रा-वृत्तांत की शैली में बताती है, जहां उत्साही विदेशी महिलाएं विशुद्ध आर्य का बीज ग्रहण करने जाती हैं। कहानी सुरम्य झीलों और अद्भुत जगहों का रहस्योद्‌घाटन करती जाती है, ऐसी ऊँची जगह जहाँ गाड़ी बिना स्टार्ट किए खुद चलने लगती

है, झीलों में भावी लामा अवतार दिखते हैं।

पहाड़ की एक और कहानी ''पीला गुलाल, वसंत और पतझड़'' ऐसा दृश्य प्रस्तुत करती है जिसमें एक चट्टान पर झूले सा घर है, एक विक्षिप्त सी नायिका है, विषम परिस्थितियों को संभालने में लगा एक व्यक्ति है जो नायिका को वहाँ से निकालना चाहता है। पुरानी शोहरत खो जाने पर नायिकाओं की छटपटाहट, मन में दबा विद्रोह और दबंगपन एक अजीबोगरीब माहौल पैदा कर देता है। सशक्त भाषा शैली और प्रभावी वर्णनों से कहानी बेहद प्रभावित करने वाली बन जाती है।

अद्भुत भाषा-शिल्प और दृश्य निर्माण की एक और कहानी ''हिडिंबा केव्ज'' है। पहाड़ों के होटेल और रिजोर्ट मैदानी सेठ-साहूकारों के ऐशगाह बने हुए हैं। इस कहानी में संगीत का उपयोग कर ऐसा वातावरण तैयार किया गया है जो कहानी के अभीष्ट को प्रभावमय बनाता है। कहानी में बहुत ही सेंसेटिव दृश्य बड़ी कुशलता से प्रदर्शित किए गए हैं, जो अश्लील भी हो सकते थे।

प्रारम्भिक दो कहानियां ''गंधर्व'' और ''नारसिंघ'' अपनी कोमलकांत शब्दावली के साथ अजब विश्वासों के साथ एक चरित्र 'पहाड़िए' को जीवंत करती हैं। भाषा-शिल्प से अपना प्रभाव छोड़ती हुई ''गंधर्व'' कहानी में पर्वत की गोद में बने एक आश्रम का चित्रण किया गया है, जो चलचित्र-सा सजीव नजर आता है। कहानी में एक प्रेम सरिता धीमे-धीमे बहती है जो स्वामीजी के शील का रक्षण करती हुई शुचिता बनाए रखती है। पुरातन विश्वासों और नवीन आश्रमों के बीच एक टकराव भी चलता रहता है। पर्वत के नीचे आश्रम की स्थापना एक अनोखी दुनिया में ले जाती है और पाठक एक दूसरी जादुई दुनिया में जीने लगता है। स्वामी असीमानंद का पावन चरित्र सुकन्या की आसक्ति कथा को एक ऊंचाई प्रदान करती है।

''नारसिंघ'' इसी कथा का अगला भाग है जो कथा को और खोलता जाता है। यहां भी 'पहाड़िया' या 'गन्धर्व' ग्रामीणों के मानस-पटल पर छाया रहता है जो अदृश्य रह कर उनके जीवन को प्रभावित करता है।

''चतुर्भुज'' एक रेलवे फाटक वाले से अकांउट ऑफिसर बनने वाले संघर्ष शील व्यक्ति की दास्तान है जिसे दो ब्याह करने के बाद भी प्रेम का अर्थ असल में प्रेम करने पर ही पता चलता है। गांव से संघर्ष के बाद शहर गए व्यक्ति किस तरह मायाजाल में फंसते चले जाते हैं और अंत में गांव के निकट सम्बन्धी ही काम आते हैं।

''मंगू मदारी'' और ''हथेली में अँगारे'' दो और सशक्त कहानियाँ है जो आज की राजनैतिक उठापटक, छद्म नारेवाजी, खोखले राजतंत्र और दोगली व्यवस्था पर गहरी चोट करती हैं।

सरकार बनाने के लिए विधायकों को बसों में बिठा फाइव स्टार होटलों में कैद करना आज आम बात है। पुराने से पुराने पार्टी वफादार का भेज्जा बदल दूसरी पार्टी का बना दिया जाता है। ऐसा ही दिलचस्प खेल ''मंगू मदारी'' में दिखाया गया है, जिसमें मदारी के सांप को फाइव स्टार होटेल में छोड़ना, सिर में धूल डाल सोच बदलना आदि के प्रतीकों से आज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर गहरी चोट की गई है।

''नाखून में स्याही'' आज के खोखले पारिवारिक सम्बन्धों की कहानी है, जिसमें पिता की एफ.डी. हथियाने के लिए बेटा क्रूर हो जाता है। आत्मा को बुलाने पर आत्मा नहीं आती मगर बेटे को अंगूठे के नाखून में पिता के दिखने पर अपनी गलतियों का बोध एक निम्न जाति का व्यक्ति करवाता है।

''दान-पुन्न'' और ''पंचरत्न'' कहानियां बीमार होने पर बुजुर्गों की बेचारगी के दो पक्ष प्रस्तुत करती ह। एक ओर गांव में मृतक पिता को रात भर घर में रखने की इच्छा रहती है तो शहर में उसे 'बॉडी' कह कर मॉरचुरी में डाल अपना फर्ज पूरा किया जाता है। गांव में बिना डॉक्टर-वैध के मृत्यु के करीब जाना और शहर में मल्टी स्पैशिलिटी अस्पताल के आईसीयू में वेंटीलेटर पर जीना, समाज में आए क्रूर परिवर्तन को दिखाता है।

''हथेली में अँगारे'' के छितरू राम की गौ-सेवा भावना का मंत्री के दरबार में मजाक उड़ाया जाता है, जबकि छितरू मन से सड़क किनारे वक्त काट रही गायों की सेवा करना चाहता है जो उसके बुजुर्ग करते आए हैं। सरकार के दरबार

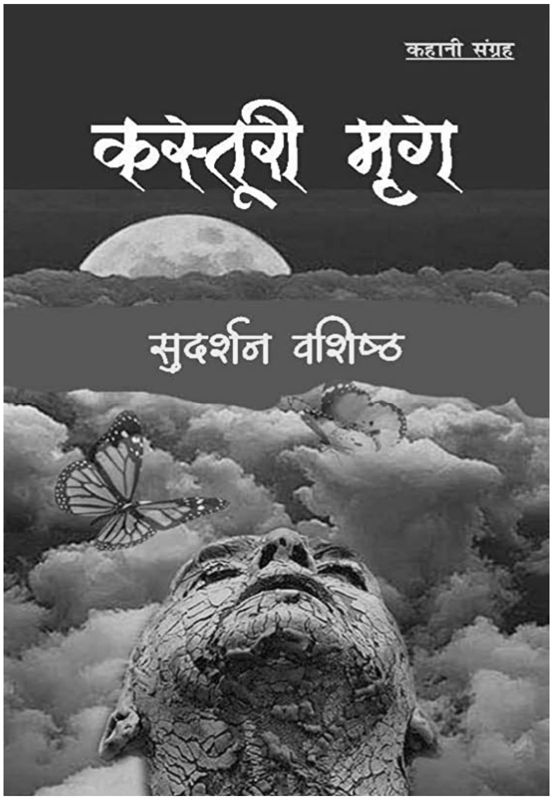

में कोई फरियाद नहीं सुनी जाती, बल्कि दरबार एक स्वागत समारोह बनकर रह जाता है। सरकार के नारों और नीतियों पर यह करारा व्यंग्य है।

अंतिम दो कहानियाँ ''मंच पर सन्नाटा'' तथा ''प्रेतमुक्ति'' क्रूर कोरोना काल पर हैं। ''मंच पर सन्नाटा'' उस काल की विद्रूपताओं को दर्शाती है। इस कहानी को 'पाखी' के जनवरी-फरवरी 2022 अंक में सभी रचनाओं में प्रथम स्थान पर रखा गया। दोनों कहानियों में उस नाजुक समय को प्रभावी भाषा व कथन से बखाना गया है।

समीक्षा में प्रायः यह कहना पड़ता है कि अमुक कहानियाँ कमजोर कहानियाँ हैं, मगर यहां यह कहने की गुंजाइश बिल्कुल नहीं रहती। सभी कहानियाँ कोई न कोई विशेषता लिए हुए हैं, जो विशिष्ट है।

संकलन की कहानियाँ अपने विविध रूपों, रचना और संरचना के कारण पाठकों को बांधे रखने के साथ अपनी बात संप्रेषित करने की पूरी क्षमता रखती हैं। ये कहानियां पहाड़ की कहानियां हैं, बर्फ की कहानियां हैं। पहाड़ एक अचम्भा या अजूबा ही नहीं है, अपने में आग भी रखता है। ये कहानियां पहाड़ के दुखों-सुखों की कहानियां हैं। आज के प्रजातंत्र और राजतंत्र की पोल खोलती कहानियां हैं।

कथ्य अद्भुत भाषा-शैली के साथ प्रस्तुत हुआ है। कुछ कथ्य ऐसे भी हैं, जिन पर कहानियां पढ़ने को नहीं मिलीं। विशेषकर पर्वतीय क्षेत्र में होने वाले कालचक्र जैसे उत्सवों, येति जैसे हिममानवों और शुद्ध आर्य बीज की इच्छा लिए यूरोपीय युवतियों का उल्लेख(जो सत्य है) चौंकाता ही नहीं, अपितु कहानियों को एकदम नवीन भावभूमि प्रदान करता है।

पुस्तक समीक्षा-2

दर्द का जीवंत दस्तावेज वर्चुअल रैली (लघुकथा संग्रह)

समीक्षक : विनोद शर्मा 'सागर'

पुस्तक : वर्चुअल रैली (लघुकथा संग्रह)

लेखक : सुरेश सौरभ

प्रकाशक : इण्डिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोएडा-201301

वर्तमान हिंदी साहित्य में लघुकथा एक चर्चित विधा है। जिसका लेखन व्यापक रूप से हो रहा है। लघुकथा उड़ती हुई तितली के परों के रंगों को देख लेने तथा उन्हें गिन लेने की यह कला जैसा है। साहित्य संवेदना, सान्त्वना, सुझाव शिक्षा एवं संदेश का सागर होता है, जिसमें समाज के एक छोटे से छोटे व्यक्ति से लेकर बड़े से बड़े व्यक्ति तक की व्यथाकथा समाहित होती है। लघुकथा में बहुत बड़ी बात या संदेश को कम शब्दों में कहने की सामर्थ्य होती है। अत्यंत प्रभावी ढंग से महत्वपूर्ण विषय व संदेश को कह पाने की क्षमता के कारण ही लघुकथा पाठकों में अपनी विशेष पहचान पकड़ व पहुँच बनाने में सफल हुई है और सभी को अत्यंत पसंद है।

विगत वर्षों कोरोना महामारी के दौरान जहाँ एक तरफ हमें अत्यधिक कष्ट व पीड़ा हुई। जिंदगी में तमाम कठिनाइयों को झेलना पड़ा। आम जिंदगी तहस-नहस हो गई। वहीं दूसरी तरफ साहित्य सृजन, आत्ममंथन तथा आत्म-विश्लेषण इत्यादि के लिए पर्याप्त अवसर भी प्राप्त हुए। इस दौरान एक तरफ पर्यावरण प्रदूषण कम हुआ तो दूसरी तरफ साहित्य समृद्ध हुआ।

चर्चित लघुकथाकार सुरेश सौरभ जी का लघुकथा संग्रह 'वर्चुअल रैली' अपने आप में अप्रतिम है, जिसमें कोरोना महामारी के दौरान हमारे समाज तथा जीवन की दशा के सजीव चित्र संग्रहित हैं। आमजन की पीड़ा व परेशानियों का मार्मिक सजीव चित्रण है। सौरभजी की लघुकथाएँ जीवन से जुड़ी तमाम विसंगतियों व विषमताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करातीं हैं। समाज के सबसे निचले पायदान पर गुजर-बसर करने वाले व्यक्ति चाहे वह अखबार वाला हो, कबाड़ी वाला हो, रिक्शावाला हो या मजदूर हो सबकी पीड़ाओं का खाका खींचती दिखाई देती हैं।

ये लघुकथाएँ सदैव यह सिखाती हैं कि मानव धर्म ही सर्वोच्च व शाश्वत है। इनकी लघुकथाओं को पढ़ना जीवन के असली रंगों से परिचित होना एवं पीड़ाओं तथा परेशानियों को करीब से पढ़ने जैसा है। इनकी कथाओं के पात्र एवं विषय हमारे आस-पास के समाज व आमजन की जिंदगी से जुड़े हुए लोग हैं। जिनमें जिंदगी की जद्दोजहद, जख्म और जरूरतें साफ देखे जा सकते हैं।

104 पृष्ठों के इस लघुकथा संग्रह में कुल 71 लघुकथाओं से गुजरने के दौरान आपको विषम परिस्थितियों में कर्तव्य बोध, साहस व समाज की सत्यता का आभास होगा। ये बेबाक लघुकथाएँ हर स्तर पर हमें प्रखरता के साथ समाज की सच्चाई, मानवता की सीख तथा परपीड़ा की पहचान कराती हैं। ये लघुकथाएँ प्रकाशकों के मनमाने रवैये पर भी तीखा प्रहार करती हैं। किन्नरों की सामाजिक अवहेलना एवं वेश्यावृत्ति की विवशता को उजागर करती हैं। सुरेश सौरभ की कलम यहीं ही नहीं रुकती है, बल्कि समाज में सोशल मीडिया की क्रूरता व निजता के वायरल होने के गंभीर मामले को भी उठाती हैं। अव्यवस्था जनित परेशानियों की प्रतिलिपि और आमजन के मन की पीड़ाओं की प्रतिनिधि हैं। वर्तमान युवा पीढ़ी के चाल-चलन, चेहरे का सही रूप भी हमें दिखाती हैं। जीवन में अपनों का साया जब हटता है तो अबोध नौनिहाल पौधों का क्या होता है, इसका सोदाहरण दृश्य देखने को इन कथाओं में मिलता है। आत्मीय संबंध की उलझन की तरंगें कभी-कभी त्वरित तनाव के साथ आए तूफान; उसके बाद सुखद सन्नाटें से

गुनगुनाती खुशी के दर्शन, मन मोह लेते हैं। रिश्तों में बढ़ती अविश्वासनीयता, पतंगों के माध्यम से धरती पर मानव मन में जाति-धर्म की झाड़ियों में फँसी मानवता व गरीबी में विवश स्त्री का दर्द और फर्जी मुठभेड़ की असलियत से रूबरू कराती हैं।

आधुनिक बेतार जिंदगी में संबंधों के धागों की मजबूती व उनकी महक व महत्व को लघुकथाएँ रेखांकित करती हैं। गरीब-बेबस विधवा तक को, जुगाड़ की बैसाखी से पहुँचती सुविधाएँ और नोटबंदी से उपजी दुश्वारियों के दृश्यए तालाबंदी से मासूम हृदय की माँग तथा गरीबों का उपहास करती योजनाओं पर तीखे व्यंग्य को उद्घाटित करती हैं। इस लघुकथा संग्रह में आमजन मन-शोषित, पीड़ित वंचित व बेसहारा की पीड़ा को जुबान तो दी ही है, साथ ही बेजुबान जानवरों की पीड़ा को भी स्वर प्रदान किया है। दहेज जैसी प्राचीन, अर्वाचीन विकराल कुप्रथा पर भी हृदयस्पर्शी प्रहार किया है। भूख-प्यास से टूटी एक बच्ची की आत्मा के शब्द लॉकडाउन में घर से दूर-दराज फँसे परिजनों की घर वापसी की गुहार को भी हमारे दिल तक पहुँचाने का प्रयास किया है, जो अव्यवस्था व भेदभाव को कोस रही है। लॉकडाउन में बंद वाहनों के साथ बंद मंदिरों व विद्यालयों से जुड़े हर व्यक्ति का ये लघुकथाएँ अनुवाद करती हैं।

लेखक ने एक तरफ गरीबी-भूखजनित अव्यवस्थाओं को सामने रखा है, तो वहीं दूसरी ओर अमीरों की विकृत मानसिकता व सोच पर भी करारा प्रहार किया है। महानायक के दर्द के जरिए समाज को यह संदेश प्रेषित किया है कि ईश्वरीय सत्ता के अतिरिक्त कोई सर्व-शक्तिमान नहीं है। कोरोना के कारण जेलों की व्यवस्था का असली दृश्य भी प्रस्तुत किया है। महामारी की मार खा, पुलिस, वकील, वेश्या, मजदूर भिखारी के साथ-साथ आम जनमानस की चीख तथा बेबसी को भी लघुकथाओं ने भाव भरे शब्द दिए हैं। इस संग्रह की अधिकाँश लघुकथाएँ देश के विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनका मूल उद्देश्य एक समतामूलक समाज की स्थापना है, जिनके नायक समाज में सबसे निम्न स्तर का जीवन यापन करने वाले लोग जैसे मजदूर, रिक्शावाला, मोची, भिखारी, पेपर वाला इत्यादि हैं।

यह सत्य है कि अंतिम पंक्ति में खड़ा व्यक्ति जब तक समाज की मुख्यधारा से जुड़ कर प्रगतिशील नहीं बनता, तब तक एक उन्नत समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। साहित्य का मुख्य मकसद सवाल खड़े करना ही नहीं, बल्कि समाधान सुझाना भी होता है। इन सबके साथ समाज में व्याप्त ढोंग, आडंबर, छुआछूत, भेदभाव, जातिवाद एवं विडंबना पर भी ये लघुकथाएँ निःसंकोच चोट करती हुई प्रतीत होती हैं। इस संग्रह में कोरोना जैसी वैश्विक महामारी में विवश मानवता, सड़कों पर असहाय रेंगते जीवन के दीन-हीन दृश्य, भूख प्यास की पराकाष्ठा आदि का जमीनी चित्रण किया गया है।

वर्चुअल रैली आमजन मन के दर्द का जीवंत दस्तावेज है। कोरोना काल में यह कर्तव्यबोध रिश्तों की विवशता, दुष्कर्म, दुर्दांतता के दर्दनाक दृश्य, ऑनलाइन शिक्षा की दुश्वारियाँ व दुविधाएँ दिखाता है। आपदा की आँड़ में हो रहे शोषण व अत्याचार व दुबक रही जिन्दगी को समेटती ये कथाएँ प्रभावी ढंग से पाठकों से जुड़ने में समर्थ हैं। तालाबंदी के दौरान भूख से तड़पते गरीबों तथा मजदूरों की पीड़ाओं का मार्मिक कोलाज सौरभ जी लघुकथाएँ प्रस्तुत करतीं हैं। इसके साथ ही परंपराओं के पराधीन धागों में बुने रिश्तों की घुटन व दुष्परिणाम का प्रभावी छायांकन भी करती हैं। एक तरफ जहाँ इस संग्रह में तालाबंदी (लॉकडाउन) के दौरान दिहाड़ी मजदूरों पर पुलिस की बर्बरता, आवागमन बंद होने से वाहनों के लिए भटकते लोग और उनके रास्ता नापते पाँवों के छालों की कराह को समेटे हुए, सार्वजनिक स्वर प्रदान कर रही हैं तो दूसरी तरफ एक शहीद की माँ के गर्वित आँसू भी छलकते हैं। महामारी के दौरान मनुष्य का बदला जीवन व दुर्गंध मारती व्यवस्था की पोल खोलती हुई ये कथाएं लघुकथा साहित्य में बेजोड़ हैं। इसलिए पाठकों के लिए यह लघुकथा संग्रह अतीत के गवाक्ष की तरह है। अतः इसे सभी को अवश्य पढ़ना चाहिए।

पुस्तक समीक्षा-3

स्त्री-विमर्श की पौराणिक गाथा 'भानुमती'

समीक्षक : मेधा झा

ऐतिहासिक नारी पात्रों का हमारे साहित्य में समग्र मूल्यांकन या पूर्ण चरित्र चित्रण नहीं किया गया है। हमेशा उन्हें सहयोगिनी के रूप में ही प्रतिष्ठा मिली। बहुत से ऐसे

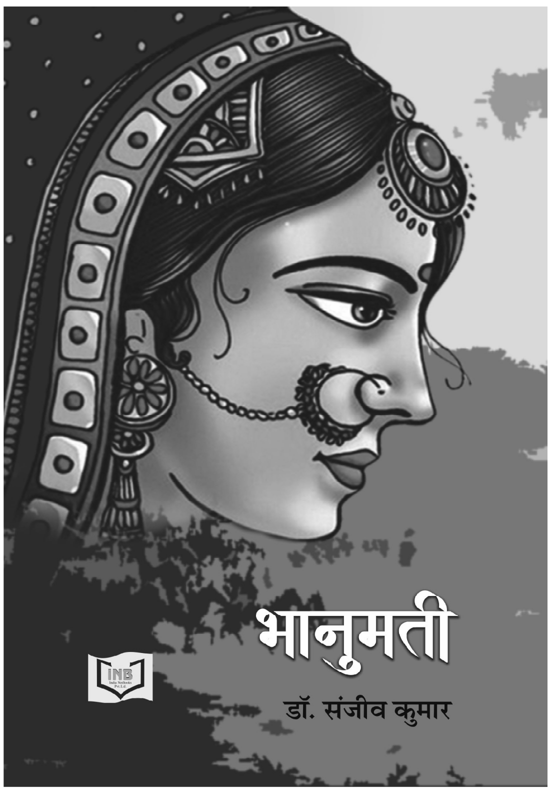

मजबूत स्त्री पात्र रहे हैं, जिन पर लोगों का ध्यान आकृष्ट कराना आवश्यक था और इस कार्य का बीड़ा उठाए दिखते हैं—डॉक्टर संजीव कुमार, जिन्होंने एक-दो नहीं, बल्कि कई ऐतिहासिक स्त्री पात्रों को अतीत के पन्नों से निकाल कर हमारे समक्ष जीवंत कर दिया।

उनके नारी पात्रों पर लेखन की श्रृंखला में 'भानुमती' पर लेखन, महाभारतकालीन सशक्त, लेकिन नायकों की भीड़ के बीच विलुप्त सी नायिका का पुनर्जन्म कराना सा प्रतीत होता है। यह खंड काव्य भूमिका से ही ध्यान खींचता है— "कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा।" लेखक इस प्रचलित लोकोक्ति को आधार बनाकर विश्लेषण प्रारंभ करते हैं कि आखिर कुनबा जोड़ने का श्रेय ऐतिहासिक ग्रंथों में भानुमती को ही क्यों अन्य भी तो पात्र थीं वहीं। यहीं से संजीव जी का स्त्री विमर्श प्रारंभ हो जाता है।

अभी भी सामान्य जन के मन में यह पूर्वाग्रह है कि जो स्त्रियां विदुषी हैं, प्रखर हैं, वाचाल हैं, बुद्धिमती हैं, वह घर को जोड़े नहीं रख सकती है। इस बात पर हथौड़े से चोट करती है संजीव कुमार जी द्वारा रचित भानुमती।

विवाह के लिए भानुमती के चयन दुर्योधन नहीं थे, उसे दुर्योधन हरण करके लाया था। यहां दिखती है एक विदुषी क्षत्राणी भानुमती, जो विवाह से पहले भी अवलोकन कर रही थी अपने आसपास की घटना का और समयानुकूल निर्णय ले रही थी। दुर्योधन से विवाह के लिए हामी भरना, उसकी कमजोरी नहीं, बल्कि व्यावहारिकता को दिखाता है। लेकिन यहां भी अपनी बात रखने से भानुमती पीछे नहीं हटती। ससुराल के अपयश के बारे में बोलने में झिझक आज भी कन्याओं में होती है, परंतु निर्भीक भानुमती दुर्योधन को उसके परिवार की त्रुटि सुनाती है—

"मैं नहीं चाहती
जीना उस परिवार में
जहां राजकुमारों में नहीं शक्ति
कि वह दे सकें
अपनी संगिनी को
माँ का पद
शीश उठाकर।"

यहां हम परिचित होते हैं अपनी प्राचीन परंपरा से, जहां

कन्याओं की इच्छा एवं स्वयंवर को पूर्ण समर्थन प्राप्त था। वहीं दिखता है शिक्षित, राजकुल की कन्या का तेजस्वी व्यक्तित्व, जो हरण होने के बावजूद पूर्ण स्वाभिमान के साथ खड़ी है।

एक-एक बढ़ते पृष्ठ के साथ भानुमती की खासियतों से हम परिचित होते जाते हैं—

"भिन्न-भिन्न खेलों में
जीतती थी सदैव ही
विलक्षण थी बुद्धि
या तीव्र थी मेधा
रानी भानुमती की।"

भानुमती की विलक्षणता का परिचय कदम-कदम पर कवि देते हैं। इनकी दैनिक क्रियाओं में चौपड़ से लेकर अस्त्र-शस्त्र अभ्यास भी शामिल थे।

"प्रातः होता था सत्र
योग क्रियाओं का
प्राणायाम और आसन भी।
फिर अस्त्र-शस्त्रों के
संचालन का अभ्यास।
तलवारबाजी और कुश्ती
ये भानुमती के पसंदीदा अभ्यास
जिनके संचालन और दक्षता का
करती थी वह प्रतिदिन प्रयास।

फिर मानसिक पोषण के लिए पढ़ना और सुनना भी उनकी नित्य क्रियाओं में शामिल था। विदुषी होने के अतिरिक्त भानुमती पर्याप्त संवेदनशील भी थी। इसलिए महल के दास-दासी की भी मात्र महारानी नहीं, बल्कि सहेली भी थी।

इस काव्य ग्रंथ को पढ़ते हुए एक अन्य बात सदैव मन में आती है कि कवि कानून के बड़े जानकर हैं और इसलिए उनके स्त्री पात्र अधिकारों से लैस नजर आते हैं और समाज के पथ प्रदर्शक बनते हैं।

प्रत्येक सर्ग स्त्री-विमर्श के नए अध्यायों को खोलता प्रतीत होता है और मार्ग दिखाता है कि वास्तव में क्या होना चाहिए। साथ ही मानवीय संवेदनाओं की झलक भी हमें मिलती रहती है।

सर्ग 6 में विवाह के पश्चात जब वह माता कुंती एवं पांडवों से मिलने जाती है, तो उसकी तीक्ष्ण दृष्टि द्वारिकाधीश कृष्ण की सूरत पर टिकती है, जिन्हें वह घूंघट के अंदर से अपलक निहारती रही और फिर उसके किशोरावस्था के आकर्षण अर्जुन को उसने देखा। अर्जुन एवं कृष्ण को समक्ष देख कर भानुमती के मन में आता है कि क्यों नहीं अर्जुन आए स्वयंवर में, अन्यथा वह उन्हीं का चयन करती। कर्ण के आकर्षक व्यक्तित्व की भी मन ही मन वह प्रशंसा करती है।

मानवीय भावनाओं की यह सहज अभिव्यक्ति-सी लगती है, जिसे लिखने में सामान्य तौर पर लेखकगण असहज होते हैं और स्वीकार तक नहीं करते कि स्त्रियां ऐसा सोच भी सकती हैं। आकर्षण मनुष्य का सहज भाव है और यह स्वाभाविक है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। लेकिन परंपरागत रूप से स्त्रियों की आदर्शवादी छवि की ऐसी रचना की गई है कि अपने सहज आकर्षण को स्त्रियाँ स्वयं स्वीकार करने ने मन में भी डरती हैं और इसे चरित्र से जोड़ देती हैं।

हमारे यहां के अर्धनारीश्वर परिकल्पना के ऊपर जब पति-परमेश्वर की अवधारणा को स्थापित किया गया तो स्वतः स्त्रियों की स्वाभाविक इच्छा को हर शास्त्र एवं लेखन में पूर्णतः नकारा गया।

भानुमती अपने पति को पूर्ण समर्पित है, हर कदम पर उसका साथ देती है, लेकिन एक सहज सामान्य मानवी भी है, जिसका अधिकार है उसके अपने मानवीय भाव। इस प्रकटीकरण को करते हुए कवि स्त्री मन के चितेरे दिखते हैं जो सहज ही आकर्षण एवं चरित्र के पचड़े में पड़े बिना स्त्री के भावों को समाज में स्थापित करने का प्रयास करते दिखते हैं।

अर्जुन एवं कृष्ण को देखने के बाद जब आह्लादित दुर्योधन को पहली बार नजर भर कर उसने देखा, तो अचानक अपने नए-नवेले पति से नेह नाता जुड़ता-सा लगा। कुछ समय पूर्व की उसकी उग्रता, दुर्योधन के प्रेम को अंगीकार कर कहीं विलुप्त हो चुकी थी।

भानुमती के साथ दुर्योधन का भी प्रेमी रूप यहां नजर

आता है, जो उसके नकारात्मक चित्रण के विपरीत दिखता है। यहां न सिर्फ उसका अपरिमित विश्वास और स्नेह दिखता है अपने मित्र के प्रति, बल्कि भानुमती को पत्नी रूप में पाकर उसका आह्लाद स्पष्ट दिखता है—

"पहली बार देखा
मन से दुर्योधन को
भानुमती ने।
भोला-सा खोया-खोया मुख
किंतु आज वह था खुश
कि चाहा था जिसे मन से
वह जुड़ गई दामन से।"

संजीव जी की भानुमती आज की अत्याधुनिका की तरह जीवन के सब रंगों का आस्वादन करती नजर आती है। राजमहल में आयोजित आयोजन में मदिरा में उन्मत्त भानुमती कृष्ण को देख कर बहकती है तो कृष्ण उसे पहुंचा आते हैं गांधारी के कक्ष में। दो उत्कृष्ट चरित्रों की झलक यहां दिखाते हैं कवि और पुनः स्थापित करते हैं दो बराबरी के लोगों के परस्पर संबंधों की गरिमा को, जहां स्त्री-पुरुष से ऊपर का मानवीय विमर्श दिखता है।

सर्ग 8 में, जब दुर्योधन एवं भानुमती की पुत्री लक्ष्मणा, वासुदेव पुत्र साम्ब के साथ घर छोड़ कर निकल जाती है, उस समय भी समस्या का समाधान भानुमती करती है। दोनों पक्षों से बात करके वह प्रेमी युगल का विवाह करवाती है। आज जब इज्जत के नाम पर ऑनर किलिंग को लोग धर्म सम्मत बताते नजर आते हैं, उस समय कवि ने ऐतिहासिक चरित्र के माध्यम से दृष्टांत दिया है कि वास्तव में ऐसे समय क्या करना चाहिए। मध्यम वर्ग वैसे भी उच्च वर्ग को कॉपी करने की कोशिश करता है। यहां लक्ष्मणा राजकन्या है।

कुरु वंश की यह रानी हमें बार-बार आश्चर्यचकित करती है। हम विस्मित होते हैं इस नई जानकारी पर कि भानुमती कुश्ती, मुक्केबाजी और गदायुद्ध में पारंगत दुर्योधन को कुश्ती की चुनौती देती है और तीन चरणों में संपन्न इस प्रतिस्पर्धा में विजयी होती है। यहां यह विचारणीय है कि कवि प्रोत्साहित कर रहे हैं स्त्रियों को शारीरिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए, शक्ति को पूर्वाग्रह से ऊपर उठने के लिए, वहीं वह पौराणिक आख्यान द्वारा इस बात पर भी जोर देते हैं कि इन खेलों में मात्र पुरुष ही नहीं, बल्कि स्त्रियां भी दक्ष हो सकती हैं।

साथ ही संजीव जी ने दुर्योधन भगिनी दुशला और भानुमती के सुंदर रिश्तों को दिखा कर ननद-भाभी के सहज सखी संबंधों को भी याद दिलाया है।

बहुधा सामान्य जन के मुख से निकलता है कि स्त्री ने महाभारत करवाया। सर्ग 9 में युद्ध की विभीषिका से बचाने को प्रार्थना करती स्त्री दिखती है। पांच गांव की कीमत पर इस नरसंहार को रोकने के लिए भानुमती हर प्रयास करती है। वह जानती है कि जीवन से मूल्यवान कुछ नहीं होता। ये राजपाट, धन से बहुत अधिक आवश्यक जीवन है।

इस महायुद्ध को रोकने के लिए दुर्योधन से अनुरोध करती है—

'कहा था मैंने
महाविनाशक होगा यह युद्ध
किंतु माने नहीं तुम।
बंद कर दो अब भी
यह महाभारत
जीवन से अधिक मूल्य
नहीं राजपाठ का।

हे दुर्योधन
पुनः कर लो विचार
बंद कर दो युद्ध
मत करवाओ
इतना संहार।'

सर्ग 10 वैवाहिक संबंध में विश्वास की भूमिका पर बात करता है। अंगराज के साथ भानुमती का सखा भाव था और विवाह पूर्व से ही भानुमती उसकी प्रशंसक भी थी, जब अंगराज ने उसके स्वयंवर में आए अन्य राजाओं को परास्त किया था। दोनों हमेशा साथ में चौपड़ खेलते थे। उस दिन भी जब दोनों तल्लीन थे चौपड़ में और तभी दुर्योधन को

आते देख कर भानुमती उठने लगी तो कर्ण ने उसे बिठाना चाहा और अचानक इसी क्रम में तभी भानुमती की मोतियों की माला टूट गई।

"भानुमती घबराई
असहज सी हो गई।
देखकर बिखरे मोती
दुर्योधन ने कहा मोती उठा दूं क्या?"

इस घटना के वर्णन द्वारा कवि बताते हैं दंपती को अपने जीवनसाथी पर इस स्तर का विश्वास करना चाहिए कि आंख से ज्यादा अपने हृदय पर विश्वास कर सकें।

सर्ग 11 में अपने प्रियतम को खोने के बाद भानुमती का अथाह दुःख दिखता है। जिस कुनबे को जोड़ने के लिए भानुमती ने एड़ी-चोटी का जोर लगाया, आज वहां कोई पानी देने वाला नहीं था। वह अथाह शोक में डूबी है, लेकिन यहां भी यह जिजीविषा से भरी रानी भूलती नहीं है कि जीवन चलने का नाम है।

सर्ग 13 स्त्री-विमर्श के उस पहलू को उठाता नजर आता है, जो आज भी समाज में सामान्य ग्राह्य नहीं है। यहां प्रातः स्मरणीया पंच कन्याओं में एक कुंती बहुओं के पुनर्वास के लिए गांधारी को सुझाव देती है। इस बात पर हम चकित होते हैं कि वर्तमान समय में भी इस तरह का निर्णय बहुत कम परिवार ले पा रहे हैं और वहां भी निर्णय घर के पुरुष करते नजर आते हैं। यहां एक सशक्त स्त्री दूसरी स्त्रियों के पुनर्वास की व्यवस्था करती नजर आती है।

"भानुमती चुप कर उठ गई
वह सोच भी कैसे सकती थी
किसी अन्य के बारे में।
सच है सामाजिक व्यवस्थाओं को
तोड़ना आसान नहीं होता
नहीं थी सीमाएं सबके मन में।"

कुंती के बार-बार आग्रह के बाद भानुमती इन निराशा के क्षणों में भी खुद को अपने किशोरावस्था के आकर्षण की याद दिलाती है और सोचती है कि शायद विधाता ने उसे यह अवसर दिया है। कवि यहां पुनः समाज को दिशा दिखाते नजर आते हैं।

"भानुमति बोली
कौन करेगा उससे विवाह
इस प्रौढ़ता की आयु में
अब अर्जुन तैयार हो
तो कर लूंगी विवाह
शेष कोई नहीं मेरे मन को भाता।"

यहां एक साथ हमें विधवा विवाह एवं प्रौढ़ा स्त्री के विवाह की बात दिखती है, जो दिखाता है कि जीवन चलते रहने का नाम है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

भानुमती को पढ़ना हमारे भव्य पौराणिक गलियारों में घूमने के समान प्रतीत होता है, जहां इतिहास प्रतिबिंबित होता दिखाई देता है, समानता एवं स्वतंत्रता की संगीतमय मधुर ध्वनि सुनाई देती है और स्त्री अपनी समस्त विशेषताओं के साथ सिंहासन पर विराजमान दिखती है।

सलाहकार संपादक की ओर से

अंततः
प्रवासी साहित्य

प्रेम जनमेजय

अनिता कपूर एक प्रवासी रचनाकार हैं। इस अंक में उनकी एक रचना है। वे दिल्ली विष्ठवविद्यालय से पढ़ी हैं और आजकल कैलिर्फोनिया रहती है। उन्हें क्या इसलिए प्रवासी साहित्यकार माना जाए क्योंकि वे आजकल कैलिर्फोनिया में रहती हैं? पिछले दिनों विश्वव पुस्तक मेले के 'लेखक मंच' पर 'प्रवासी संसार' के राकेष्ठा पांडेय ने चर्चा का आयोजन किया था। ऐसा ही प्रश्न मैंने इस चर्चा में किया था। प्रवासी संसार द्वारा आयोजित परिचर्चा, प्रवासी साहित्य के अनेक पक्षो पर सवाल उठाने वाली थी। मंच पर उपस्थित मुख्य अतिथि वीरेंद्र गुप्ता, अध्यक्ष विमलेश कांति, सत्यकेतु, नारायण कुमार, राकेश दुबे, दीपक पांडेय, नूतन पांडेय और मुझ समेत अनेक प्रष्ठनों की झड़ी लगा दी। राकेश पांडेय भी कहाँ चूकने वाले थे, कुशल संचालन करते रहे और तीखे सवाल भी। आखिर विषय भी तो उन्होंने तय किया था।

कुछ सवाल मेरे भी थे। प्रवास में रहने वाले लेखक का क्या समस्त साहित्य प्रवासी साहित्य होता है? सबसे बड़ा सवाल कि जो प्रवासी है केवल वह ही प्रवासी मन की रचना करता है। जो प्रवासी है वही क्या प्रवासी साहित्यकार है? जो यहां रहता है, प्रवास में गया वापिस आ गया और उसने वहां की मिट्टी का भयावह यथार्थ लिखा क्या उसका लिखा प्रवासी साहित्य नहीं? पिछले दिनों प्राकाशित नरेंन्द्र कोहली का 'सागर मंथन' या फिर सूर्यबाला का 'वेणु की डायरी' प्रवासी मन की रचना नहीं हैं। मेरा मानना है कि प्रवासी साहित्य जब घुटनों घुटनो चल रहा था, एक विपरीत लहरों में तैरने का कठिन प्रयत्न कर रहा था, उस समय उसकी अंगुली पकड़ उसे आगे ले जाना, उसके गिरने को सहारा देना उचित था। पर अब वह युवा हो गया है और आवश्यक है कि उसे आलोचना के पलड़े पर तोला जाए।

इस समय एक बाड-सी आ रही है। बाड़ में बहुत कुछ गंदला भी बहता है। प्रवासी मन के साहित्य को पढ़ाया जाए, जाना चाहिए। जब दलित चेतना संपन्न दलित साहित्य हो सकता है तो प्रवासी चेतना संपन्न प्रवासी साहित्य क्यों नहीं हो सकता है। पाठ्यक्रम में पढ़ाते समय बस सावधानी इतनी बरतनी होगी कि हर प्रवासी साहित्य का संपूर्ण साहित्य प्रवासी नहीं है और न ही यह भी कि भारत में रहने वाला भारतीय प्रवासी साहित्य नहीं रच सकता। .

एक समय था जब विदेशी विद्वानों के मुँह से हिन्दी सुनकर हम भक्ति भाव से भर जाते थे । विदेशी विद्वान क्या बोल रहे हैं और क्यों बोल रहें हैं , इस ओर हिन्दी के भक्तों का धयान नहीं जाता था , बस उनके मुखारबिंद से हिन्दी सुनकर ही मन गुदगदाए जाता था । जैसे माँ अपने बच्चे का तुतलाना सुनकर ही मरी जाती है वैसे ही गोरी हिन्दी के उस युग में हिन्दी की अनेक माँएं न्योछावर हो गईं । उन माओं का बलिदान भी व्यर्थ नहीं गया, सात समुंदर पार तक हिंदी की सेवा का सुनहरा अवसर मिला। गोरी हिन्दी को देखकर लगता था कि हमारी भाषा

कितनी समृद्ध है । ये दीगर बात है कि इस प्रक्रिया में गोरी हिन्दी के भक्त तो समृद्ध हो गए पर भाषा विपन्न ही रही । इस विपन्न भाषा का उत्थान करने वाले कहाँ के कहाँ पहुंच गए और भाषा वहीं की वहीं कदमताल करती कहाँ की कहाँ रह गई ।

जबसे हमारे प्रवासी भारतीय भाई समृद्ध हुए हैं तथा इस कारण उनका साहित्य भी समृद्ध हुआ है तबसे हमने विदेशी विद्वानों की ओर ताकना काफी कम कर दिया है। प्रवासी साहित्यकारों के आने से हिन्दी भाषा और साहित्य में वसंत छा गया है । विदेश भ्रमण की कोयल कूकने लगी है तथा अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों तथा सम्मेलनों कें भंवरे गुनगुनाने लगे हैं । हिंदी की गूंज पूरे विश्व में सुनाई देने लगी है । यह दीगर बात है कि उस गूंज की प्रतिध्वनि भारत में अंग्रेजी के रूप में सुनाई देती है ।

प्रवासी साहित्यकार के भारत आगमन् का समाचार मिलते ही उन्हें दुनिया की बुरी नज़रों से छुपाकर अपनी गोद में लिए–लिए फिरने को अनेक हिन्दी प्रेमियों के मन मचलने लगते हैं । अभिनंदन की बहार आ जाती है तथा 'लोकार्पणों' की थालियाँ सजने लगती हैं। इधर कुछ लोगों ने प्रवासी साहित्यकारों को बढ़ावा देने के लिये साहित्य का होल सेल डिपो खोल लिया है। मीरा की तरह ये प्रवासी के दीवाने हैं और तुलसी की तरह इनका मस्तक तभी नवता है जब सामने साहित्यकार प्रवासी के रूप में खड़ा हो ।

प्रवासी साहित्यकार को सामने पाकर हम आरती की थाली सजाते हैं और वंदना करतें हैं– ''हे चतुर्भुजी प्रवासी साहित्यकार, तुझे बार–बार प्रणाम है! (एक बार प्रणाम करने से किसी के सर में कितनी भी जूं हो वह कान के पास तक नहीं रेंगती है) हे चतुरंगी तेरे एक हाथ में सेवार्थ डॉलर/पाउंड है, दूसरे हाथ में विदेष्ठा बुलाने का लुभावना मृगतृणामय निमंत्रण है, तीसरे में प्रकाशकों के लिए पांडुलिपियाँ तथा चौथा हाथ यह बताने के लिये खाली है, कि हे मूर्ख तू मुझसे क्या ले जायेगा ! तेरे इस चतुर्भुज रूप का ध्यान कर ही तेरे भक्त तेरी पूजा अर्चना के लिए नित नए नए स्वांग रचते हैं । तेरी एक मनमोहक मुस्कान पाने को हिंदी साहित्य के देवता तरसते हैं और जब तूं वो मुस्कान बिखेर देता है तो तेरे लेखन पर फूलों की वर्षा करते हैं । तू कुछ भी लिख दे प्रकाशक के लिए वह अमूल्य है क्योंकि उसका मूल्य उसे डॉलरो और पाउंड में मिलता है। तूं इतना त्यागमय है कि प्रकाशकों से रॉयल्टी तक नहीं लेता है अपितु हिंदी साहित्य की दशा सुधारने के लिए तू प्रकाशकों को रॉयल्टी तक देने की क्षमता रखता है ।''

हजारों प्रवासी पक्षी सर्दियों में आते हैं। यहां प्रजन्न और थोड़े दिन ठहरने के लिए। इसी समय प्रवासी साहित्यकार भी तो आते हैं प्रजन्न और थोड़े दिन ठहरने के लिए।

कुछ दाना चुगने आते हैं और कुछ दाना डालने आते हैं। इसी समय तो हिंदी साहित्य में वसंत छाता है। प्रवासी साहित्यकारों की काली कोयल कूकती हैं, काले कौए भी कांव–कांव करते हैं। कौओं तक के लिए पलक पांवड़े बिछाए जाते हैं। आजकल कोयल हो या कौवा, काले का बोलबाला है।

'यशस्वी' प्रवासी को साधारण लेखक से लेकर असाधारण प्रकाशक तक संपूर्ण निहारते हैं। पीतल की चमक सोने को कुंठित कर रही है। घर की मुर्गियां दाल के बराबर भी नहीं रहीं, उन्हें बर्ड फ्लू हो गया है।

पिछले दिनों वाशींगटन डी सी मेरी पत्नी के ममेरे भाई का फोन आया। पहले उसने अपनी बहन से बात की और उसके बाद अपने जीजा से मिशरी घोल भाज़ा में। वह बोला, ''You will be surprised to know uncle कि अंकल हमारे ने इंग्लिश में। पोएम लिखना शुरू कर दिया है।

मैं सरप्राइज नहीं हुआ क्योंकि मैं जानता हूँ कि विदेष्ठा की धरती कुछ मामलों में बहुत उपजाऊ है। वहां जाकर अनेक प्रकार की कब्जी दूर होती है।

फिर उसने डिमांड रखी,' आकिल जैसे आपने तन्वी की पोएट्री बुक छपवाई है, इंडिया नेटबुक्स से, इसकी भी छपवा दो।'

मैंने कहा, 'यहां पर छपवाना और उसे भेजना बहुत मुश्किल होगा। वहीं छपवा लो न।''

उसके स्वर में दर्द उभर आया, बोला, ''यहाँ बहुत टफ है अंकिल। यू नो कि यहां पर क्वालिटि एंड मनी आलसो अंकल आपका पब्लिशर जो कहे दे देंगे, यू नो की अब तो हम डॉलर में मंतद कर रहे हैं।'' आशा है आप समझ गए होगें कि हमारे प्रवासियों किस संकट का समाना करना पड़ता है! लगता है कि इस छोटे से प्रसंग से आप बड़ा इशारा समझ गए होंगे।

आपको लगेगा कि मेरी सोच एक तरफा है। व्यंग्यकार पर यही आरोप लगता है कि उसकी सोच नाकरात्मक होती है। यदि नकारात्मक होती भी है तो उसके सामने सकारात्मक पहलू भी होता है। इसी के परिप्रेक्ष्य में वह सही को सही भी कहता है उसकी प्रशंसा भी करता है। मैंने भी अनेक प्रवासी मन की रचनाओं के गुण गाए हैं।

प्रवासी साहित्यकारों पर लिखा भी है। इसी संदर्भ में मैंने अनिता कपूर की इस रचना को रेखांकित किया है। इस अंक में अनिता कपूर का अनुभव जन्य एक विचारणीय आलेख है—नई सरहद का अनुभव। आरंभ में वे लिखती हैं, ''अपने अमेरिका में विगत वर्षों में प्रवासकाल के दौरान हुए एक खास अविस्मरणीय अनुभव को आपसे सांझा करने से पहले एक बात बताना चाहूँगी, कि 'वर्ल्ड गिविंग इंडैक्स' के मुताबिक किसी अजनबी की मदद करने में अमेरिकियों का स्थान दुनिया में पहला है।

ऐसी कितनी ही बातें हैं, जो अमेरिकी मानसिकता को भारतीयों से भिन्न बनाती हैं। ज्यादातर भारतीयों की तरह वे मेहनती होते हैं पर आसान रास्ता नहीं अपनाते।'' एक विशेष भिन्नता को रेखांकित करते हुए लिखती हैं, ''आज क्या खाया।

इसके आगे और व्यक्तिगत न हो इसके लिए अमेरिकी लोग आपको मौका ही नहीं देते इसी के चलते मुझे भी अब सरहद में रहना आ गया था। चूंकि मैं अकेली रहती हूँ यह वे जानती थी और मुझे हमेशा कहती थी कि, "कभी भी किसी चीज की जरूरत हो तो अवश्य बताना और मैं मन ही मन उसके अनकहे को समझ हँसती थी जैसे वो कह रही हो की हाँ, सिर्फ खास एमरजेंसी में ही बताना, पर वैसे अपनी सरहद में ही रहना।'' दूर बैठे हम सबकी अमेरिकी के बारे में यही राय है। पर यह एक अलग राय, मानवीय मूल्यों को रेखांकित करने वाली रचना है।